अन्तर्दाह

लेखक
सत्यकेतु विद्यालंकार डी० लिट० (पेरिस)
(मंगलाप्रसाद पारितोषिक विजेता)

सरस्वती सदन, मसूरी

[मूल्य ३॥।]

निवेदन

डाक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार के दो उपन्यास हम पहले प्रकाशित कर चुके हैं, 'होटल मोडर्न' और 'आचार्य चाणक्य'। अब हम उनका यह तीसरा उपन्यास प्रकाशित कर रहे हैं। इसमें प्रेम की समस्या पर अत्यन्त सुन्दर रीति से विचार किया गया है। लता एक सुशिक्षित महिला है, जिसके हृदय में 'आधुनिकता' के प्रति आकर्षण है। उसका पति विनोद एक कालिज में दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर है। वह भी आधुनिकता का पक्ष-पाती है, और अपनी पत्नी को एक सुसंस्कृत आधुनिक नारी के रूप में देखना चाहता है। लता और विनोद एक-दूसरे के प्रति अनुरक्त हैं, उनका दाम्पत्य जीवन सुखी है। पर विनोद का एक मित्र है, जिसका नाम वीरेन्द्र है। वीरेन्द्र जर्नलिस्ट है, जो कई वर्षों तक विदेशों में रह कर भारत लौटता है। लता फिर से उसके सम्पर्क में आती है, और धीरे-धीरे उसके प्रति आकर्षण अनुभव करने लगती है। यह आकर्षण विनोद के हृदय में अन्तर्दाह उत्पन्न करता है। दाम्पत्य जीवन की यह एक गम्भीर समस्या है कि पति या पत्नी अन्य स्त्रियों व पुरुषों के साथ किस अंश तक, किस मर्यादा में सम्बन्ध रख सकें। इसी समस्या को सम्मुख रख कर यह उपन्यास लिखा गया है। हमें विश्वास है कि पाठक इस कथानक को रोचक पाएंगे, और इस उपन्यास का उसी प्रकार उत्साहपूर्वक स्वागत होगा, जैसा कि डाक्टर सत्यकेतु की अन्य रचनाओं का हुआ है।

सरस्वती सदन, मसूरी

अन्तर्दाह

(१)

साँझ का समय था। आसमान में बादल घिरे हुए थे। बिजली चमक रही थी, और रह-रह कर वर्षा पड़ रही थी। लता का आज किसी भी काम में दिल नहीं लग रहा था। वह अकेली थी। प्रोफेसर विनोद मद्रास गये हुए थे, आल इण्डिया फिलोसोफिकल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में शामिल होने के लिये। लता सोच रही थी, यदि मैं भी उनके साथ मद्रास चली जाती, तो कितना अच्छा होता। दक्षिण भारत मैंने कभी देखा भी तो नहीं। रास्ते में अल्लोरा और अजन्ता के गुहामन्दिरों को देखती, और बम्बई की सैर करती। यदि समय मिलता, तो रामेश्वरम् तक हो आती। सुना है, दक्षिण भारत के मन्दिर बड़े विशाल और सुन्दर हैं। उनकी वास्तुकला मन को मोह लेती है। पर उन्हें सैर-सपाटे के लिये फुरसत ही कहाँ थी। मेरे साथ रहने से उनके काम में विघ्न ही पड़ता। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत की उन्होंने एक नई व्याख्या की है। इसके लिए उन्होंने कितना परिश्रम किया है। इसी विषय पर वे फिलोसोफिकल कांग्रेस में निबन्ध पढ़ेंगे, और देश-विदेश के विद्वान् उस पर विचार-विमर्श करेंगे। उनकी विद्वत्ता की सर्वत्र धाक जम जायगी, और दिग्दिगन्त में उनकी कीर्ति फैल जायगी। फिलोसोफिकल कांग्रेस में मेरा क्या मन लगता? अच्छा हुआ, जो मैं उनके साथ नहीं गई। उन्होंने तो कहा भी था, चलो, तुम भी मद्रास चली चलो। ऐसे अवसर बार-बार नहीं मिला करते। और कुछ न होगा, तो देशाटन ही हो जायगा। अकेले यहाँ तुम क्या करोगी। पर मैंने उनके साथ न जाकर अच्छा ही किया। परसों तक तो वे लौट ही आएँगे।

लता इसी तरह के विचारों में मग्न थी, कि मोटर के हार्न की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ी। मोटर उसी के मकान के सामने आकर रुक गई थी। रामू ने आकर खबर दी—

अन्तर्दाह

(१)

साँझ का समय था। आसमान में बादल घिरे हुए थे। बिजली चमक रही थी, और रह-रह कर वर्षा पड़ रही थी। लता का आज किसी भी काम में दिल नहीं लग रहा था। वह अकेली थी। प्रोफेसर विनोद मद्रास गये हुए थे, आल इण्डिया फिलोसोफिकल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में शामिल होने के लिये। लता सोच रही थी, यदि मैं भी उनके साथ मद्रास चली जाती, तो कितना अच्छा होता। दक्षिण भारत मैंने कभी देखा भी तो नहीं। रास्ते में अल्लोरा और अजन्ता के गुहामन्दिरों को देखती, और बम्बई की सैर करती। यदि समय मिलता, तो रामेश्वरम् तक हो आती। सुना है, दक्षिण भारत के मन्दिर बड़े विशाल और सुन्दर हैं। उनकी वास्तुकला मन को मोह लेता है। पर उन्हें सैर-सपाटे के लिये फुरसत ही कहाँ थी। मेरे साथ रहने से उनके काम में विघ्न ही पड़ता। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत की उन्होंने एक नई व्याख्या की है। इसके लिए उन्होंने कितना परिश्रम किया है। इसी विषय पर वे फिलोसोफिकल कांग्रेस में निबन्ध पढ़ेंगे, और देश-विदेश के विद्वान् उस पर विचार-विमर्श करेंगे। उनकी विद्वत्ता की सर्वत्र धाक जम जायगी, और दिग्दिगन्त में उनकी कीर्ति फैल जायगी। फिलोसोफिकल कांग्रेस में मेरा क्या मन लगता? अच्छा हुआ, जो मैं उनके साथ नहीं गई। उन्होंने तो कहा भी था, चलो, तुम भी मद्रास चली चलो। ऐसे अवसर बार-बार नहीं मिला करते। और कुछ न होगा, तो देशाटन ही हो जायगा। अकेले यहाँ तुम क्या करोगी। पर मैंने उनके साथ न जाकर अच्छा ही किया। परसों तक तो वे लौट ही आएँगे।

लता इसी तरह के विचारों में मग्न थी, कि मोटर के हार्न की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ी। मोटर उसी के मकान के सामने आकर रुक गई थी। रामू ने आकर खबर दी—

कोई साहव आए हैं, प्रोफेसर साहव को पूछते हैं।'

लता ने वेपरवाही से उत्तर दिया—'कह दो, साहव वाहर गये हैं। दो दिन में लौटेंगे।'

पर आगन्तुक ने नौकर के लौटने की प्रतीक्षा नहीं की। वह तेजी से सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आ गया, और वोला—'भाई विनोद !'

आगन्तुक की आवाज में आत्मीयता थी। लता उसकी उपेक्षा न कर सकी। वोली—

'आइये, अन्दर आ जाइये। प्रोफेसर साहव तो मद्रास गये हैं। आप कहाँ से आ रहे हैं ?'

'आपने मुझे पहचाना नहीं, भाभी ! वहुत दिनों वाद जो मिल रहा हूँ।'

'मैंने सचमुच आपको नहीं पहचाना। माफ करें, आप मुझे कैसे जानते हैं ?'

'आपको कैसे भुला सकता हूँ, भाभी ! आप तो अपने वीरेन्द्र भैय्या को विलकुल ही भूल गईं।'

'ओह, आप भाई वीरेन्द्र हैं। मैं भी कैसी भुलक्कड़ हूँ। आप वदल भी तो कितने गये हैं। आपकी वातें करते हुए तो वे कभी थकते ही नहीं। उनके मुख से आपकी वातें सुनते हुए कभी-कभी तो मुझे आपसे ईर्षा होने लगती है।'

वीरेन्द्र लता के पास ही एक कुर्सी पर वैठ गया था। लता ने पूछा—

'आप यूरोप से लौटे कव ? आपने तो कोई खवर ही नहीं दी।'

'क्या मेरा पत्र आपको नहीं मिला ?'

'कोई दो महीने हुए, पेरिस से भेजा आपका पत्र मिला था। उसके वाद आपकी कोई खवर नहीं मिली।

'यह भी अजीव वात है। एक सप्ताह हुआ, जव मैंने एयर मेल से भाई विनोद को पत्र लिखा था। मैं आज ही हवाई जहाज से दिल्ली आया था। सोचा, सवसे पहले भाई साहव से ही मिल आऊँ। मेरठ दिल्ली से

दूर ही कितना है। अभी अपने घर लखनऊ भी नहीं गया हूँ। दिल्ली से सीधा मेरठ चला आ रहा हूँ।'

'आपका असबाब कहाँ है?'

'वह तो अभी टैक्सी में ही रखा है। पर अब तो मुझे किसी होटल की तलाश करनी होगी।'

'इसकी क्या जरूरत है। अपना घर होते हुए होटल में ठहरने से क्या लाभ ? मेरठ में कोई अच्छा होटल है भी तो नहीं। यदि प्रोफेसर साहब घर पर नहीं हैं, तो क्या हुआ? मैं तो हूँ। रामू, जाओ, साहब का असबाब लिवा लाओ।'

'आप क्यों कष्ट करती हैं, भाभी !'

'आप व्यर्थ संकोच न करें। आप नहीं जानते, आपके भाई साहब इन मामलों में कितने उदार हैं। यदि आप किसी होटल में ठहरे, तो वे मुझ पर बहुत नाराज होंगे। इतने साल बाद उनका भाई घर पर आए, और वह होटलों में धक्के खाता फिरे, यह बात उन्हें कभी सह्य नहीं होगी। अच्छा, आप चाय पियेंगे या काफी ?'

'मेरे लिये चाय और काफी दोनों बराबर हैं। पर यह तो बताइये, बच्चे कहाँ हैं ? मैं तो उनके नाम भी भूल गया ! हाँ, याद आया। रानी तो अब खूब बड़ी हो गई होगी, और मुन्ना भी स्कूल जाने लगा होगा।'

'वे तो अब देहरादून के कन्वेन्ट स्कूल में बोर्डर हैं। बड़े शैतान हो गये थे, किसी का कहना नहीं मानते थे। यहाँ मेरठ में कोई अच्छा स्कूल है भी तो नहीं। गलियों में खेलते थे, और बच्चों से गालियाँ सीखते थे। सोचा, कन्वेन्ट में पढ़ कर नियन्त्रण में रहना सीख जाएँगे। इसी साल जुलाई में उन्हें देहरादून दाखिल करा दिया था। देखिये, सामने उनकी फोटो है। हैं न पूरे शैतान !'

'रानी की शकल तो एक दम विनोद जैसी है, और मुन्ना, वह आप पर है।'

रामू ने काफी की ट्रे लाकर मेज पर रख दी थी। लता ने तुरन्त

दो प्याले काफी तैयार कर दी। गरम-गरम काफी की चुस्कियां भरते हुए नरेन्द्र ने सिगरेट जलाई। लता उठ कर मेन्टिल के पास गई, और सिगरेट का टिन उठा लाई। उसमें से एक सिगरेट निकालते हुए शरारत से आँखें नचा कर बोली—'आपने मुझे सिगरेट आफर नहीं की। क्या यूरोप में आपने यही तहज़ीब सीखी है, या भारत लौटते हुए अपनी सब तहज़ीब सात समुन्दर पार ही छोड़ आए।'

'माफ करें, भाभी ! क्या आप भी सिगरेट पीती हैं?'

'इससे आपको क्या मतलब? पर आपको मुझे सिगरेट पेश तो करनी ही चाहिए थी। इतने साल यूरोप और अमेरिका की खाक छानते रहे, पर इतनी मामूली सी बात भी आपने नहीं सीखी।'

लता ने सिगरेट होठों से दबा ली, और नरेन्द्र ने उसे सुलगा दिया। सिगरेट के धुंए से गोल-गोल छल्ले से बनाते हुए लता ने धीरे-धीरे कहा—

'आप सोचते होंगे, मैं भी कितनी बिगड़ गई हूँ। पर यह सब आपके भाई साहब की कृपा है। वे चाहते हैं, सब बातों में मैं उनकी अनुगामिनी बन कर रहूँ। कहते हैं, जब मैं सिगरेट पीता हूँ, तो तुम क्यों न पियो। मेरे बिना उन्हें किसी भी काम में रस नहीं आता। अच्छा, अब यह बताइये, इतने दिन आप रहे कहाँ? आप तो बैरिस्टरी पास करने के लिये गये थे न?'

'बैरिस्टरी तो मैंने दो ही साल में पास कर ली थी। पिताजी चाहते थे, मैं तुरन्त भारत लौट आऊं, और लखनऊ में प्रैक्टिस शुरू कर दूं।'

'तो आप लौट क्यों नहीं आए? क्या किसी के प्रेमपाश में फंस गये थे?'

'नहीं, भाभी ! मेरे ऊपर जादू का असर जल्दी नहीं होता। हाँ, यदि कोई आप जैसी मिल जाए, तो दूसरी बात है।'

'देखो, शरारत न करो ! ठीक-ठीक बताओ, इतने दिनों तक करते क्या रहे?'

'मेरी इच्छा हुई कि लण्डन में ही प्रैक्टिस शुरू कर दूं। उस ज़माने

में भारत से कितनी ही अपीलें प्रिवी कौंसिल के सामने पेश होने के लिये लण्डन भेजी जाती थीं। सोलिसिटर्स की एक प्रसिद्ध फर्म के साथ मैंने सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया था। पर वकालत में मुझे सफलता नहीं हुई। इसी वीच में मेरा ध्यान जर्नलिज्म की ओर आकृष्ट हुआ। १९४७ में स्वराज्य प्राप्ति के वाद भारत की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में बहुत अन्तर आगया था। भारत के मामलों में यूरोप और अमेरिका के लोगों की दिलचस्पी बहुत बढ़ गई थी। लिखने का मुझे शुरू से ही शौक रहा है। मैंने विदेशी पत्रों में भारत के विषय में लेख देने शुरू कर दिये, और दिल्ली मद्रास कलकत्ता आदि के कई प्रसिद्ध दैनिक पत्रों का मैं यूरोप-स्थित संवाददाता वन गया। यह कार्य वड़ा मनोरंजक है, भाभी! भौंरे की तरह एक फूल से दूसरे फूल पर मंडराते रहना, और मधुमक्षिका की तरह जगह-जगह से शहद एकत्र कर एक लेख तैयार कर देना। इस काम में मैं खूब सफल हुआ। अब तो मैं लण्डन से पेरिस, पेरिस से जिनीवा और जिनीवा से न्यूयार्क उड़ता फिरता हूँ। भारत भी थोड़े ही दिनों के लिए आया हूँ। यूरोप से एक 'कल्चरल डेलीगेशन' भारत आया है। सोचा, इसकी यात्रा को ही 'कवर' कर दूं। आप सबसे मिलने की भी वहुत इच्छा थी। घर के लोग भी याद आते थे।'

'अरे, आपने कुछ खाया तो है ही नहीं। क्या केवल काफी और सिगरेट से ही पेट भर लेने का विचार है?'

'पेट भरने के लिये तो आपके पास बैठना ही पर्याप्त है, भाभी! हां, आप भी तो कुछ सुनाइये, भाई विनोद आजकल किस काम में लगे हैं?'

'उनका ती वही पुराना सिलसिला जारी है। प्लेटो और मनु के समाज संगठन सम्बन्धी विचारों में कितनी समता है, शोपनहार के सिद्धांतों पर उपनिषदों का कितना प्रभाव है, और कान्ट की फिलोसफी बौद्धों के विज्ञानवाद से क्या सम्बन्ध रखती है।'

'भाई विनोद के साथ रहते-रहते आप भी पूरी फिलोसोफर बन गई हैं।'

'तो फिर करूं क्या ? यदि मैं उनका साथ न दूं, तब तो वे दर्शन-शास्त्र का अनुशीलन भी जारी नहीं रख सकते। उन्हें तो अपनी फिलोसफी के लिये भी मेरे सम्बल की आवश्यकता है ;'

'पर आप स्वयं आजकल क्या करती है ?'

'शायद आपको मालूम नहीं, मैं लेख लिखती हूं, कहानियां भी लिखती हूं। मेरी रचनाएं सरस्वती और सरिता में प्रकाशित होती हैं। भारत में स्त्रियों की स्थिति पर एक किताब भी लिखनी शुरू की हुई है। पर अभी वह अधूरी है। वे तो कहते हैं, अपनी कहानियां का एक संग्रह प्रकाशित करा दो। पर अभी मुझे अधिक अभ्यास की आवश्यकता है। अच्छा, इन वातों को छोड़िये। आप डिनर कितने बजे खायेंगे ? आप को हम लोगों का भोजन क्या पसन्द आयगा। पूड़ी परांठे की तो आपको आदत नहीं रही होगी।

'ऐसा न कहें, भाभी ! आपके हाथ की पूड़ी और सब्जी पाकर मैं कृतकृत्य हो जाउंगा।'

'आप भ्रम में हैं, भाई वीरेन्द्र ! मुझे खाना पकाने का जरा भी अभ्यास नहीं रहा है। आपके भाई साहब मुझे वार्वाचिन के रूप में देखना पसन्द नहीं करते। पर आपके लिये मैं आज अपने हाथ से भोजन तैयार करूंगी।'

'इस कष्ट की कोई आवश्यकता नहीं, भाभी ! आपसे बातें करके मुझे अपार आनन्द मिल रहा है। मुझे ऐसा अवसर कब प्राप्त होता है, जब आप जैसी प्रखर व्यक्तित्व की महिला से इतनी आत्मीयता के साथ बातें कर सकूं।'

'तो फिर यूरोप की बातें सुनाइये। देशविदेश का भ्रमण करने की मेरी बड़ी प्रबल इच्छा है। इसका अवसर भी कभी मिल ही जायगा। पर अब तो आप से बातें करके ही उसका आनन्द उठालूं।'

'यूरोप हमारे देश से कितना भिन्न है, भाभी ! मुझे अपने वे दिन याद आते हैं, जब मैं पहले पहल लण्डन गया था। फल या अखबार खरीदने

जाता, तो दूकान पर खड़ी महिला को देखकर मेरी निगाह ऊपर न उठती स्त्री से माल खरीदते हुए मुझे संकोच अनुभव होता। बाजार घूमने जाता तो आगे पीछे, अगल-बगल सर्वत्र स्त्रियोंको देख कर मुझे परेशानी सी होने लगती। पेरिस जैसे शहर में जाकर तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो वहाँ केवल स्त्रियों का ही निवास हो। और स्त्रियाँ भी कैसी? हमारे लोग तो शायद उन्हें निर्लज्ज कहेंगे। मुंह को ढकना तो वहाँ कोई जानता ही नहीं। पर्म कराये हुए केश, पाउडर लिपस्टिक और रूज द्वारा निखरा हुआ रूप, और तनी हुई छातियाँ। वस्त्र इस ढंग के, जिनसे शरीर की एक-एक रेखा साफ-साफ नजर आती है। क्या अमीर क्या गरीब—सब स्त्रियों का यही ढंग है। पेरिस, लण्डन और न्यूयार्क जैसे नगरों में जाकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी नये लोक में पहुँच गये हों। कभी यूरोप जाना, तो देखना भाभी! वहाँ की नारियाँ भारत की स्त्रियों से कितनी भिन्न हैं। केवल शरीर के प्रसाधन में ही नहीं, साहस और कर्तृत्व में भी वे अनुपम हैं। वे दीपशिखा के समान होती हैं। उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई उनकी तरफ आँख उठा कर भी नहीं देख सकता। वे कस कर काम करती हैं, और खुल कर मौज उड़ाती है। भारत की नारी घर की चहारदीवारी में वन्द रहती है। उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता। वाल वच्चों के पालन पोषण और पति की सेवा में अपने को होम कर देना ही उसके जीवन का एकमात्र प्रयोजन होता है।'

पाश्चात्य नारी के स्वतन्त्र और सुखमय जीवन की वात को सुनकर लता के हृदय में गुदगुदी-सी उठने लगी। उसने कहा—

'क्यों वीरेन्द्र! क्या यूरोप की नारी अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों के साथ भी मैत्री या आत्मीयता रखती है?'

'क्यों नहीं, भाभी! पाश्चात्य नारी घर की चहारदीवारी में वन्द होकर नहीं रहती। वह आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होती है। उसकी अपनी निजी सम्पत्ति होती है, जिसे वह स्वेच्छापूर्वक खर्च कर सकती है। यूरोप की वहुसंख्यक स्त्रियाँ कमाई के लिये भी उद्योग करती हैं। यह स्वाभा-

विक है, कि जीवन के संघर्ष में पड़ने के कारण वे अन्य पुरुषों के भी सम्पर्क में आएँ। इस दशा में यदि उनके हृदय में किसी पर-पुरुष के प्रति आकर्षण भी उत्पन्न हो जाए, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?'

'पर इस दशा में पति-पत्नी का सम्बन्ध और पारिवारिक जीवन तो सम्भव नहीं रह सकता ?'

'यह ठीक है। यदि पर-पुरुष के प्रति आकर्षण व आत्मीयता का भाव अधिक गहरा हो जाए, तो तलाक द्वारा पति-पत्नी के सम्बन्ध का अन्त हो जाता है। पर यह भी सम्भव है, कि अपने पति के प्रति प्रेम और आस्था रखते हुए भी कोई स्त्री किसी अन्य पुरुष के प्रति मैत्री का भाव रख सके। जैसे पुरुषों में परस्पर मित्रता होती है, या स्त्रियां एक-दूसरे की सहेली बनकर रहती हैं, पर इससे पारिवारिक जीवन पर तो कोई असर नहीं पड़ता, ऐसे ही यदि स्त्री की किसी पर-पुरुष से मैत्री हो, तो उससे गृहस्थ जीवन क्यों कर नष्ट होगा। यूरोप की स्त्री अपने पुरुष मित्रों से निःसंकोच मिलती-जुलती है, उनके साथ सैर करती है, उनके साथ बैठ कर बातचीत करती है।'

लता को वीरेन्द्र की यह बात भलीभांति समझ में आ रही थी। वह सोचती थी, मैं वीरेन्द्र के साथ अकेले में बैठी बातें कर रही हूँ। वीरेन्द्र मेरे देवर हैं, मेरे मित्र हैं। हमारा दकियानूसी समाज तो हम दोनों के इस प्रकार एकान्त में बैठकर बातें करने को कभी भी अच्छी निगाह से नहीं देखेगा। पर इसमें अनौचित्य की क्या बात है ? नहीं, वीरेन्द्र मेरा मित्र है, इससे बातें करने में मुझे आनन्द आता है। पर इसके कारण प्रोफेसर साहब के साथ मेरा जो सम्बन्ध है, उसमें तो कोई भी अन्तर नहीं आता। अंगड़ाई लेते हुए उसने प्रश्न किया—

'भाई वीरेन्द्र ! आप कहते थे, यूरोप की नारी कस कर काम करती है, और फिर खुलकर मौज उड़ाती है। वह मौज कैसे उड़ाती है ?'

'जब तक आप अपनी आंखों से देख नहीं लेगीं, आप क्या समझेंगी, भाभी ! कभी पेरिस की नाइट क्लबों के जीवन को देखें, तो मालूम हो।

अब रात के नौ बज रहे हैं। इस समय पेरिस में कैसी रौनक होगी। सारी नाइट क्लबें नर-नारियों से पूर्ण होंगी। दिन की थकान मिटाने के लिये हजारों स्त्रियाँ बढ़िया कपड़े पहन कर, बाल संवार कर, शरीर का प्रसाधन कर किसी रिस्तोराँ में, किसी काफे में, किसी म्यूजिक हॉल में, किसी क्लब में पहुँच रही होंगी। उनके प्रियजन उत्सुकतापूर्वक वहाँ उनका इन्तजार करते होंगें। वे मुसकाकर उनका स्वागत करेंगे, हाथ मिलाएँगे और फिर बाँह में बाँह डालकर उन्हें अपने साथ ले जाएँगें। वेटर आयगा, पूछेगा, आपके लिए क्या लाऊँ। शाम्पेन या वाइन के दो घूंट पीकर वे उठ खड़े होंगे। आर्केस्ट्रा का वाद्यसंगीत सुनकर उनके लिये बैठे रह सकना सम्भव नहीं रह जायगा। वाद्य की ताल के साथ थिरक-थिरककर वे नाच करने लगेंगे। पुरुष ने अपने एक हाथ से स्त्री के हाथ को थामा हुआ होगा, और उसका दूसरा हाथ स्त्री की कटि को स्पर्श करता होगा। सात-आठ मिनट तक नाचकर वे फिर अपनी टेबल पर आ बैठेंगे। शाम्पेन के चार घूंट उनकी थकान को मिटा देने के लिये पर्याप्त होंगे। फिर आर्केस्ट्रा बजना शुरू होगा। उसे सुनकर वे फिर उठ खड़े होंगे। स्त्री-पुरुषों के पचासों जोड़े इसी प्रकार नृत्यशाला की रंगस्थली पर उतर आएँगे। रात के बारह बजे तक या और देर तक यही क्रम जारी रहेगा।'

यूरोप के विलासमय जीवन का यह वर्णन सुनकर लता के हृदय में बेचैनी-सी उत्पन्न होने लगी। वह सोचती थी, भारत में स्त्री-पुरुषों का जीवन कितना शुष्क है। सिनेमा के अतिरिक्त आमोद-प्रमोद का यहाँ अन्य साधन ही कौन-सा है। इसी समय रामू ने आकर सूचना दी—हुजूर, भोजन तैयार है। भोजन तैयार था, पर उसकी इच्छा न लता को थी, और न वीरेन्द्र को। वे अपनी बातचीत में ही मग्न थे। पर भोजन तो खाना ही था। वे उठ खड़े हुए, और डाइनिंग रूम में जा बैठे। भोजन आया, वीरेन्द्र ने दिल खोलकर उसकी प्रशंसा की। कहा, सालों बाद देसी भोजन खाकर आज कितनी तृप्ति हुई है, और वह भी अपनी भाभी के साथ बैठकर। भोजन समाप्त होने पर लता ने कहा—

विक है, कि जीवन के संघर्ष में पड़ने के कारण वे अन्य पुरुषों के भी सम्पर्क में आएँ। इस दशा में यदि उनके हृदय में किसी पर-पुरुष के प्रति आकर्षण भी उत्पन्न हो जाए, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?'

'पर इस दशा में पति-पत्नी का सम्बन्ध और पारिवारिक जीवन तो सम्भव नहीं रह सकता ?'

'यह ठीक है। यदि पर-पुरुष के प्रति आकर्षण व आत्मीयता का भाव अधिक गहरा हो जाए, तो तलाक द्वारा पति-पत्नी के सम्बन्ध का अन्त हो जाता है। पर यह भी सम्भव है, कि अपने पति के प्रति प्रेम और आस्था रखते हुए भी कोई स्त्री किसी अन्य पुरुष के प्रति मैत्री का भाव रख सके। जैसे पुरुषों में परस्पर मित्रता होती है, या स्त्रियाँ एक-दूसरे की सहेली बनकर रहती हैं, पर इससे पारिवारिक जीवन पर तो कोई असर नहीं पड़ता, ऐसे ही यदि स्त्री की किसी पर-पुरुष से मैत्री हो, तो उससे गृहस्थ जीवन क्यों कर नष्ट होगा। यूरोप की स्त्री अपने पुरुष मित्रों से निःसंकोच मिलती-जुलती है, उनके साथ सैर करती है, उनके साथ बैठ कर बातचीत करती है।'

लता को वीरेन्द्र की यह बात भलीभाँति समझ में आ रही थी। वह सोचती थी, मैं वीरेन्द्र के साथ अकेले में बैठी बातें कर रही हूँ। वीरेन्द्र मेरे देवर हैं, मेरे मित्र हैं। हमारा दकियानूसी समाज तो हम दोनों के इस प्रकार एकान्त में बैठकर बातें करने को कभी भी अच्छी निगाह से नहीं देखेगा। पर इसमें अनौचित्य की क्या बात है ? नहीं, वीरेन्द्र मेरा मित्र है, इससे बातें करने में मुझे आनन्द आता है। पर इसके कारण प्रोफेसर साहब के साथ मेरा जो सम्बन्ध है, उसमें तो कोई भी अन्तर नहीं आता। अंगड़ाई लेते हुए उसने प्रश्न किया—

'भाई वीरेन्द्र ! आप कहते थे, यूरोप की नारी कस कर काम करती है, और फिर खुलकर मौज उड़ाती है। वह मौज कैसे उड़ाती है ?'

'जब तक आप अपनी आँखों से देख नहीं लेगीं, आप क्या समझेंगी, भाभी ! कभी पेरिस की नाइट क्लबों के जीवन को देखें, तो मालूम हो।

अब रात के नौ बज रहे हैं। इस समय पेरिस में कैसी रौनक होगी। सारी नाइट क्लबें नर-नारियों से पूर्ण होंगी। दिन की थकान मिटाने के लिये हजारों स्त्रियाँ बढ़िया कपड़े पहन कर, बाल संवार कर, शरीर का प्रसाधन कर किसी रिस्तोराँ में, किसी काफे में, किसी म्यूजिक हॉल में, किसी क्लब में पहुँच रही होंगी। उनके प्रियजन उत्सुकतापूर्वक वहाँ उनका इन्तजार करते होंगें। वे मुसकाकर उनका स्वागत करेंगे, हाथ मिलाएँगे और फिर बाँह में बाँह डालकर उन्हें अपने साथ ले जाएँगें। वेटर आयगा, पूछेगा, आपके लिए क्या लाऊँ। शाम्पेन या वाइन के दो घूंट पीकर वे उठ खड़े होंगे। आर्केस्ट्रा का वाद्यसंगीत सुनकर उनके लिये बैठे रह सकना सम्भव नहीं रह जायगा। वाद्य की ताल के साथ थिरक-थिरककर वे नाच करने लगेंगे। पुरुष ने अपने एक हाथ से स्त्री के हाथ को थामा हुआ होगा, और उसका दूसरा हाथ स्त्री की कटि को स्पर्श करता होगा। सात-आठ मिनट तक नाचकर वे फिर अपनी टेबल पर आ बैठेंगे। शाम्पेन के चार घूंट उनकी थकान को मिटा देने के लिये पर्याप्त होंगे। फिर आर्केस्ट्रा बजना शुरू होगा। उसे सुनकर वे फिर उठ खड़े होंगे। स्त्री-पुरुषों के पचासों जोड़े इसी प्रकार नृत्यशाला की रंगस्थली पर उतर आएँगे। रात के बारह बजे तक या और देर तक यही क्रम जारी रहेगा।'

यूरोप के विलासमय जीवन का यह वर्णन सुनकर लता के हृदय में बेचैनी-सी उत्पन्न होने लगी। वह सोचती थी, भारत में स्त्री-पुरुषों का जीवन कितना शुष्क है। सिनेमा के अतिरिक्त आमोद-प्रमोद का यहाँ अन्य साधन ही कौन-सा है। इसी समय रामू ने आकर सूचना दी—हुजूर, भोजन तैयार है। भोजन तैयार था, पर उसकी इच्छा न लता को थी, और न वीरेन्द्र को। वे अपनी बातचीत में ही मग्न थे। पर भोजन तो खाना ही था। वे उठ खड़े हुए, और डाइनिंग रूम में जा बैठे। भोजन आया, वीरेन्द्र ने दिल खोलकर उसकी प्रशंसा की। कहा, सालों बाद देसी भोजन खाकर आज कितनी तृप्ति हुई है, और वह भी अपनी भाभी के साथ बैठकर। भोजन समाप्त होने पर लता ने कहा—

विक है, कि जीवन के संघर्ष में पड़ने के कारण वे अन्य पुरुषों के भी सम्पर्क में आएँ। इस दशा में यदि उनके हृदय में किसी पर-पुरुष के प्रति आकर्षण भी उत्पन्न हो जाए, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?'

'पर इस दशा में पति-पत्नी का सम्बन्ध और पारिवारिक जीवन तो सम्भव नहीं रह सकता ?'

'यह ठीक है। यदि पर-पुरुष के प्रति आकर्षण व आत्मीयता का भाव अधिक गहरा हो जाए, तो तलाक द्वारा पति-पत्नी के सम्बन्ध का अन्त हो जाता है। पर यह भी सम्भव है, कि अपने पति के प्रति प्रेम और आस्था रखते हुए भी कोई स्त्री किसी अन्य पुरुष के प्रति मैत्री का भाव रख सके। जैसे पुरुषों में परस्पर मित्रता होती है, या स्त्रियाँ एक-दूसरे की सहेली बनकर रहती हैं, पर इससे पारिवारिक जीवन पर तो कोई असर नहीं पड़ता, ऐसे ही यदि स्त्री की किसी पर-पुरुष से मैत्री हो, तो उससे गृहस्थ जीवन क्यों कर नष्ट होगा। यूरोप की स्त्री अपने पुरुष मित्रों से निःसंकोच मिलती-जुलती है, उनके साथ सैर करती है, उनके साथ बैठ कर बातचीत करती है।'

लता को वीरेन्द्र की यह बात भलीभाँति समझ में आ रही थी। वह सोचती थी, मैं वीरेन्द्र के साथ अकेले में बैठी बातें कर रही हूँ। वीरेन्द्र मेरे देवर हैं, मेरे मित्र हैं। हमारा दकियानूसी समाज तो हम दोनों के इस प्रकार एकान्त में बैठकर बातें करने को कभी भी अच्छी निगाह से नहीं देखेगा। पर इसमें अनौचित्य की क्या बात है ? नहीं, वीरेन्द्र मेरा मित्र है, इससे बातें करने में मुझे आनन्द आता है। पर इसके कारण प्रोफेसर साहब के साथ मेरा जो सम्बन्ध है, उसमें तो कोई भी अन्तर नहीं आता। अंगड़ाई लेते हुए उसने प्रश्न किया—

'भाई वीरेन्द्र ! आप कहते थे, यूरोप की नारी कस कर काम करती है, और फिर खुलकर मौज उड़ाती है। वह मौज कैसे उड़ाती है ?'

'जब तक आप अपनी आँखों से देख नहीं लेगीं, आप क्या समझेंगी, भाभी ! कभी पेरिस की नाइट क्लबों के जीवन को देखें, तो मालूम हो।

अब रात के नौ बज रहे हैं। इस समय पेरिस में कैसी रौनक होगी। सारी नाइट क्लबें नर-नारियों से पूर्ण होंगी। दिन की थकान मिटाने के लिये हजारों स्त्रियाँ बढ़िया कपड़े पहन कर, बाल संवार कर, शरीर का प्रसाधन कर किसी रिस्तोराँ में, किसी काफे में, किसी म्यूजिक हॉल में, किसी क्लब में पहुँच रही होंगी। उनके प्रियजन उत्सुकतापूर्वक वहाँ उनका इन्तजार करते होंगें। वे मुसकाकर उनका स्वागत करेंगे, हाथ मिलाएँगे और फिर बाँह में बाँह डालकर उन्हें अपने साथ ले जाएँगें। वेटर आयगा, पूछेगा, आपके लिए क्या लाऊँ। शाम्पेन या वाइन के दो घूंट पीकर वे उठ खड़े होंगे। आर्केस्ट्रा का वाद्यसंगीत सुनकर उनके लिये बैठे रह सकना सम्भव नहीं रह जायगा। वाद्य की ताल के साथ थिरक-थिरककर वे नाच करने लगेंगे। पुरुष ने अपने एक हाथ से स्त्री के हाथ को थामा हुआ होगा, और उसका दूसरा हाथ स्त्री की कटि को स्पर्श करता होगा। सात-आठ मिनट तक नाचकर वे फिर अपनी टेबल पर आ बैठेंगे। शाम्पेन के चार घूंट उनकी थकान को मिटा देने के लिये पर्याप्त होंगे। फिर आर्केस्ट्रा बजना शुरू होगा। उसे सुनकर वे फिर उठ खड़े होंगे। स्त्री-पुरुषों के पचासों जोड़े इसी प्रकार नृत्यशाला की रंगस्थली पर उतर आएँगे। रात के बारह बजे तक या और देर तक यही क्रम जारी रहेगा।'

यूरोप के विलासमय जीवन का यह वर्णन सुनकर लता के हृदय में बेचैनी-सी उत्पन्न होने लगी। वह सोचती थी, भारत में स्त्री-पुरुषों का जीवन कितना शुष्क है। सिनेमा के अतिरिक्त आमोद-प्रमोद का यहाँ अन्य साधन ही कौन-सा है। इसी समय रामू ने आकर सूचना दी—हुजूर, भोजन तैयार है। भोजन तैयार था, पर उसकी इच्छा न लता को थी, और न वीरेन्द्र को। वे अपनी बातचीत में ही मग्न थे। पर भोजन तो खाना ही था। वे उठ खड़े हुए, और डाइनिंग रूम में जा बैठे। भोजन आया, वीरेन्द्र ने दिल खोलकर उसकी प्रशंसा की। कहा, सालों बाद देसी भोजन खाकर आज कितनी तृप्ति हुई है, और वह भी अपनी भाभी के साथ बैठकर। भोजन समाप्त होने पर लता ने कहा—

'आप तो बहुत थके हुए होंगे। अब चल कर विश्राम कीजिये। रामू ने आपका बिस्तर लगा दिया होगा।'

'आप से मिलकर मेरी सब थकान दूर हो गई है। चलिये, अभी कुछ देर और साथ बैठें।'

'तो फिर आप अपने बेड रूम में चलिये। आप अपने ये कपड़े उतार डालिये, और रात के सोने के वस्त्र पहन लीजिये। मैं भी अभी आती हूं। जब आपको नींद आने लगे, तो लेट जाइयेगा। मेरी तो अभी लेटने की इच्छा नहीं है। दिन भर खाली जो बैठी रही हूं।'

कपड़े बदल कर वीरेन्द्र अपने बिस्तर पर बैठ गया। लता उसके ठीक सामने ही एक गद्देदार आराम कुर्सी पर आ बैठी। बात शुरू करते हुए उसने कहा—

'आप कहते थे, यूरोप की स्त्रियां अपने प्रियजनों के साथ नृत्य करती हैं। क्या उनके पति इसे बुरा नहीं मानते ?'

'नहीं, भाभी ! यूरोप में नृत्य विलास का साधन नहीं हैं। पाश्चात्य लोगों के लिये वह एक विनोदमात्र है। वहां मां अपने पुत्र के साथ नाचती है, पिता अपनी पुत्री के साथ। भाई और बहन भी साथ मिलकर नाचते हैं, और पति व पत्नी भी। स्त्रियां अपने मित्रों व परिचितों के साथ नृत्य करने में कोई दोष नहीं समझतीं। नृत्यशाला में जाकर नर-नारियों को कितने ही नये लोगों से परिचय का अवसर मिलता है। इन नव-परिचितों के साथ नाचने में उन्हें जरा भी संकोच नहीं होता। यह उनके विनोद का साधन जो है।'

'पर स्त्री-पुरुषों के इस प्रकार के सहनृत्य से क्या कभी कोई कलुषित भाव उत्पन्न नहीं होते ?'

'क्यों नहीं होते। मनुष्य एक निर्बल प्राणी है। कभी-कभी इससे बुरे परिणाम भी उत्पन्न हो जाते हैं। पर इन्हें अपवाद ही समझना चाहिये।'

'आप भी तो नृत्यकला में खूब प्रवीण हो गये होंगे ?'

'अंग्रेजी में कहावत है, जब रोम में रहो, तो रोमन लोगों की तरह

से रहो। सालों तक यूरोप और अमेरिका में रहने के कारण मुझे भी नाचना आ गया है।'

'क्या आप मुझे नृत्य नहीं सिखाएँगे ? आपकी बातें सुनकर इच्छा होती है, यदि मुझे भी नाचना आता होता, तो कितना अच्छा होता।'

'मैं तो देर तक मेरठ नहीं ठहर सकूंगा। शीघ्र ही मुझे लखनऊ जाना है, अपने माँ-बाप से मिलने के लिये। पर जब आप यूरोप जाएँगी, तो इस कला को सीखने में आपको जरा भी देर नहीं लगेगी।'

'क्या आप मेरे लिये दस दिन भी यहाँ नहीं ठहर सकते ?'

'क्यों नहीं, भाभी ! समय निकालकर मैं अवश्य ही आपके पास आकर रहूँगा। पर अब तो मुझे शीघ्र ही लखनऊ जाना है। पर भाई विनोद के लौटने तक तो मुझे यहाँ रहकर उनकी इन्तजार करनी ही होगी। वे परसों तक मेरठ लौट रहे हैं न ?'

इसी प्रकार की बातें करते-करते रात के बारह बज गये। दीवार पर लगी क्लाक से बारह का घण्टा सुनकर लता चौंक पड़ी। उसने कहा—

'ओह ! मैं भी कैसी स्वार्थी हूँ। आधी रात बीत गई। आपके विश्राम की मैंने जरा भी परवाह नहीं की। इतनी देर तक आपको जगाये रखा। अब जाती हूँ, सुबह फिर आऊँगी। रामू आपको सुबह ही बेड टी (छोटी हाजरी) दे जायगा।'

नरेन्द्र के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही लता तेजी के साथ कमरे से बाहर चली गई। वह अपने कमरे में जाकर चुपचाप लेट गई। उसका मन अशान्त था। उसके हृदय में एक तूफान-सा उठ रहा था। नारी जीवन का एक नया रूप आज इतने सजीव रूप में अकस्मात् ही उसके सम्मुख उपस्थित हो गया था। देर तक वह करवटें बदलती रही। न जाने उसे कब नींद आ गई। सुबह जब उसकी आँखें खुलीं, तो सर्वत्र धूप छा गई थी। रात भर बरस कर बादल फट गये थे, और आसमान साफ हो गया था। उसने घड़ी देखी, तो उसमें आठ बज रहे थे।

(२)

बिस्तरा छोड़कर लता ने रामू को आवाज दी, और पूछा—साहब क्या कर रहे हैं ?'

'वे तो देर से तैयार बैठे हैं, और ड्राइंग रूम में बैठे हुए हाजरी (प्रातराश) का इन्तजार कर रहे हैं।'

'उन्हें छोटी हाजरी तो दे दी थी ?'

'हाँ, हुजूर ! वह तो मैं सुबह छः बजे ही दे आया था।'

'जाओ, हम अभी आते हैं। जल्दी हाजरी मेज पर लगा दो।'

रामू को आदेश देकर लता गुसलखाने में चली गई। जल्दी-जल्दी नित्यकर्मों से निवृत्त होकर उसने स्नान किया, और शृंगार करने के लिये बैठ गई। आज उसने अपने शरीर के प्रसाधन पर विशेष ध्यान दिया। तैयार होकर वह बैठक में गई और बोली—

'माफ कीजिये, भाई वीरेन्द्र ! आज मुझे उठने में बहुत देर हो गई। क्या बताऊँ, रात को नींद ही नहीं आई। सारी रात यूं ही करवटें बदलते हुए बीत गई। सुबह कुछ देर के लिये आँख लगी थी, सो उठने में इतनी देर हो गई। आप तो अच्छी तरह सोये ?'

'सच कहूँ, भाभी ! आपसे बातें करके अभी तबियत नहीं भरी थी। नींद भी नहीं आ रही थी। पर आप तो एकदम उठकर तीर की तरह बाहर चली गईं। क्या अच्छा होता, आप कुछ देर और बैठतीं। बिस्तर पर पड़े-पड़े करवटें बदलते रहने से तो यह कहीं अधिक अच्छा होता, कि हम आपस में बातें ही करते रहते।'

'अच्छा, आज सही। दिन भर और काम ही क्या है ?'

'सोचता हूँ, आज मैं आगरा हो आऊँ। बहुत दिनों से ताजमहल देखने की इच्छा है। आज पूर्णिमा है। सुना है, चाँद की चाँदनी में ताज का रूप शतगुण हो जाता है। कल तो भाई विनोद आ ही जाएँगे। आज कोई काम भी नहीं है। क्यों न आज आगरा जाकर ताज को देख आऊँ।'

रामू ने सूचना दी, हाजरी तैयार है। लता और वीरेन्द्र खाना खाने के

कमरे में चले गये । हाजरी खाते हुए लता ने प्रश्न किया—

'तो क्या आज आप आगरा जरूर जाएँगे ?'

'विचार तो यही है । ताज देखने का इससे अच्छा अवसर फिर कब मिलेगा ?'

'तो क्यों न मैं भी आपके साथ चली चलूं । ताज मैंने भी नहीं देखा है । मुझे यहाँ काम ही क्या है ? अकेली पड़ी-पड़ी मक्खियाँ मारती रहूँगी। कार्तिकी पूर्णिमा को हमारे कितने ही पड़ोसी ताज देखने के लिये आगरा गये थे । पर आपके भाई साहब को 'फिलोसोफिकल रिव्यू' के लिये एक लेख लिखना था । कहने लगे, आज बहुत काम है । मैं क्या करती, मन मारकर रह गई । यदि आप आगरा जाएँगे, तो मै भी साथ चलूंगी ।'

'मुझे इसमें क्या एतराज हो सकता है ? आप स्वयं सोच लीजिये ।'

'आप व्यर्थ संकोच न करें । मैं आपके भाई साहब को खूब अच्छी तरह जानती हूँ। उन्हें मेरे आपके साथ जाने में कोई विप्रतिपत्ति न होगी । वे तो इससे खुश ही होंगे । कहेंगे, अच्छा किया जो तुम वीरेन्द्र के साथ ताज देख आई । मुझे तो फुरसत ही नहीं मिलती ।'

'तो फिर यही सही । पर रात को आगरा में ठहरेंगे कहाँ ?'

'ठहरने को भी कोई न कोई जगह मिल ही जायगी ! अभी से इसकी चिन्ता क्यों करें । पहले चलें तो । रात का खाना साथ ले जाएँगे । ताज के पास तो शायद कोई अच्छा रिस्तोराँ होगा नहीं ।'

'लता ने बड़े उत्साह के साथ आगरा जाने की तैयारी शुरू कर दी। खानसामा को बुलाकर उसने रात का भोजन तैयार करने का आदेश दे दिया, और रामू को बिस्तरा बाँधने व अन्य सामान तैयार करने के लिये कह दिया । सब प्रबन्ध कर लता ने कहा—

'रेलवे का टाइम टेबल तो आपके पास होगा। आगरा की गाड़ी किस समय जाती है ?'

'रेल से जाने पर बहुत समय लग जायगा । क्यों न एक टैक्सी मँगा लूं ? आने-जाने की टैक्सी कर लेंगे। इससे बहुत सहूलियत

ताँगे आदि की परेशानी नहीं होगी।'

'यदि टैक्सी से ही चलना है, तो अच्छा है, जल्दी ही चले चलें। दोपहर का भोजन दिल्ली जाकर कर लेंगे। मेरे हृदय में दिल्ली के लिये बहुत आकर्षण है। कितने साम्राज्यों का उत्थान और पतन इस नगरी ने देखा है। कितने गर्वोन्मत्त राजाओं की विलुप्त कीर्ति इस नगरी के खण्डहरों में बिखरी पड़ी है। संसार का वैभव कितना क्षणिक और निःसार है, इस तथ्य की अनुभूति मुझे दिल्ली जाकर होने लगती है। सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के गरुड़ध्वज को देखकर मेरा हृदय विषाद से भर जाता है। हिन्दूकुश पर्वतमाला को पार कर वंक्षु नदी तक के प्रदेश को विजय करने वाले इस प्रतापी सम्राट् का लौह कीर्तिस्तम्भ आज गिरी पड़ी मसजिदों के बीच में खड़ा है। कैसा हृदयभेदी दृश्य है।'

'भाई विनोद के साथ रह कर आप भी इतनी भावुक हो गई हैं, यह मुझे मालूम न था।'

'हाँ, वीरेन्द्र! आपके भाई साहब प्राचीन इतिहास और दर्शन की कितनी ही बातें मुझे सुनाते रहते हैं। उनकी विद्वत्ता बहुत गम्भीर है, उनकी अनुभूति अगाध है। चिन्तन और विचार की जिस ऊँचाई तक वे पहुँचे हुए हैं, मैं उस तक कभी भी नहीं पहुँच सकती। कई बार मैं सोचने लगती हूँ, कि मैं कहीं उनसे बहुत पीछे न रह जाऊँ, और मेरे सान्निध्य से जो सम्बल उन्हें प्राप्त होता है, मैं उससे उन्हें वञ्चित न कर दूँ। अच्छा, तो क्या मैं रामू को टैक्सी लाने के लिये कह दूँ?'

'हाँ, उसे कह दीजिये कि ग्यारह बजे तक टैक्सी यहाँ पहुँच जाए।'

ठीक ग्यारह बजे टैक्सी आ गई। लता तैयार थी। दरी, तकिये आदि रख कर एक बिस्तर तैयार कर लिया गया था। सांझ के भोजन की सब सामग्री टिफन कैरियर में रख ली गई थी। रामू ने सब सामान टैक्सी में रख दिया। लता टैक्सी की पिछली सीट पर बैठ गई। वीरेन्द्र ड्राइवर के साथ की सीट पर बैठने के लिये दरवाजा खोलने लगा, तो लताने कहा—

'मेरे पास यहीं आजाइये, भाई वीरेन्द्र ? यहाँ बहुत जगह है। बात करने में सुविधा रहेगी।'

वीरेन्द्र ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप लता की बगल में टैक्सी की पिछली सीट पर बैठ गया। गाड़ी चल पड़ी। लताने कहा— 'क्या आपको मेरे साथ बैठने में संकोच अनुभव होता है ?'

'नहीं, भाभी ! इसमें संकोच की कोई बात नहीं। यूरोप में तो स्त्री पुरुषों के इस प्रकार साथ बैठने में कोई भी दोष नहीं माना जाता। भारत की दशा को दृष्टि में रख कर ही मुझे कुछ ख्याल हुआ था। मुझे स्मरण है, कि जब मैं पहले पहल पेरिस गया, तो वर्साय जाने वाली एक टैक्सी पर जा बैठा। वर्साय के राजप्रासादों का हाल तो आपने सुना ही होगा। आज तो फ्रांस में रिपब्लिक है। पर अठारहवीं सदी के अन्तिम भाग तक वहाँ बूर्बो वंश के राजाओं का शासन था। ये राजा बड़े वैभवशाली और विलासी थे। वर्साय इनकी रंगभूमि थी। आमोद प्रमोद और भोग विलास के लिये वहाँ उन्होंने विशाल राजप्रासादों का निर्माण कराया था। वर्साय का पार्क संसार के सबसे सुन्दर और कलामय पार्कों में गिना जाता है। नग्न नर-नारियों की सुन्दर मूर्तियाँ वहाँ इतनी बड़ी संख्या में हैं, और उनकी भाव भंगी इतनी मनोमोहक है, कि उन्हें देख कर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। पेरिस और वर्साय के बीच में टैक्सियाँ वैसे ही चलती हैं, जैसे मेरठ में तांगे। मैं टैक्सी की पिछली सीट पर अकेला बैठा था। एक युवती आई, और मेरे साथ बैठ गई। उसे भी वर्साय जाना था। ड्राइवर के साथ की सीट खाली पड़ी थी, पर वह वहाँ नहीं बैठी। एक नव यौवना फ्रेन्च महिला के साथ अकेले बैठा होने के कारण मुझे बहुत संकोच हुआ। ड्राइवर को और कोई सवारी नहीं मिली। हम दोनों को लेकर ही वह वर्साय के लिये चल पड़ा। बाद में तो मुझे अपरिचित स्त्रियों के साथ बैठने की आदत पड़ गई।'

'पर मैं तो आपकी अपरिचित नहीं हूँ।'

लता और वीरेन्द्र में इसी प्रकार बातें होती रहीं। एक बजे

पहले ही टैक्सी नई दिल्ली पहुँच गई। कनाट सर्कस आकर वीरेन्द्र ने पूछा—

'आप तो भाभी ! दिल्ली से खूब परिचित होंगी। यहां के किसी अच्छे रिस्तोरां का पता बताइये। चल कर पहले भोजन कर लें।'

'मैं दिल्ली आई तो कई बार हूं। पर यहां के रिस्तोरां आदि के सम्बन्ध में अधिक नहीं जानती। आपके भाई साहब को इन का शौक नहीं है। दिल्ली यूनिवर्सिटी में उनके एक मित्र हैं, जिन्हें वे बहुत मानते हैं। जब कभी दिल्ली आते हैं, उन्हीं के पास ठहरते हैं, और वहीं भोजन करते हैं। सामने वह अम्बेसेडर रिस्तोरां लिखा है, देखने में तो अच्छा ही मालूम देता है, वहीं चले चलें।'

टैक्सी अम्बेसेडर के सम्मुख रुक गई। वेटर ने आकर दरवाजा खोला, और सलाम किया। लता और वीरेन्द्र एक टेबल पर जा बैठे। मेनू देख कर लता ने कहा—'आप तो अंग्रेजी-खाना पसन्द करेंगे। कहिये, तो उसका आर्डर कर दूं।'

'तो आप भी अंग्रेजी खाना ही खाएंगी न ?'

'मैंने अनेक बार यूरोपियन खाना खाया तो है। पर मुझे उसकी आदत नहीं है। अपने लिये मैं कारी भात मंगाये लेती हूं। क्यों ठीक है न ?'

'नहीं, भाभी ! जो आप खाएंगी, वही मैं भी खाउंगा। इतने साल यूरोप में रहने के कारण अंग्रेजी खाने की आदत जरूर पड़ गई है, पर देसी भोजन के स्वाद को भूला नहीं हूं।'

'तो फिर आपके साथ आज मैं भी अंग्रेजी खाना ही खाउंगी। पर कांटे छुरी का इस्तेमाल मुझे ठीक तरह से नहीं आता। आप हँसियेगा नहीं। यदि कहीं गलती हो जाए, तो धीरे से मुझे बता देना। आप से एक नई बात ही सीख लूंगी।'

दूर पर खड़ा वेटर आर्डर का इन्तजार कर रहा था। लता ने उसे दो लंच लाने को कहा। प्लेट, छुरी, चम्मच, कांटे आदि सब कायदे से टेबल पर सजे हुए थे। सबसे पहले सूप आया। टमाटर का सूप था, जिस

पर क्रीम के कतरे तैर रहे थे। उसे पीते हुए लता ने कहा—'अंग्रेजी खाने में मुझे सूप बहुत अच्छा लगता है। स्वाद और गुण दोनों में यह अनुपम होता है। अपने घर पर भी मैं अकसर सूप बनवाया करती हूँ।' अगली प्लेट चिकन (मुर्ग) की थी, आलू और सब्जी के साथ। लता को मांस से परहेज नहीं था, पर भुने हुए मुर्गे को देख कर उसने कुछ उद्विग्नता सी अनुभव की। छुरी कांटे की सहायता से चिकन के कुछ टुकड़े मुँह में डाल कर उसने आलू और सब्जी से अपनी क्षुधा को शान्त किया। फिश (मच्छी) की डिश उसे बहुत अच्छी लगी। फलों और केक से मिल कर बने हुए पुडिंग को भी उसने स्वाद के साथ खाया। अम्बेसेडर रिस्तोरां में काफी बहुत अच्छी बनती थी। उसका घूँट भरते हुए लता ने कहना शुरू किया—

'आप तो सदा इसी तरह के रिस्तोराँ में भोजन करते होंगे, वीरेन्द्र भाई।'

'दिल्ली का यह रिस्तोराँ तो बहुत मामूली है। लण्डन और पेरिस में ऐसे बड़े-बड़े रिस्तोराँ हैं, जहां सैकड़ों नर नारी एक साथ बैठ कर भोजन करते हैं। सामने आर्केस्ट्रा बजता रहता है। साँझ के समय उनमें नाच भी होता है। अनेक सुन्दर नर्तकियाँ अपनी कला से दर्शकों का मनोरंजन करती हैं। नाच के साथ-साथ भोजन भी चलता रहता है। वाद्य, संगीत, नृत्य आदि के कारण इन भोजनालयों में एक अद्‌भुत समा बंध जाता है।'

'ऐसे रिस्तोराँ में भोजन का खर्च क्या पड़ता है?'

'एक समय के खाने का पन्द्रह रुपया समझिये। ऐसे भी रिस्तोराँ हैं, जिनमें इससे भी अधिक खर्च बैठता है। पर यूरोप के बढ़िया किसम के रिस्तोराँ के लिये दस पन्द्रह रुपया तो कोई बड़ी बात नहीं है। वैसे वहाँ सस्ने भोजनालय भी हैं, जिनमें दो ढाई रुपये से काम चल जाता है।'

काफी पीते हुए वीरेन्द्र ने सिगरेट का बक्स लता की ओर बढ़ा दिया। रिस्तोरां में अन्य लोगों के सम्मुख सिगरेट लेते हुए लता ने कुछ संकोच

अनुभव किया। पर उसका हाथ स्वयं ही सिगरेट की ओर बढ़ गया, और उसे होठों में दबाते हुए उसने धीरे धीरे कहा—

'आपने भी खूब दुनिया देखी है। आपके भाई साहब की भी इच्छा है, कि अगले साल गर्मियों में यूरोप की यात्रा कर आएं। विलायत की कुछ यूनिवर्सिटियों से उन्हें निमन्त्रण भी आए हैं। कहते थे, अगले साल जुलाई में ब्रिटिश कामनवेल्थ की यूनिवर्सिटियों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन लन्डन में होगा। आगरा यूनिवर्सिटी उन्हें भी इस सम्मेलन के लिये प्रतिनिधि चुन रही है। यदि वे गये, तो मैं भी अवश्य उनके साथ जाऊंगी।'

वेटर बिल ले आया था। बिल की रकम को चुकता करने के लिए वीरेन्द्र ने जेब में हाथ डाला ही था, कि लता ने उसे रोककर कहा—

'यह मत भूलिए, कि आप मेरे मेहमान हैं। बिल की रकम मैं दूंगी।'

यह कहकर उसने दस रुपये का नोट बिल वाली प्लेट में रख दिया, और खरीज के पैसों का इन्तजार किये बिना ही उठकर खड़ी हो गई। वेटर ने झुककर मेमसाहब को सलाम किया, और लता व वीरेन्द्र टैक्सी पर जा बैठे।

कनाट प्लेस से वे कुतुब गए। आध घण्टे वहां रुक कर उन्होंने तुगलकाबाद की ओर प्रस्थान किया। वहां पहुंचकर लता ने कहा—'तुगलकाबाद के पुराने खण्डहरों में घूमना मुझे बहुत अच्छा लगता है। इन सूखी पहाड़ियों के बीच में जो एक विशाल सरोवर है, वह कितना सुन्दर है। यदि समय हो, तो उसे देखते चलें।'

'वह यहां से कितनी दूर है?'

'कोई पौना घण्टा पैदल चलना पड़ेगा।'

'हमें अभी बहुत दूर जाना है। आगरा पहुंचते-पहुंचते रात हो जायगी। यदि समय मिला, तो लौटते हुए कल इसे भी देख लेंगे।'

टैक्सी तेजी के साथ मथुरा की ओर बढ़ चली। वहां पहुंचने तक सूरज डूब गया था। दिसम्बर के महीने में दिन होता ही कितना है।

वीरेन्द्र ने कहा—

'चलिए, कहीं चाय पी लें। चाय की भी बुरी आदत होती है। शराब की लत तो छूट भी जाती है, पर एक बार चाय की आदत पड़ जाए, तो जिन्दगी भर पीछा नहीं छोड़ती।'

मथुरा के एक रिस्तोरां में चाय पीकर वे आगे बढ़े। जब तक वे आगरा पहुँचे, रात हो गई थी। वीरन्द्र ने कहा—'क्यों न पहले किसी होटल में रात बिताने का इन्तजाम कर लें।'

'नहीं, पहले सीधे ताजमहल चले चलिये। होटल ढूँढ़ते हुए देर हो जायगी। आधी रात बीत जाने पर ताज देखने में क्या मजा आयगा ? साँझ के भोजन का भी समय हो रहा है। ताज के उद्यान में फुलवारी के नजदीक बैठकर भोजन करेंगे। हमें रात ही तो बितानी है, किसी न किसी होटल में जगह मिल ही जायगी।'

टैक्सी ताजमहल के सामने आकर रुक गई। कैसा अद्‌भुत दृश्य था। पूर्णिमा की चाँदनी में ताज एक मोती के समान चमक रहा था। लता और वीरेन्द्र उसे देखते ही रह गये। वे दस मिनट तक मन्त्रमुग्ध के समान उसे एकटक देखते ही रहे। फिर लता ने कहा—'भगवान् की उपासना के लिए लोगों ने कितने मन्दिरों का निर्माण किया। पर यह तो प्रेम का मन्दिर है। शाहजहाँ का प्रेम सचमुच अमर है।'

घड़ी देखकर वीरेन्द्र ने कहा—'देखिये, दस बजने वाले हैं। आइये, कहीं बैठकर भोजन कर लें।'

लता अपने विचारों में डूबी हुई थी। वह सोच रही थी, शाहजहाँ का प्रेम सचमुच महान् था। यदि वे भी शाहजहाँ के समान वैभवशाली होते, तो क्या मेरी समाधि भी इसी ढंग से न बनवाते ? पर प्रेम को अमर करने का केवल एक यही साधन तो नहीं है। वे कहा करते हैं, मेरी जो सबसे उत्कृष्ट पुस्तक होगी, उसे तुम्हें समर्पण करूँगा। जब त[illegible] मेरी पुस्तक जीवित रहेगी, तुम्हारा नाम भी अमर रहेगा। यह ता[illegible] चार सदी बाद खण्डहर हो जायगा। पर उनकी पुस्तक ? व[illegible]

त्स्यायन, कालिदास और वाल्मीकि की रचनाओं के समान अमर रहेगी। ारों साल बाद भी लोग इसे पढ़ेंगे। और उसके साथ-साथ मेरा नाम ी…'

वीरेन्द्र ने फिर कहा—'भाभी ! बहुत देर हो गयी है, चलिए, अब ोजन के विषय में।'

लता कुर्सी की एक कतारी के पास जाकर बैठ गई। वैसी झुककर फल मँगाकर उठा लाया। भोजन करते हुए वीरेन्द्र ने कहा—'आप किस कल्पना में मग्न हैं, भाभी !'

'ताजमहल को देखकर मैं अपनी सुध-बुध भूल गई हूँ। प्रेम भी कैसी द्भुत वस्तु है, वीरेन्द्र ! क्या आपने कभी किसी से प्रेम नहीं किया !'

'प्रेम क्या है, यह मैं नहीं जानता। वासना का शिकार मैं अवश्य हुआ ँ, पर वासना से भिन्न भी प्रेम की कोई सत्ता है, इसकी मुझे कुछ भी नुभूति नहीं है।'

'नहीं, वीरेन्द्र ! आप गलती पर हैं। प्रेम और वासना में उतना ही न्तर है, जितना कि प्रकाश और अन्धकार में। बीमार पति की सेवा रने में स्त्री जो अपने तन-मन की सुध बुध खोती है, उसका कारण क्या ासना होती है ? वासना नश्वर है, प्रेम अमर है। यह जो ताज सामने ड़ा है, यह शाहजहाँ के अमर प्रेम की जीती-जागती प्रतिमा नहीं है, तो या है ? यदि शाहजहाँ का प्रेम वासना से भिन्न अन्य कोई रूप न रखता, ो वह इस ताज की कल्पना को मन में भी न ला सकता।'

'क्या कहूँ भाभी ! मुझे तो प्रेम की यह फिलासफी बिल्कुल भी समझ ें नहीं आती। स्त्री और पुरुष के जिस सम्बन्ध को आप प्रेम के नाम से हती हैं, वह कुछ अंश तक तो कामवासना का परिणाम है, और कुछ ंश तक आर्थिक अन्योन्याश्रयिता का।'

'प्रेम के इस पवित्र मन्दिर में बैठकर ऐसी बातें न करो, भाई वीरेन्द्र! ससे पाप लगेगा।'

इसी प्रकार से बातें करते-करते बहुत देर हो गई। वीरेन्द्र ने कहा—

'आप विवाह क्यों नहीं कर लेते, वीरेन्द्र भाई। कहिये तो कोई अच्छी सी लड़की तलाश कर दूँ। अपनी देवरानी मैं स्वयं पसन्द करके लाऊँगी।'

'क्या यह संभव है, कि किसी अपरिचित स्त्री से तुरन्त इतना अपार प्रेम कर सके। आप मेरे लिए जो लड़की देखेंगी, उसका बाह्य-सौन्दर्य देख लेंगी। स्वास्थ्य देख लेंगी, यह भी पता कर लेंगी, कि वह कितनी पढ़ी लिखी है, बोलचाल में कैसी है, उसका घर कैसा है। पर वह मुझसे प्रेम करेगी, और मैं उससे प्रेम कर सकूंगा, इसका क्या भरोसा है?'

'नहीं, वीरेन्द्र! प्रेम हमारे हृदय में होता है। हम सबके हृदय में प्रेम का अनादि अनन्त अगाध नद प्रवाहित हो रहा है। हमारा प्रेमतत्त्व आकाश के समान सर्वव्यापी है—ईश्वर के समान अनादि और अनन्त है। हम अपने प्रेमी में अपने हृदय स्थित इस प्रेम को केन्द्रीभूत कर देते हैं। सर्वव्यापी भगवान् की प्रतिमा जिस प्रकार मन्दिर में स्थापित की जाती है, पर भक्त उस प्रतिमा की तो पूजा नहीं करता, वह तो उस प्रतिमा में भगवान् का साक्षात्कार करता है। इसी प्रकार पति पत्नी में और पत्नी पति में अपने सारे प्रेम को केन्द्रित कर, अनादि अनन्त और सर्वव्यापी प्रेम देवता की उपासना करने लगते हैं। सच्चे प्रेम में पति पत्नी एक दूसरे के गुण दोषों को नहीं देखते। रूप सौन्दर्य व गुण के कारण जो आकर्षण होता है, उसे वासना कहते हैं।'

लता की इन बातों को सुनकर वीरेन्द्र किसी दूसरी ही दुनिया में पहुँच गया। वह अनुभव करने लगा कि उसके हृदय में भी तो यह प्रेम-तत्व विद्यमान है। वह एकटक होकर लता की आँखों की ओर देख रहा था, जिनमें आँसू की बूंदें झलक आई थीं। लता ने कहा—'मुझे इस तरह क्यों देख रहे हो, वीरेन्द्र भैय्या!'

'आपकी आँखों में प्रेम तत्व के दर्शन करने का प्रयत्न कर रहा हूँ, भाभी!'

'पर वह तो आपके हृदय में है।'

'पर उसका साक्षात् करने के लिए किसी प्रतिमा की भी तो आवश्यकता है।'

'आपके प्रेम की प्रतिमा मैं नहीं हो सकती, वीरेन्द्र !'

'यह क्यों, भाभी।'

'क्योंकि मैं तुम्हारे भाई साहब की हूँ।'

'पर क्या मन्दिर में स्थापित भगवान् की प्रतिमा का दर्शन केवल एक ही भक्त करता है ? अकेले कृष्ण कितनी गोपियों को अपने दर्शन से तृप्त करते थे।'

'पर यह न भूलना वीरेन्द्र ! कृष्ण केवल राधा के थे। ओह ! अब तो ताज का यह उद्यान बिल्कुल खाली हो गया है। सब लोग अपने-अपने घर चले गये हैं। मुझे कुछ सर्दी भी अनुभव होने लगी है। चलिये, अब किसी होटल में चलकर आराम करें।'

'आप कम्बल ओढ़ लीजिए। मैं बिस्तर खोल देता हूँ। दरी पर गद्दा और चादर बिछा लेंगे। मुझे तो सर्दी नहीं अनुभव होती। इतने साल यूरोप में रहते रहने के कारण शीत को सहन करने की आदत पड़ गई है। अब एक बज गया है, तीन चार घंटे के लिए क्या किसी होटल में जाएंगे। अब तक कोई होटल खुला भी क्या होगा ?'

'इस समय इस निर्जन स्थान पर अकेले बैठे हुए मुझे कुछ डर सा लग रहा है।'

'आप अकेली नहीं हैं, भाभी ! मैं आपके साथ हूँ। ड्राइवर भी टैक्सी में बैठा है। शायद उसे नींद आ गई है।'

'तो क्या आज की सारी रात आप यहीं पर बिता देना चाहते हैं ?'

'हाँ, भाभी ! आज मुझे पहले पहल सच्चे प्रेम की अनुभूति हुई है। मुझे याद आता है, भाभी ! मैं वर्साय में ठहरा हुआ था। इसी तरह की चाँदनी रात थी। ठण्ड के दिन थे, शायद नवम्बर का महीना था। यूरोप में तो नवम्बर में बहुत ठण्ड पड़ने लगती है। रात के बारह बजे होंगे। मेरी नींद खुल गई। कमरा बहुत गरम हो रहा था। अंगीठी

में आग बहुत तेज होगई थी। सोचा, दो मिनट के लिये खिड़की खोल दूं। खिड़की से वसोय का विशाल पार्क नजर आ रहा था। शीतल चांदनी में स्नान करती हुई नर नारियों की नग्न मूर्तियों को देख कर मैं मन्त्र-मुग्ध सा रह गया। देर तक खिड़की के सामने खड़ा रहा। कुछ समय बाद दूर पर मुझे एक छाया मूर्ति सी आगे बढ़ती हुई दिखाई दी। धीरे-धीरे वह मूर्ति नजदीक आती गई। चांदनी के प्रकाश में मैंने साफ-साफ देखा, दो प्रेमी एक दूसरे से चिपटे हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। उनके हाथ एक दूसरे की कमर से लिपटे हुए हैं। क्षण-क्षण बाद वे एक दूसरे का चुम्बन करते हैं। उस समय मुझे उनको देख कर हँसी आ गई थी। पर आज सोचता हूँ, मेरी भी कोई प्रेयसी होती। उसके साथ ताज के इस प्रेम मन्दिर की उसी ढंग से परिक्रमा करता।'

'बैठे-बैठे मुझे ठण्ड लग रही है। चलिये, हम भी घूमना शुरू कर दें।'

लता और वीरेन्द्र देर तक पार्क में साथ-साथ घूमते रहे। वे चुपचाप थे। दोनों के हृदयों में तूफान सा उठ रहा था। उसके कारण उनका गला अवरुद्ध सा हो गया था। इस मौन को भंग करते हुए अचानक लता ने कहा—'मैं तो भूल ही गई थी। बम्बई की गाड़ी सुबह सात बजे दिल्ली पहुँचती है। यदि वे रेल गाड़ी से मेरठ आये, तो दस बजे से पहले वहाँ नहीं पहुँच सकेंगे। क्यों न हम दिल्ली के रेलवे स्टेशन से ही उन्हें अपने साथ ले लें। मुझसे और आप से अकस्मात् मिलकर उन्हें कितनी प्रसन्नता होगी।'

'अब ढाई बजे हैं। यदि हम अभी चल पड़ें, तो सात बजे से पहले ही दिल्ली पहुँच जाएंगे।

'तो फिर तुरन्त वापस चले चलिये।'

टैक्सी तेजी के साथ दिल्ली की सड़क पर चल पड़ी। लता और वीरेन्द्र पिछली सीट पर बैठे हुए थे। दोनों थके हुए थे। शीघ्र ही नींद से उनकी आँखें बन्द हो गईं। गन्ने से भरी बैलगाड़ियों से बचने के लिये

'इसकी कोई आवश्यकता नहीं, भाभी ! मैं भी भाई विनोद के साथ ही चाय पीऊँगा। पर चलिये, वेटिंग रूप में जाकर मुँह-हाथ तो धो लें। अभी तो गाड़ी आने में देर है।'

पर लता की आँखें रेल की पटरी पर लगी हुई थीं। अपने प्रीतम से मिलने के लिये वह व्याकुल हो रही थी। वीरेन्द्र उसकी तड़पन को ताड़ गया। उसने हँसते हुए कहा—

'इतनी वेसवर न होओ, भाभी ! भाई विनोद के इन्तजार में आपने मुझे तो विलकुल ही भुला दिया।'

'यह वात नहीं है, वीरेन्द्र ! दो दिन आप के साथ रहकर जो रस मैंने प्राप्त किया है, उसे कभी नहीं भूल सकती। ताजमहल की यह यात्रा तो मुझे सदा स्मरण रहेगी।'

लता और वीरेन्द्र वेटिंग रूम में चले गये। हाथ मुँह धोकर जब लता तैयार हुई, तो साढ़े सात वज गये थे। वह तुरन्त प्लेटफार्म पर चली आई, और उत्सुकतापूर्वक वोम्वे एक्सप्रेस के आने की प्रतीक्षा करने लगी। वीरेन्द्र चुपचाप उसके साथ खड़ा था।

(३)

दिल्ली के स्टेशन पर लता और वीरेन्द्र को खड़ा देखकर प्रोफेसर विनोद के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उसने अकचका कर कहा—
'अरे, तुम लोग यहाँ कहाँ ?'

'तुम्हारा स्वागत करने के लिए दिल्ली आया हूँ, और भाभी को भी साथ ले आया हूँ।' वीरेन्द्र ने उत्तर दिया। लता चुपचाप खड़ी दोनों मित्रों के मिलन को देख रही थी।

'तुम यूरोप से लौटे कव ? तुमने तो मुझे खवर तक नहीं दी।'

'परसों हवाई जहाज से दिल्ली आया था। तुमसे मिलने के लिए सीधा मेरठ चला गया, पर तुम तो मद्रास में विशिष्टाद्वैत की फिलासफी छांट रहे थे।'

'मेरी अनुपस्थिति में तुम्हें घर पर कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?'

लता और वीरेन्द्र की यात्रा का वृत्तान्त सुनकर प्रोफेसर विनोद कुछ गम्भीर हो गये। उनके मुख के भाव को समझकर लता ने कहा—

'क्या मैंने कोई अनुचित कार्य किया ? क्या तुम्हें वीरेन्द्र के साथ मेरा अकेले जाना अच्छा नहीं लगा ?'

'नहीं, लता ! यह बात नहीं है। अच्छा हुआ, जो तुम ताज देख आईं। इसकी तुम्हें कितने दिनों से इच्छा थी। मुझे फुरसत ही कब मिलती है ? पर रात भर जागने के कारण तुम बहुत थक गई होगी ?'

'ताज को देखकर मैं मन्त्रमुग्ध सी हो गई थी। वहाँ न मुझे भूख लगी, और न नींद ही आई। लौटते हुए टैक्सी में कुछ देर के लिये झपकी आ गई थी।'

टैक्सी पर असबाब बंधवाकर वीरेन्द्र वापस लौट आया। लता और विनोद को चाय पीते देखकर उसने कहा—

'वाह खूब, हमारी इन्तजार भी नहीं की। मियाँ-बीबी खुद चाय पीने बैठ गये।'

'आइये, आपके लिये भी चाय तैयार है।' कह कर लता ने तीसरे प्याले में चाय डाल दी।

'अब सुनाओ, वीरेन्द्र ! इस तरह अचानक भारत कैसे चले आए ?'

'विदेश रहते बहुत दिन हो गये थे। तुम सबसे मिलने की बहुत इच्छा थी। सोचा, एक बार भारत हो आऊँ। पिताजी भी बार-बार घर आने के लिए लिख रहे थे।'

'अब कितने दिन भारत रहने का विचार है ?'

'आया तो दो महीने के खयाल से था। पर शायद अधिक टिक जाऊँ।'

'ताज को देख कर अब ये भी विवाह की बात सोचने लगे हैं। कहते हैं, मैं भी अपनी प्रेयसी की स्मृति में एक नये ताजमहल का निर्माण कराऊँगा।' लता ने हँसते हुए कहा।

'और आप तो कहती थीं कि भाई साहब अभी से एक साहित्यिक

आओ। कैसे-कैसे मामूली आदमी आज विदेशों में भारत के राजदूत बने हुए हैं। पर इन्हें तो अपने तत्त्व चिन्तन से ही फुरसत नहीं मिलती। नागार्जुन, धर्मकीर्ति, रामानुज, कान्ट और हीगल के अध्ययन में ऐसे डूब गये हैं, कि अन्य किसी बात पर ध्यान ही नहीं देते।'

'भाभी, आप ही इन्हें समझाइये।'

'मैं तो कहते-कहते थक गई। शायद आपकी बात का कुछ असर पड़े। आप ही समझाइये न?'

'भाई विनोद! योग्य व्यक्तियों के लिए उन्नति करने का अब अपूर्व अवसर है। यदि तुम्हें संकोच हो, तो मैं ही दिल्ली जाकर मिल आऊँ। जर्नलिस्ट के रूप में मुझे सब जानते हैं।

'नहीं, वीरेन्द्र! मैं अपने कार्य से बहुत सन्तुष्ट हूँ। किसी देश की वास्तविक उन्नति उसके वैज्ञानिकों, विद्वानों और तत्त्वचिन्तकों से ही होती है। स्टीम इंजन, रेडियो व परमाणुशक्ति का आविष्कार जिन लोगों ने किया, मानव इतिहास में उनका अधिक महत्त्व है, या राजनीतिज्ञों का? रूसो और कार्ल मार्क्स जैसे तत्त्वचिन्तकों ने मनुष्य के हित व कल्याण के लिए क्या किसी राजनीतिक नेता से कम काम किया है? कपिल कणाद और प्लेटो के विचार हजारों साल बीत जाने पर आज भी मनुष्य-जाति का पथ-प्रदर्शन करते हैं। उनके समय के राजनीतिज्ञों का तो नाम तक कोई नहीं जानता। यदि स्वतन्त्र भारत को रूस, अमेरिका और इंगलैण्ड का समकक्ष बनना है, तो उसके प्रतिभाशाली लोगों को राजनीतिक क्षेत्र में उन्नति करने की अपेक्षा तत्त्वचिन्तन, वैज्ञानिक खोज और साहित्य-निर्माण को अधिक महत्त्व देना होगा।'

रास्ते भर विनोद और वीरेन्द्र में इसी तरह की बातें होती रहीं। जब टैक्सी मेरठ पहुँची, तो पौने दस बज गये थे। लता जानती थी, कि आज कालिज की छुट्टी नहीं है, और प्रोफेसर साहब को ग्यारह बजे तक कालिज पहुँचना है। वह उनके नहाने धोने का इन्तजाम करने में लग गई। जल्दी-जल्दी स्नान आदि से निवृत्त होकर सब लोग डाइनिंग-

वैठकर वातें करें। लेटने की मेरी भी इच्छा नहीं है। आपसे देश विदेश की वातें सुनने में मुझे वहुत आनन्द आता है।"

लता और वीरेन्द्र ड्राइङ्ग रूम में जा वैठे। लता को सिगरेट आफर करते हुए वीरेन्द्र ने कहा—'आप भाई साहव को समझाती क्यों नहीं? इन जैसे योग्य व्यक्ति को क्या इस प्रकार मुदर्रसी करते हुए अपना सारा जीवन विता देना चाहिये। जर्नलिस्ट की हैसियत से मैं फ्रांस, स्विटजरलैंड, इटली, ईजिप्ट आदि के भारतीय राजदूतों से कितनी ही वार मिला हूँ। योग्यता में विनोद उनसे कहीं वढ़-चढ़कर है। उसका व्यक्तित्व भी अनुपम है।'

'मेरी तो वे कुछ सुनते ही नहीं। आप ही उन्हें समझाइये न?'

'एक और वात कहूं, भाभी! डिप्लोमैटिक सर्विस में स्त्री का वहुत महत्व होता है। यदि स्त्री सुशिक्षित, सुसंस्कृत व रूपवती हो, तो राजदूत को अपने काम में वहुत मदद मिलती है। राजदूतों को अनेक पार्टियों में शामिल होना होता है। अपने दूतावास में उन्हें वहुत सी पार्टियां देनी होती हैं, जिनमें विविध देशों के राजप्रतिनिधि निमन्त्रित किये जाते हैं। यूरोप में स्त्री सार्वजनिक जीवन से अलग रहकर घर की चहार दीवारी में ही वन्द नहीं रहती। राजदूतों की स्त्रियाँ पार्टियों में शामिल होती हैं, सवसे खुलकर वातचीत करती हैं। भारत में इस प्रकार के सुयोग्य पुरुषों की वहुत कमी है, जिनकी पत्नियाँ भी सुसंस्कृत हों। मैं सच कहता हूँ, भाभी! मैं कितने ही भारतीय राजदूतों की पत्नियों से मिला हूँ। आप जैसा प्रखर व्यक्तित्व मैंने किसी में भी नहीं देखा।'

'वेकार की वातें न वनाओ।'

'मैं झूठ नहीं कहता, भाभी! भेंट तो आपसे पहले भी हुई थी। पर इन सात सालों में आप में वहुत अन्तर आ गया है। इस काल में आपके व्यक्तित्व का जो विकास हुआ है, वह सचमुच आश्चर्यजनक है।'

'क्या यह सच है?'

'विलकुल सच। पहले तो आपको मर्दों से मिलने में भी संकोच होता

वे अपने को सर्वथा अशक्त अनुभव करते हैं। मुझे भी यह जानकर सन्तोष होता है, कि मैं इतने बड़े दार्शनिक और विद्वान् के तत्वचिन्तन की आधार हूं।'

'पर यह क्या पर्याप्त है, भाभी ! क्या नारी के जीवन का केवल यही प्रयोजन है, कि वह किसी पुरुष की सम्बलमात्र बन कर रहे। क्या उसका यही स्वतन्त्र व्यक्तित्व है ? मैं सोचता हूँ, भाई विनोद को अपनी योग्यता के अनुरूप स्थान प्राप्त नहीं हुआ है। हां, मैं कह रहा था, पेरिस के विदेश-मन्त्रणालय की उस पार्टी में आपको कितना आनन्द आता। पेरिस के जीवन में एक अद्भुत मादकता है। वहाँ पैर रखते ही मनुष्य ऐसा अनुभव करने लगता है, मानो उसने शाम्पेन की एक पूरी बोतल पी ली हो। यदि आप पेरिस में रहने लगें, तो आपका यह रूप कितना निखर आए। महीने भर बाद आपको देखूं, तो पहचानना भी कठिन हो जाए। आपको तो नाचने का शौक है न ? जब इटली या अमेरिका का फ्रांस-स्थित राजदूत आपके सामने आकर कहे—मदाम, क्या आप मेरे साथ नृत्य कर मुझे कृतार्थ करेंगीं, और आप उठकर उसके साथ नाचने लगें, रात के दो बजे तक यही क्रम जारी रहे, तो क्या यह आपको अच्छा नहीं लगेगा ? और यह मत भूलिये, कि इससे विदेशी राजनीतिज्ञों की दृष्टि में भारत के प्रति आदर की भावना में वृद्धि होती है। यूरोप के लोग समझते हैं, भारत बहुत ही पिछड़ा हुआ देश है। इस बीसवीं सदी में भी वहाँ की स्त्रियाँ परदे में रहती हैं, चौके चूल्हे के सिवा उनका कोई जीवन ही नहीं है। आप जैसी सुसंस्कृत महिला को देखकर उनका यह भ्रम दूर हो जायगा। आपकी फोटो विदेशी अखबारों में छपेगी। अखबारों के सम्वाददाता आपसे इन्टरव्यू करने के लिए आएंगे। अनेक सभा-सोसायटियां आपको व्याख्यान के लिए निमन्त्रित करेंगी। क्या यह देशकी सेवा नहीं है ? मेरी हार्दिक इच्छा है, कि आपकी योग्यता और व्यक्तित्व का देश के लिए भी कुछ उपयोग हो। रामानुज के विशिष्टाद्वैत की नई व्याख्या से आज देश का उतना लाभ नहीं है, जितना कि अन्य देशों की

के लिए हजार-बारह सौ रुपया मासिक कमा लेना कुछ भी कठिननहीं है।'

'क्या आप इसमें मेरी मदद करेंगे ?'

'क्यों नहीं, पहले आप निश्चय तो कीजिए।'

लता और वीरेन्द्र देर तक इसी प्रकार बातें करते रहे। दो बजे के लगभग लता ने कहा, 'मुझे कुछ नींद सी आ रही है, थोड़ी देर लेटूँगी, आप भी आराम कर लें।'

लता अपने कमरे में जाकर चुपचाप लेट गई। पर उसे नींद नहीं आई। उसका मन अशान्त था। वह सोच रही थी, क्या नारी के जीवन का एकमात्र प्रयोजन पति का सम्बल बनकर रहना ही है। क्या पति से भिन्न उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है ? पुराने ढंग की स्त्रियाँ पति की सेवा और बच्चों के पालन-पोषण को ही अपने जीवन का एकमात्र ध्येय समझती थीं। मैं स्वयं भी इन्हीं संस्कारों में पली थी। पर उन्होंने मेरा इतना मानसिक विकास कर दिया, कि अब मेरा सारा समय केवल इन्हीं कामों में नहीं लग जाता। मैं सच्चे अर्थों में उनकी सहधर्मिणी हूँ। उन्हें मेरे सम्बल की आवश्यकता है, अपने तत्त्वचिन्तन के लिए, अपने उत्कर्ष के लिए। पर क्या मेरे अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये यह पर्याप्त है ? क्या वीरेन्द्र ठीक कहता है ? जर्नलिज्म को अपनाकर क्या मैं एक ऐसा स्वतन्त्र जीवन व्यतीत नहीं कर सकती, जो मेरी व मेरे परिवार की उन्नति में सहायक हो ? वीरेन्द्र का जीवन कितना सुखी है। वह पैसे को पानी की तरह बहाता है, देश-विदेश की सैर करता है, पक्षी के समान उन्मुक्त गगन में उड़ा फिरता है।

चार बजे से कुछ पहले ही विनोद कालिज से लौट आया। उस समय वीरेन्द्र की आँख लग गई थी। वह अपने कमरे में सोया पड़ा था। विनोद ने लता से कहा—

'तुम नहीं सोईं ?'

'लेटी तो थी, पर नींद नहीं आई। चाय तैयार है, क्या वीरेन्द्र को जगा लूँ।'

'नहीं, उसे सोने दो। आज रात उसे सफर करना है। कुछ देर सो लेगा, तो अच्छा रहेगा।'

'क्या वे एक-दो दिन और हमारे पास नहीं ठहर सकते ? तुम से तो अभी उनकी बातचीत भी नहीं हो सकी।'

'आज मुझे भी फुरसत कम है। कालिज के विद्यार्थियों की एक टीम दिल्ली जा रही है, अन्तर्विश्वविद्यालय वादविवाद प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए। उसकी तैयारी के लिए कुछ विद्यार्थी साँझ को मेरे पास आएँगे।'

विनोद की आवाज सुनकर वीरेन्द्र की आँख खुल गई। वह उठकर आया, और बोला—

'अरे, तुम कालिज से आ गये। मैं भी कितना बेफिक्र हूँ। ऐसा पड़कर सोया, कि समय का खयाल ही नहीं रहा। तुमसे कितनी बातें करनी थीं।'

रामू ने आकर सूचना दी, चाय मेज पर लगा दी है। प्यालों में चाय डालते हुए लता ने कहा—'आज तो ठहरेंगे न ?'

'नहीं, भाभी ! आज मुझे लखनऊ जाने दीजिये। पिताजी बहुत बुरा मानेंगे। कितनी इच्छा है, कि आपके पास देर तक ठहर सकूँ, पर विवश हूँ। यूरोप लौटने से पूर्व एक बार फिर अवश्य आपके पास आऊँगा। हाँ, तो सन् ५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध के स्मृतिचिह्नों को देखने के विषय में क्या प्रोग्राम है ?'

'अब तो समय नहीं रहा है, पाँच बजने वाले हैं। छः बजे गाड़ी जाती है।' विनोद ने कहा।

'कोई बात नहीं। इन्हें अगली यात्रा में देख लूंगा। अब बैठकर कुछ बातें ही करलें।'

रामू टैक्सी का इन्तजाम करने चला गया। चाय पीते हुए विनोद और वीरेन्द्र में बहुत सी बातें हुईं। वीरेन्द्र ने अपने अनुभव सुनाये। विनोद ने नये दार्शनिक सिद्धान्तों की चर्चा की। लता पास बैठी इनकी

वातें सुनती रही। पर उनमें उसे कोई रस नहीं आया। उसके हृदय में एक तूफान सा उठ रहा था। वह कभी विनोद को देखती, कभी वीरेन्द्र को। एक में अगाध पाण्डित्य था, अनुपम गम्भीरता थी। और दूसरे में? वह कितना विनोदी, चंचल और सजीव था!

पौने छः बजे टैक्सी आ गई। रामू ने वीरेन्द्र का असवाव मोटर पर रख दिया। लता और विनोद उसे छोड़ने के लिए स्टेशन तक गये। गाड़ी चलने से पूर्व लता ने कहा—

'तो अब आप मेरठ कब आएँगे?'

'कब आऊँगा, यह तो नहीं कह सकता, पर आऊँगा अवश्य, और वह भी जल्दी ही।'

'देखिये, अपनी प्रतिज्ञा को भूल न जाइएगा।'

गाड़ी चल पड़ी। लता और विनोद अपने घर लौट आए।

(४)

लता और विनोद की गृहस्थी पूर्ववत् चलने लगी। प्रोफेसर विनोद रोज कालिज जाते, और घर लौट कर अपने साहित्यिक कार्य में जुट जाते। वम्वई की मैकमिलन कम्पनी ने उन्हें लिखा, भारतीय दर्शनशास्त्र के इतिहास पर एक उच्च कोटि की पुस्तक लिखवानी है। पुस्तक में लगभग एक हजार पृष्ठ होने चाहिएं। उन्हें वीस प्रतिशत रोयल्टी दी जायगी, और रायल्टी खाते पाँच हजार रुपये पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार हो जाने पर पेशगी दिये जा सकेंगे। प्रोफेसर विनोद ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इससे यश और धन दोनों प्राप्त होते थे। पुस्तक लण्डन में छपनी थी, और मैकमिलन कम्पनी जैसी सुप्रसिद्ध प्रकाशन संस्था द्वारा प्रकाशित होने के कारण उसके प्रचार में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता था। एक साल में पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार कर देने का वायदा करके विनोद उसमें जी जीन से जुट गया। कार्य की अधिकता के कारण अव उसे लता से वातचीत करने का अधिक अवसर नहीं मिलता था। लता भी अपने पति के उत्कर्ष और यश की

भी कुछ प्रभाव पड़े ।'

अगले दिन धर्मवती जी लता से मिलने आईं । भारत सेवक समाज के उद्देश्यों और कार्यक्रम को समझा कर जब वे जाने लगीं, तो लता ने आग्रहपूर्वक कहा—

'बहन, कुछ देर और बैठो । आपसे बातें करने को जी चाहता है । एक प्याला चाय पीकर जाइयेगा ।'

धर्मवती जी को और भी कई घरों में जाना था । पर वह लता के अनुरोध को नहीं टाल सकी । रामू चाय ले आया, और दोनों में बातें होने लगीं—

'क्या आप मेरठ की ही रहने वाली हैं ?'

'मेरा घर तो मुरादाबाद में है, पर अब कई सालों से यहीं रहती हूँ ।'

'आपका विवाह तो हो गया है न ?'

'हाँ, विवाह हुए तो कई साल हो गये ।' धर्मवती ने ठण्डी आह भर कर उत्तर दिया ।

'आपके पति भी क्या यहीं हैं ? वे क्या काम करते हैं ?'

'धर्मवती की आँखों में आँसू झलक आए । उसने दिल को थामकर कहा—'यह मत पूछिये, बहन, समझ लीजिये, मैं विधवा हूँ ।'

'यह आप क्या कहती हैं ।'

'मैं सच ही कहती हूँ, बहन ! आज बहुत दिनों बाद आपकी बातचीत से मेरे दिल का घाव फिर से हरा हो गया है । आपसे कोई बात छिपाऊँगी नहीं । आपके हृदय में सहानुभूति है, प्रेम है । पाँच साल हुए, जब मेरा विवाह हुआ था । मेरी ससुराल बरेली में हैं । अच्छा सम्पन्न घर है, श्वसुर साहब वकालत करते हैं, और मेरे पतिदेव एक कालिज में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर हैं ।'

'तो फिर आप उनके साथ क्यों नहीं रहतीं ?'

'रहने दीजिये, इन बातों को । मेरी करुण कथा को सुनकर आपको दुःख होगा ।'

'तो क्या नारी जीवन का एकमात्र प्रयोजन यही है, कि वह पुरुषों की आश्रित बनकर रहे ? पुरुष क्यों स्त्री के मन का खयाल नहीं करते, क्यों उसकी आवश्यकता को नहीं समझते ?'

'यही तो मैं भी सोचती हूं, बहन ! दस दिन बाद मेरे भाई मुझे घर लिवा ले गये। इसके बाद अपने पतिदेव को मैंने कितने ही पत्र लिखे। पिता जी ने भी कोशिश की। पर फिर कभी मुझे अपनी ससुराल को आँखों से देखने का सौभाग्य नहीं मिला। सुना है, उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया है।'

'हैं, दूसरा विवाह ! एक पत्नी के रहते हुए दूसरी स्त्री से विवाह !'

'हाँ, बहन, सच कह रही हूँ। वे दूसरा विवाह कर चुके हैं, और अपनी नई दुलहन से संतुष्ट हैं। भगवान् करे, वे सदा सुखी रहें।'

'तो फिर आप भी दूसरा विवाह क्यों नहीं कर लेतीं ?'

'क्या हिन्दू स्त्री के लिए यह भी सम्भव है, कि वह पति के रहते हुए दूसरा विवाह कर सके !'

'तो क्या यह यौवन उनकी स्मृति को ही सम्बल बनाकर बिता देने का विचार है ?'

'फिर और क्या करूँ, बहन !'

'आपके पिता जी का इस विषय में क्या विचार है ?'

'वे तो मुझे कई बार दूसरा विवाह करने को कह चुके हैं। जब मेरे पतिदेव ने दूसरा विवाह कर लिया है, तो उस घर में अब मेरा स्थान ही क्या रह गया है। पर सोचती हूँ, पता नहीं अन्य पुरुष का क्या अनुभव हो। अब तो विवाह से डर-सा लगने लगा है। पिता जी ने कई प्रस्ताव रखे, पर समझ में नहीं आता, क्या करूँ। मेरठ में एक अच्छी नौकरी मिल गई है। बी० ए० बी० टी० पास हूँ। स्वतन्त्र जीवन बिता सकती हूँ। फिर क्यों बन्धन में पड़ूँ ?'

'तो क्या तुम्हारी विवाह की इच्छा ही नहीं होती ? जीवन-यात्रा के लिए पुरुष और स्त्री दोनों को ही सम्बल की आवश्यकता होती है। विवाह

'इसका क्या मतलब ?'

'कुछ नहीं। यूं ही मेरे मुख से निकल गया, बात तो कोई नहीं। पर अच्छा है, तुम्हीं इस पत्र का उत्तर दे देना।'

लता की भावभङ्गी को देखकर विनोद को कुछ आश्चर्य हुआ। पर वह अपने काम में लग गया, और डाक से समय से पूर्व ही वीरेन्द्र को एक कार्ड लिख दिया। उसमें उसने लिखा, ईस्टर की छुट्टियों में हम मेरठ ही रहेंगे। कालिज उन दिनों बन्द होगा, अतः मुझे फुरसत भी रहेगी। पिछली बार जब तुम आये थे, तो तुमसे ज्यादा बातचीत नहीं हो सकी थी। अब ईस्टर पर अवश्य आना, और कम-के-कम एक सप्ताह हमारे पास रहना।

प्रोफेसर विनोद भारतीय दर्शन-शास्त्र के इतिहास को लिखने में बहुत व्यग्र था। वह लता के साथ अधिक समय नहीं बिता सकता था। इससे लता बहुत उद्विग्न रहती थी। उसका किसी भी काम में मन नहीं लगता था। करने के लिए उसके पास काम ही क्या था ? एक दिन वह विनोद के पास आई, और बोली—

'आज कल पता नहीं क्यों, किसी भी काम में मन नहीं लगता। तुम्हें तो फुरसत ही नहीं मिलती।'

'इस पुस्तक को जल्दी ही समाप्त करना है। इतने बड़े ग्रन्थ के लिए एक साल का समय बहुत कम है। कालिज से लौट कर दो घण्टे में आराम करता हूं। तब तो हम साथ रहते ही हैं। तुम अपना मन लगाने के लिये कोई काम क्यों नहीं कर लेती ?'

'सोचती हूँ, भारत सेवक समाज में शामिल हो जाऊँ।'

'इस प्रकार के समाज मेरी दृष्टि में सर्वथा निरर्थक हैं। बड़े घरों की स्त्रियां व पुरुष दिखावे के लिए टोकरी और झाड़ू लेकर चल पड़ते हैं। श्रमदान का आन्दोलन मुझे एक तमाशा सा प्रतीत होता है। जिला मजिस्ट्रेट व अन्य उच्च सरकारी कर्मचारी शहर के रईसों के साथ फावड़ा और कुदाल लेकर निकल पड़े। प्रेस के सम्वाददाताओं ने उनकी फोटो ले लीं, और अगले दिन अखबारों में उनके चित्र छप गये। अच्छा हो,

अपने श्रम के बदले में ये लोग दो रुपये रोज दान दे दिया करें। इस गरीब मजदूरों को रोटी मिलेगी, और कुछ असली काम भी हो सकेगा पर दिल बहलाव का यह ढंग भी बुरा नहीं है। कोई हर्ज नहीं, तुम भी श्रमदान आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगो, और भारत सेवक समाज की सदस्य बन जाओ। हाँ, आजकल तुम पत्रिकाओं के लिये लेख क्यों नहीं लिखती ? तुम्हारे लेखों और कहानियों का तो अच्छा आदर हुआ था ?'

'कोशिश तो करती हूँ, पर मन नहीं लगता। जब से बच्चे स्कूल गये हैं, खाली-खाली सा महसूस करती हूँ।'

'ईस्टर की छुट्टियों में उन्हें घर बुला लेना। देहरादून कौन बहुत दूर है।'

'तो तुम स्कूल को चिठ्ठी लिख दो। मैं स्वयं देहरादून जाकर उन्हें ले आऊंगी।'

लता और विनोद इसी प्रकार की बातें कर रहे थे, कि श्रीमती मेहरा ने आकर आवाज दी—'मिसेज विनोद !'

अपनी सहेली की आवाज सुनकर लता बाहर निकल आई। मि० देवनाथ मेहरा मेरठ में इन्कम टैक्स आफिसर थे, और प्रोफेसर विनोद के पड़ोस में रहते थे। लता और कुसुम मेहरा में बहुत मित्रता थी। कुसुम ने कहा—

'तबियत नहीं लग रही थी। सोचा, आपके घर हो आऊं। मेरे आने से आपके काम में विघ्न तो नहीं पड़ा ?'

'नहीं, बहन ! आइये, अन्दर आकर बैठिये।'

'आइये, मिस्टर दीवानचन्द्र, बहन लता से आपका परिचय करा दूं।'

दीवानचन्द्र मकान के बाहर खड़े चुपचाप सड़क की ओर देख रहे थे। कुसुम के बुलाने पर वे अन्दर आ गये। कुसुम ने कहा—

'ये मेरे बालसखा हैं। जब मैं सेण्ट स्टीफन्स कालिज में बी० ए० की तैयारी कर रही थी, ये फर्स्ट यीअर में प्रविष्ट हुए थे। ये कविता बहुत

अच्छी करते हैं। 'अंचल' नाम से विशाल भारत में इनकी कविताएं छपती हैं। अभी-अभी मेरठ आये हैं, एक स्कूल में हिन्दी के अध्यापक नियुक्त होकर। आप इनसे मिलकर बहुत प्रसन्न होंगी। चलिये, अन्दर बैठिये न, मि० दीवानचन्द्र !'

लता, कुसुम और दीवानचन्द्र बैठक में जा बैठे। लता ने कहा—

'मैं आपके लिये चाय का इन्तजाम करती हूँ। चाय का समय भी हो गया है।'

'क्यों बेकार तकलीफ करती हैं। हम चाय पी आये हैं।'

'इसमें तकलीफ की क्या बात है। चाय तो भारत का राष्ट्रीय पेय है। ऑल टाइम इज टी टाइम। मैं अभी आती हूँ।'

'ओह, बहन, मेरा नौकर छुट्टी गया हुआ है। सब्जी की पतीली चूल्हे पर रखी है, कहीं जल न जाए। मैं अभी पाँच मिनट में आती हूँ। मि० दीवानचन्द्र, आप यहीं बैठिये। मुझे अधिक देर नहीं लगेगी।'

यह कह कर कुसुम जल्दी-जल्दी अपने घर चली गई। वहाँ मि० देवनाथ मेहरा उसकी इन्तजार कर रहे थे। उन्होंने पूछा—

'तुम कहाँ गई हुई थी ?'

'कहीं नहीं। प्रोफेसर विनोद के घर चली गई थी। आज तुम बहुत जल्दी आफिस से लौट आए।'

'हाँ, आज साढ़े चार बजे एक पार्टी में जाना है। कमिश्नर साहब की बदली हो गई है। उनकी विदाई की पार्टी है। सात बजे से पहले नहीं लौट सकूंगा। समय हो रहा है। जल्दी-जल्दी कपड़े बदल लेता हूँ। एक प्याला चाय तो तैयार करा दो। कुछ थकान अनुभव हो रही है।'

मि० मेहरा कपड़े पहन कर तैयार हो गये, और चाय पीकर बाहर चले गये। अब कुसुम सात बजे तक के लिये निश्चिन्त थी। वह लता के घर लौट आई, और बोली—

'क्या बताऊं, आधा घण्टा लग गया। घर घिरस्ती के झंझट ऐसे ही होते हैं।'

ही क्या मिलता है। उन्होंने मुझे बी० ए० तक पढ़ा तो दिया, पर अच्छे घर में विवाह करने के लिए रुपया वे कहाँ से लाते। मि० मेहरा के पद व प्रतिष्ठा से आकृष्ट होकर उन्होंने उनके साथ मेरा विवाह कर दिया। इस बात का ख्याल नहीं किया, कि मैं उनके साथ प्रसन्न कैसे रह सकती हूं।'

'वुड्ढे के साथ विवाह करके आपके पिता जी ने बहुत बुरा किया। पर अब आपका गुजर कैसे होता है?'

'रुपये पैसे की मुझे कोई कमी नहीं है। बढ़िया से बढ़िया कपड़े पहनती हूं, जी भर कर गहने बनवाती हूं। वे मुझसे अनन्त प्रेम करते हैं, मेरी छोटी से छोटी इच्छा पूर्ण करने के लिये हर समय तैयार रहते हैं। शारीरिक शक्ति की भी उनमें कमी नहीं है। मेरी कामवासना को शान्त करने की सामर्थ्य उन में विद्यमान है। पर स्त्री केवल इतने से ही तो संतुष्ट नहीं हो सकती। वह चाहती है ऐसे पुरुष को, जो सच्चे अर्थों में उसका साथी हो, जो उसकी उमङ्गों को समझ सके। मैं चाहती हूं, गरमियों में नैनीताल जाऊं, लेक में वोटिंग करूँ, घोड़े पर चढ़ कर चीना-पीक जाऊँ, पर्वत शिखरों को लांघती फिरूँ, जंगली फूल गूँथ कर मालाएं बनाऊं। एक माला अपने जूड़े में बांध लूं, और एक अपने प्रेमी के गले में डाल दूं। किसी के साथ पिकनिक के लिये जाऊँ, सारा दिन किसी पेड़ के नीचे बैठ कर बिता दूँ। जब रात हो जाए, आसमान में तारे निकल आएँ, तो कोई मुझ से प्रेम का गीत गाने के लिये कहे। मेरे गाने को सुनकर कोई अपनी सुध बुध भूल जाये, और मुझे अपने अंक में भरले। रात हो गई है, सर्वत्र सुनसान हो गया है, इसका हमें खयाल ही न रहे। आधी रात इसी तरह बीत जाने पर हम घर लौटें, और फ़िर बातें करते-करते सो जाएं। पर मेरी ये उमङ्गें कौन पूरी करे। उनका हृदय तो अब बिलकुल ठण्डा पड़ चुका है। दफ्तर से लौट कर आते हैं, और चाय पीकर बैठक में जा बैठते हैं। कुछ मित्र इकट्ठे हो जाते हैं, और गप-शप चलती रहती है। कभी यह भी नहीं कहते, तुम भी यहीं आ बैठो। डरते हैं, कोई अन्य पुरुष मुझ पर डोरे न डालने लगे।'

(५)

ईस्टर की छुट्टियां शुरू होने से पहले ही लता दोनों बच्चों को देहरादून के कन्वेन्ट स्कूल से घर ले आई। महीनों बाद बच्चे घर आए थे। छोटा मुन्ना बहुत कमजोर हो गया था। उसका स्कूल में दिल नहीं लगता था। बार-बार माँ याद आती थी। रात को वह मां के साथ सोने की जिद करता था। उसे तब तक नींद न आती थी, जब तक कि लता उसके साथ आध घण्टा लेट न ले। अब लता को फुरसत नहीं मिलती थी। दिन भर बच्चों में व्यग्र रहती। उनके लिये हर रोज नये-नये खाने बनवाती, सैर करने के समय उन्हें साथ ले जाती। प्रमोद—मुन्ने का नाम प्रमोद था—जिद कर के कहता, मां, मैं स्कूल नहीं जाऊंगा, घर पर ही रहकर पढ़ूंगा। स्कूल में मुझे मार पड़ती है। बच्चे की व्यथा को देख कर लता का हृदय रोने लग जाता। वह विनोद से कहती, स्कूल से इनके नाम कटा लो। विनोद कहता—यह सेशन पूरा हो लेने दो, फिर गर्मियों की छुट्टियां हो जाएंगी। अप्रैल तो शुरू हो ही गया है। मई में स्कूल बन्द हो जायगा। जुलाई में फिर दाखिल कराया जाए या नहीं, इस पर विचार करने के लिये बहुत समय है। लता के आग्रह करने पर विनोद ने दस दिन की छुट्टी की दरख्वास्त भेज दी। ईस्टर की छुट्टियां सात अप्रैल को समाप्त हो जाती थीं। अब बच्चे सत्रह तारीख तक घर पर रह सकते थे।

लता ने ईस्टर की छुट्टियों में वीरेन्द्र की बहुत इन्तजार की। पर वह न स्वयं आया, और न ही कोई पत्र ही उसने भेजा। लता परेशान थी, वीरेन्द्र आया क्यों नहीं। पर एक दिन अचानक वीरेन्द्र आ पहुँचा। तीसरे पहर का समय था। प्रोफेसर विनोद कालिज गये हुए थे। हँसते हुए वीरेन्द्र ने कहा—

'लो, मैं आ गया, भाभी ! आपसे फिर मिलने का वचन जो दे गया था।'

'खूब इन्तजार कराई आपने। ईस्टर की छुट्टियों में प्रतिक्षण आपकी प्रतीक्षा करती रही। एक पत्र तक भी आपने नहीं लिखा।'

में चिन्ता करने की उसने कोई आवश्यकता नहीं समझी। वह जानती थी, कि कालिज से लौटकर वे चाय पीएंगे, फिर कुछ देर विश्राम करेंगे, और फिर अपनी पुस्तक पर जुट जाएंगे। रामू जानता है, साढ़े चार बजे उन्हें चाय देनी है। बच्चे भी तब तक लौट आएंगे, और प्रोफेसर साहब का उनसे दिल बहल जायगा।'

लता और वीरेन्द्र देर तक सैर करते रहे। जब अंधेरा हो गया, तो वीरेन्द्र ने घड़ी देखकर कहा—

'भाभी ! माफ करना, मुझे श्री० सक्सेना से एक जरूरी काम है। वे मेरठ में प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिया के संवाददाता हैं। मेरठ के अतीत गौरव पर एक लेख तैयार करना है। इस विषय में सक्सेना साहब से कुछ पत्र व्यवहार भी हुआ था। उन्होंने लिखा था, जब आप मेरठ आएं, तो मुझसे जरूर मिलें। उनसे मुझे अपने लेख की सब सामग्री मिल जायगी। तार द्वारा उनसे समय नियत कर चुका हूँ। आठ बजे उनसे मिलना है। आपने डिनर का इन्तजार न करना। शायद मुझे कुछ देर लग जाए, और मैं डिनर वहीं खा लूँ।'

'यह कैसे सम्भव है, आप नौ बजे तक अवश्य लौट आइयेगा। मैं डिनर के लिए आपका इन्तजार करूँगी।'

'नहीं, भाभी, मेरा काम बहुत जरूरी है। नौ बजे तक लौट सकना सम्भव नहीं होगा। पर मैं कोशिश करूँगा, कि साढ़े नौ बजे तक घर पहुँच जाऊँ।'

'जहाँ तक हो सके जल्दी लौट आइयेगा। आपसे मुझे बहुत सी बातें करनी हैं। परसों तो आपको चले ही जाना है।'

लता अकेली घर लौट आई। विनोद बच्चों के साथ बैठे बातें कर रहे थे। माँ को देखकर दोनों बच्चे उससे लिपट गये। लता ने पूछा—

"तुमने खाना खा लिया है न ?"

"मैंने तो कितनी बार कहा, खाना खा लो। पर ये तो किसी भी तरह राजी नहीं हुए। कहने लगे, माँ के साथ ही खाएँगे। हाँ, वीरेन्द्र कब

ईश्वर ने तुम्हें मनुष्य के समान हाथ और पाँव दिये हैं। फिर इस त
क्यों कष्ट उठाते हो ? यह सुनकर बन्दर को गुस्सा आ गया। पेड़ प
चढ़कर उसने चिड़िया का घोंसला तोड़ दिया। अब बेचारी चिड़िया क्य
करती ? वह अपने छोटे-छोटे बच्चों को कहाँ रखती ? वह भागी-भागी
हमारे मुन्ना के पास आई, और बोली—मुन्ना भाई, बन्दर बड़ा बुरा है
उसने मेरा घोंसला तोड़ दिया है। मैं कहाँ जाऊँ ? मुन्ना ने जवाब दिया—
चिड़िया बहन, तू मेरे पास आ जा। अपने बच्चों को भी साथ ले आ। मेरे
घर पर रह। यहीं घोंसला बना ले, मैं बन्दर को भगा दूँगा। यहाँ वह
तेरा घोंसला नहीं तोड़ने पायगा।"

कहानी सुनते-सुनते मुन्ना को नींद आ गई और विनोद धीरे से उठकर अपने पलंग पर चला आया। पर उसे नींद नहीं आ रही थी। टेबल लैम्प जलाकर उसने पुस्तक पढ़ना शुरू कर दिया।

उधर लता वीरेन्द्र की इन्तजार में ड्राइङ्ग रूम में बैठी हुई थी। उसका खयाल था, कि बच्चे सो गये हैं और प्रोफेसर साहब भी बिस्तर पर लेट गये हैं। वस्तुतः, वीरेन्द्र के साथ बैठकर बातें करने के लिए वह इतनी उत्सुक थी, कि उसे अपने पति व बच्चों का ध्यान ही नहीं रहा था। सवा नौ बजे वीरेन्द्र वापस आया। लता को इन्तजार करते देख कर वह सीधा ड्राइङ्ग रूम में गया, और पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया। वीरेन्द्र ने पूछा—

'भाई विनोद कहाँ हैं, उनसे तो मुलाकात ही नहीं हुई।'

'दिन भर के कार्य से थक कर वे विश्राम कर रहे हैं, शायद सो भी गये हों। वे प्रायः सवा नौ बजे तक सो जाते हैं। अब तो सुबह ही उनसे भेंट होगी। हाँ, आप डिनर तो खाएँगे न ?'

'नहीं, भाभी, डिनर तो मैं खा चुका हूँ। आपसे पहले ही जो कह दिया था। आप तो भोजन से निबट चुकी होंगी।'

'मुझे आज बिलकुल भी भूख नहीं है। तीसरे पहर जो खाया था, वह भी अभी हजम नहीं हुआ। अच्छा, अब बताइये, आपने मेरठ आने

प्राप्त कर सकता ।'

'तो आप अब तक ब्रह्मचारी ही बने हुए हैं ?'

'आपके सामने झूठ नहीं बोलूंगा । यह शरीर कितनी ही स्त्रियों को दे चुका हूँ ।'

'पर क्या यह प्रेम के बिना भी सम्भव है । प्रेम की अतिशयता का ही शारीरिक एकता के रूप में पारायण होता है ।'

'मैं यह नहीं मानता । शारीरिक सम्बन्ध कामवासना का परिणाम है। वासना शरीर द्वारा तृप्त की जा सकती है। पर मन और आत्मा की तृप्ति वास्तविक प्रेम के बिना सम्भव नहीं । यूरोप में रहते हुए मैं बिलकुल अकेला था । कितने ही दिन होटल के कमरे में पड़े हुए छत की कड़ियां गिनते हुए बिता देता था । अपने अकेलेपन को दूर करने के लिये सांझ के समय किसी काफे में चला जाता था। वहां भी टेबल पर अकेला ही बैठा रहता था। सड़क पर आते-जाते लोगों को देखना ही मेरा एकमात्र मनोरंजन था । पड़ोस की टेबलों पर प्रेमियों के जोड़े बैठे हुए होते । वे हँस-हँसकर बातें करते, बीच-बीच में एक-दूसरे का हाथ पकड़ लेते, कभी-कभी अपनी प्रेयसी का चुम्बन भी कर लेते। मैं सोचता, क्या मेरा जीवन इसी प्रकार अकेले रह कर ही बीत जायगा । इसी बीच में कोई लड़की मेरी टेबल पर आती, और धीरे से पूछती—क्या यह कुर्सी खाली है, आपको एतराज न हो, तो यहां बैठ जाऊँ । मुझे क्या एतराज हो सकता था ? मैं अकेला था, और वह भी अकेली थी। मैं पूछता—आप क्या पीएंगीं ? आपके लिये शाम्पेन का आर्डर कर दूं । वह कहती, आप क्यों तकलीफ करते हैं। वेटर को बुलाकर स्वयं शाम्पेन का आर्डर दे देती। हम देर तक साथ बैठे-बैठे शाम्पेन, वाइन या काफी पीते रहते । जब बिल चुकाने का समय आता, तो मैं उसका बिल पे कर देता । इतनी देर तक साथ बैठी रहने के कारण वह मेरी मित्र बन चुकी होती थी । अपने ऊपर दूसरे से खर्च करवाने में अब उसे कोई एतराज नहीं रह जाता था । मैं पूछता—यदि आप खाली हों, तो कहीं घूम आएं । वह कहती, मुझे तो आज आपेरा देखने जाना है ।

मैं कहता, चलिये मैं भी आपके साथ रहूँगा, पर पहले डिनर से तो निवट लें। किसी बढ़िया रिस्तोरां में जाकर हम साथ डिनर खाते, फिर इकट्ठे आपेरा देखते। सब खर्च मेरा ही होता। आपेरा खतम होते होते रात का एक बज जाता। मैं उससे कहता, चलिये, आपको आपके मकान तक छोड़ आऊँ। वह कहती—मैं तो शहर से बाहर दूर के कसबे में रहती हूँ, एक दिन के लिए आई थी। रात की गाड़ी से लौट जाने का विचार था। पर अब तो गाड़ी का समय निकल गया। चलिये, आज रात आपके पास ही ठहर जाऊंगी। हम दोनों साथ-साथ होटल लौट आते। पर मेरे कमरे में तो केवल एक ही पलंग था। उसके लिये दूसरा बिस्तरा कहाँ से लाता। हम एक साथ लेट जाते, और रात भर साथ ही सोते। यूरोप में रहते हुए कितनी ही बार ऐसा हुआ।'

'तो फिर किसी ऐसी युवती से विवाह क्यों नहीं कर लिया ?'

'विवाह ! क्या ऐसी स्त्रियों से विवाह भी सम्भव है। निम्न वर्ग की गरीब लड़कियाँ ही यूरोप में ऐसा करती हैं, एक दम असंस्कृत और अर्ध-शिक्षित। देखने में वे सुन्दर अवश्य होतीं हैं, शृंगार द्वारा वे अपने शरीर को आकर्षक भी बना लेती हैं, पर उनका मन अत्यन्त अविकसित होता है। उनके साथ तो एक दिन भी निर्वाह कर सकना असम्भव है। काम-वासना की तृप्ति उनसे अवश्य की जा सकती है, पर प्रेम या विवाह ? इसकी तो कल्पना तक भी सम्भव नहीं है।'

'क्या सुशिक्षित वर्ग की कोई युवती यूरोप में आपके सम्पर्क में आई ही नहीं ?'

'आईं क्यों नहीं ? कानून की शिक्षा पाते हुए व जर्नलिज्म का पेशा करते हुए कितनी ही सभ्य व सुसंस्कृत स्त्रियों से मेरा परिचय हुआ। कुछ से मैत्री भी हुई। पर पाश्चात्य संसार में जब स्त्री पुरुष एक दूसरे के प्रति आकर्षण अनुभव करने लगते हैं, तो पुरुष स्त्री के सम्मुख अपने प्रेम को प्रकट करता है, उसके हृदय में अपने प्रति प्रेम को उद्बुद्ध करने का यत्न करता है, और बाद में विवाह का प्रस्ताव उसके सामने पेश करता है।

हम भारतीयों के लिये उच्च व शिक्षित वर्ग की युवतियों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकना सुगम नहीं होता, क्योंकि यूरोप की महिलाएं भी सामाजिक मर्यादा व कुल की प्रतिष्ठा को बहुत अधिक महत्त्व देती हैं।'

'पर मैं तो कितने ही ऐसे भारतीयों को जानती हूँ, जिन्होंने पाश्चात्य नारियों के साथ विवाह किये हैं।'

'यह ठीक है। पर इनमें से बहुसंख्यक नारियां शिक्षित व उच्च वर्ग की नहीं है।'

'तो अब आपका क्या विचार है ?'

'उस दिन ताज के उद्यान में प्रेम का एक अत्यन्त सुन्दर रूप आपने मेरे सम्मुख उपस्थित किया था। वस्तुतः, प्रेम तत्त्व अनादि है, अनन्त है, सर्वव्यापक है। प्रत्येक मनुष्य अपने हृदय में विद्यमान प्रेम की एक प्रतिमा बनाता है, या एक प्रतिमा में उस प्रेम तत्त्व का आधान करता है। मैं भी सोचता हूँ, मेरी वह प्रतिमा कहां है; उसे कहां और कैसे पाऊँ।'

'आप विवाह कर लीजिये। जो कोई भी आपकी पत्नी होगी, वही आपके प्रेम की देवी होगी। उसी में आपका प्रेम अविकल रूप से प्रतिबिम्बित हो जायगा।'

'यही बात मेरी समझ में नहीं आती। क्या यह सम्भव है, कि मैं किसी अपरिचित नारी से केवल इसलिये प्रेम कर सकूं, क्योंकि उसके साथ मेरे फेरे फिर गये हैं ? यदि मैं एक अबोध युवा होता, तो शायद यह बात मुमकिन भी हो सकती। पर अब तो मैं किसी ऐसी सहधर्मिणी की ढूंढ़ में हूँ, जो मेरी उमंगों, आकांक्षाओं और आदर्शों का मूर्त रूप हो, जिसे पाकर मैं यह अनुभव करूं, कि भगवान् ने इसका निर्माण मेरे लिये किया था, और मेरा निर्माण इसके लिये, केवल इसके लिये। आप इस विषय में मेरी मदद क्यों नहीं करतीं ?'

'मैं इस बारे में आपकी क्या मदद कर सकती हूँ ?'

'यूरोप से लौट कर जब से आपसे मिला हूँ, सोचता हूँ, यदि मेरी भी कोई ऐसी ही जीवन-संगिनी होती। आपकी और मेरी रुचि में कितनी

समय बीतता गया, पर विनोद को नींद नहीं आई। दिन भर के मानसिक परिश्रम के कारण उसे थकान महसूस हो रही थी, पर साथ ही उसके मन में एक आंधी भी उठ रही थी। उसे नींद कहां से आती। बारह बजे वह फिर उठा। लता और वीरेन्द्र बातों में मग्न थे। वह फिर पलंग पर लेट गया। सोचते-सोचते उसके सिर में दर्द होने लगा। उसने उठ कर देखा, कहीं अनेसिन की गोलियां पड़ी हों। पर सब जगह ढूंढ़ने पर भी उसे अनेसिन कहीं नहीं मिली। सोचा, जाकर लता से पूछ लूं। वह बाहर आया। पर इस समय ड्राइंग रूम से कोई भी आवाज नहीं आ रही थी। वह आठ दस मिनट तक घर के खुले आंगन में खड़ा रहा। उसके हृदय में तरह-तरह की आशंकायें उठने लगीं। लता और वीरेन्द्र कर क्या रहे हैं ? बत्ती तो जली हुई है, पर उनकी बातचीत की आवाज सुनाई क्यों नहीं देती। वह दबे पैरों से बैठक के समीप तक गया। अब लता और वीरेन्द्र में फिर बातचीत शुरू हो गई थी। विनोद को अपने ऊपर कुछ ग्लानि सी हुई। वह बेडरूम में वापस लौट आया, और पेट के बल पलंग पर गिर पड़ा। उसकी सिरदर्द बढ़ती गई। घड़ी देखी, तो एक बज कर बीस मिनट हो चुके थे। अब उससे नहीं रहा गया। वह सीधा ड्राइंग रूम में चला गया। लता सोफे पर आधी लेटी हुई थी, और वीरेन्द्र पास की आराम कुर्सी पर बैठा हुआ था। उसके मन को कुछ शान्ति मिली। इस प्रकार अकस्मात् विनोद को आया देख कर वीरेन्द्र ने कहा—

'भाभी कहती थीं, तुम सो गये हो। मैं इनसे बातें करने बैठ गया। ओह, कितनी देर हो गई। बातों में समय का ज्ञान ही नहीं रहा।'

'पता नहीं क्यों, आज मुझे नींद ही नहीं आई। सिर में दर्द हो रही है। अनेसिन की तलाश में आया हूँ। ढूंढ़ी, पर कहीं मिली नहीं।'

'बेडरूम की आलमारी के ऊपर के खाने में रखी है। वहां से ले लो।' लता ने कहा।

विनोद वापस लौट आया, और अनेसिन की एक गोली खाकर फिर

क्या यूरोप में भी दुर्लभ है। भारत के नैतिक आदर्श और यूरोप की स्फूर्ति का कैसा अनुपम संमिश्रण है आपमें ? यदि आप जैसी ही किसी स्त्री को मैं अपने प्रेम की प्रतिमा बना सकूं, तो मेरा जीवन धन्य हो जायगा।'

इसी प्रकार बातें करते करते ढाई बज गये। लता ने कहा—

'अब तो बहुत रात बीत गई। हमारी बातें तो कभी खतम होंगी ही नहीं। चलिए, अब सो जाइये। रात के सफर के बाद अब आप थक भी तो गये होंगे।'

'आपसे बातें करके सारी थकान दूर हो गयी है। आज तो इच्छा होती है, सारी रात इसी तरह बातें करते हुए बीत जाए। मुझे कब ऐसा अवसर मिलता है, कि आप जैसी महिला के साथ इस तरह बैठकर बातें कर सकूं।'

'तो फिर क्या आज रात आप सोएंगे ही नहीं ?'

'क्या यह जरूरी है ? सोता तो रोज ही हूँ। एक दिन न सोया, तो क्या होगा। चलिये, सुबह चार बजे तक तो साथ बैठें। तीन घंटे की नींद काफी होगी। सात बजे तक उठ बैठेंगे।'

'अच्छा, यही सही।'

'एक बात कह दूँ, भाभी ! उस रात ताज से लौटते हुए जब हम मोटर पर एक साथ बैठे हुए थे, तो अनजाने में आपका सिर मेरे कन्धे पर आ टिका था। हवा से उड़ते हुए आपके केश मेरी गालों को छू रहे थे। आपके केशों के स्पर्श से मेरे सारे शरीर में एक कम्पन सी पैदा हो गई थी, और इच्छा होती थी कि.......'

लता चुपचाप यह सब सुनती रही। वीरेन्द्र क्या कुछ कह रहा है, इस पर उसका ध्यान ही नहीं गया, वह अपने ही विचारों में मग्न जो थी। उधर प्रोफेसर विनोद अभी जाग रहे थे। अनेसिन के गोली न उनके सिर दर्द को शान्त कर सकी थी, और न नींद लाने में ही समर्थ हुई थी। वे बार-बार करवटें बदलते, और थोड़ी-थोड़ी देर बाद बेडरूम के बाहर

आकर बैठक की ओर देखने लगते। घड़ी उनके सिरहाने रखी हुई थी। उसमें समय देख कर वे सोचते—आज लता को हो क्या गया है। ऐसी तो वह कभी भी नहीं थी। मेरे सिर में दर्द है, यह जानकर भी वह उठकर नहीं चली आई। मुझे अनेसिन की गोली मिल गई है या नहीं, यह जानने का भी उसने कष्ट नहीं किया। आज क्या वह रात भर इसी तरह से जागती रहेगी। वीरेन्द्र की बातों में उसे क्या स्वाद आता है, जो वह अपने कर्तव्य-अकर्तव्य, भूख-प्यास, उचित-अनुचित और नींद आदि सब-कुछ भूलकर इस ढंग से अकेली उसके पास बैठी है। वह तो उसे पत्र तक लिखने में संकोच करती थी। कहती थी, आग से खेलने से क्या लाभ, हाथ जल जाने का डर है। कहीं हमारे घर में वीरेन्द्र सचमुच ही दावानल बनकर तो प्रविष्ट नहीं हुआ है, जो इस घर की सुख शान्ति को भस्मसात् कर देगा।

तीन बजे के बाद उससे नहीं रहा गया। वह उठकर बैठक में आया और बोला—

'तुम दोनों क्या आज सारी रात जागते ही रहोगे ?'

'अरे, तुम अभी जाग रहे हो। तुम्हारे सिर में तो दर्द हो रही थी। अब क्या हाल है ?' लता ने प्रश्न किया।

'अनेसिन की एक गोली खाई थी। पर उससे सिर दर्द थमा नहीं।'

'तो एक गोली और खा लो। ज्यादा दर्द होने पर एक गोली से काम नहीं चलता। चुपचाप लेटकर सोने की कोशिश करो। सिर दर्द अवश्य ठीक हो जायगी।'

वीरेन्द्र से अब और अधिक देर नहीं बैठा गया। उसने कहा—'मुझे भी नींद आ रही है। बहुत रात हो गई है। बातों में समय का ध्यान ही नहीं रहा।' वह उठकर खड़ा हो गया और चुपचाप अपने कमरे में चला गया।

लता को साथ लेकर विनोद अपने बेडरूम में गया। बिस्तर पर लेटते हुए लता ने कहा—'आओ, मेरे पास लेट जाओ। सिर दबा दूंगी।'

'नहीं, इसकी कोई जरूरत नहीं। मैं आराम से हूँ। जल्दी ही नींद आजायगी।'

'क्या तुम बुरा मान गये। इतनी देर तक वीरेन्द्र के साथ अकेली बैठी बातें करती रही, यह क्या तुम्हें बुरा लगा ?'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।'

लता विनोद के पलंग पर चली आई। वह उसका सिर दबाना चाहती थी। पर विनोद ने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

(६)

लता, विनोद और वीरेन्द्र तीनों रात को बहुत देर से सोये थे। सात बजे के लगभग बच्चे जाग गये, और उनके शोर से लता और विनोद की भी नींद खुल गई। रामू चाय ले आया। लता ने पूछा—

'साहब को चाय दे आए ?'

'साहब अभी सो रहे हैं।'

'मेरी चाय पीने की इच्छा नहीं है। रामू, ट्रे को वीरेन्द्र के कमरे में ले जाओ। मेम साहब भी वहीं पर चाय पी लेंगी।' विनोद ने कहा।

'कैसी बातें करते हो ? तुम तो सचमुच ही बुरा मान गये।'

बाहर से आवाज आई—'भाई विनोद, कैसी तबियत है ? रात तुम्हारे सिर में बहुत दर्द थी।'

'आओ, यहीं बैठकर चाय पी लो। रामू, एक प्याला और ले आओ।' विनोद ने कहा।

वीरेन्द्र पलंग के पास ही एक कुर्सी पर बैठ गया, और चाय पी हुए बोला—

'आज का क्या प्रोग्राम है ? तुम से तो अभी तक बात ही नहीं हुई आज की छुट्टी क्यों नहीं ले लेते। तुम्हारी तबियत भी तो ठीक नहीं है

'नहीं, अब मैं बिलकुल ठीक हूँ। हाँ, आज कालिज से जल्दी वाप आजाऊँगा। भोजन भी लौट कर ही करूँगा।'

स्नान आदि से जल्दी-जल्दी निबटकर विनोद कालिज चला गय

तुम्हें ध्यान नहीं रहा। तुम भली भाँति जानती हो, मुन्ना तुम्हारे बिना नहीं सोता। यदि पाँच मिनट उसके साथ लेट जाती, तो वह शान्त होकर सो जाता। यदि इस बीच में वीरेन्द्र आ भी जाता, तो वह थोड़ी देर तक मेरे पास आ बैठता। उसे रात को यहीं पर तो सोना था। मुन्ना को सुलाकर तुम रोज कुछ देर तक मेरे साथ बातें किया करती हो। दिन भर के काम के बाद उसी समय मैं तुम्हारे पास बैठा करता हूँ। मैं अकेला हूँ, इसकी भी तुमने परवाह नहीं की। रोज तुम मेरे साथ भोजन किया करती हो, पर कल रात तो तुम्हें भूख ही नहीं थी। भूख नहीं थी, तो न सही। तुम भोजन के समय मेरे साथ बैठ तो सकती थी। वीरेन्द्र कहीं भागा तो जाता नहीं था। दस मिनट हम सब एक साथ बैठते। तुम जानती ही हो, रात को मैं जल्दी सो जाता हूँ। मुझे मालूम है, तुम्हारी उससे बातें करने की बहुत इच्छा थी। इसमें मैं कोई हर्ज भी नहीं समझता। दस मिनट बाद मैं स्वयं कह देता, मुझे नींद आ रही है, तुम दोनों जाओ और ड्राइंग रूम में बैठकर बातें करो। पर तुम तो उसके पीछे अपनी सब सुध-बुध भूल गई थी। कर्त्तव्य और अकर्तव्य का तुम्हें जरा भी ध्यान नहीं रहा। मुन्ना सो गया है या नहीं—इस तक का तुम्हें ध्यान नहीं आया। सिर दर्द के मारे परेशान होकर जब मैं तुमसे अनेसिन की शीशी के बारे में पूछने के लिए आया, तब भी तुम्हें यह नहीं सूझा, कि तुम्हें स्वयं उठकर मुझे अनेसिन देनी चाहिए। रात के तीन बजे तक तुम वीरेन्द्र से बातें करती रहीं। एक क्षण के लिए भी तुमने यह नहीं सोचा, कि मैं जागता हूँ या सोता हूँ, मेरी सिर दर्द थम गई है या नहीं। यदि मेरे दुबारा आने पर वीरेन्द्र स्वयं उठकर खड़ा न हो जाता, तो शायद आज की सारी रात तुम उसके साथ बातों में ही बिता देती। क्या यह सब असामान्य नहीं हैं ? तुम्हें हो क्या गया है ?'

विनोद की बात सुनकर लता को ऐसे लगा, जैसे अचानक उसका हाथ बिजली की करेन्ट से छू गया हो। वह स्तब्ध और मौन खड़ी रह गई। अपने को संभाल कर उसने कहा—

'पर यह सरसता क्या पति-पत्नी के सम्बन्ध में बाधक नहीं होगी ?'

'क्यों होगी ? कोई समय था, जब स्त्रियाँ परदे में रहती थीं। यदि कोई परपुरुष किसी विवाहित स्त्री के बालों को देख तक ले, तो ऐसा समझा जाता था, मानो कोई अत्यन्त अनुचित बात होगई। भारत में अब भी ऐसे हजारों परिवार हैं, जिनमें किसी भी पर-पुरुष के लिए स्त्री की केश-राशि को देख सकना असम्भव है। पर तुम तो यह कभी भी पसन्द नहीं करोगे, कि मैं इस ढंग की 'बहू जी' बन कर रहूँ। आज भारत की हजारों सुशिक्षित स्त्रियाँ पर-पुरुषों से हाथ मिलाती हैं, मुसका कर उनका स्वागत करती हैं, उनके साथ बैठकर बातें करती हैं। तुम तो इस सब में कोई भी अनौचित्य नहीं मानते। पर भारत में ऐसे लोगों की संख्या करोड़ों में है, जो इस प्रकार की स्त्रियों को कुलटा समझेंगे। हम पुराने दकियानूसी विचारों से ऊपर उठ गये हैं। तुम यह क्यों नहीं समझ सकते, कि वीरेन्द्र के साथ मेरा सम्बन्ध केवल मैत्री का है। उसमें कलुषता का लवलेश भी नहीं है। मेरे लिये यह सम्भव ही नहीं, कि मैं किसी भी अन्य पुरुष के प्रति प्रेम का भाव रख सकूँ। पर क्या तुम यह भी अनुचित समझते हो, कि मैं किसी पुरुष के साथ मैत्री का सम्बन्ध रखूँ ?'

'मैत्री की एक मर्यादा होती है। मेरे खयाल में वीरेन्द्र के सम्बन्ध में तुमने इस मर्यादा का अतिक्रमण कर दिया है।'

'यह कैसे ?'

'जिस मैत्री से मनुष्य अपने कर्तव्य और अकर्तव्य के ज्ञान को भूल जाए, उसकी विवेक शक्ति नष्ट हो जाए, उसे मैं कभी भी उचित नहीं मान सकता। तुम इसी मामले को लो। वीरेन्द्र के सम्पर्क में आते ही तुम्हारा सब विवेक नष्ट हो जाता है। न तुम्हें नींद आती है, और न तुम्हें भूख लगती है। बच्चों को सुलाना तुम्हारा कर्तव्य है, यह भी तुम्हें स्मरण नहीं रहता। मैंने तुमसे कभी अपनी सेवा कराना पसंद नहीं किया। पर पतिपत्नी के एक दूसरे के प्रति कुछ कर्तव्य होते हैं। यदि तुम्हें कोई कष्ट हो, तो उसकी ओर ध्यान देना मेरा कर्तव्य है। इसी प्रकार यदि मुझे कोई

'इसका मतलब यह हुआ, कि यदि मुझे सिर दर्द न होती, तो वीरेन्द्र के साथ सुबह के तीन बजे तक तुम्हारा अकेले बैठे रहना सर्वथा उचित होता। तुम्हें इसमें कुछ भी अनौचित्य नहीं प्रतीत होता। क्यों यही बात है न?'

'हाँ, अपने मित्रों के साथ बात करते हुए कई बार समय का ज्ञान नहीं रहता। फिर वीरेन्द्र कोई रोज-रोज तो मिलता नहीं। सालों बाद भारत आया था। इस बार पूरे चौबीस घण्टे भी यहाँ नहीं ठहर सका।'

'अच्छा, यूं सोचकर देखो। मान लो, रात के बारह या एक बजे किसी पड़ौसी के घर में कोई तकलीफ हो जाती। तुम्हारी कोई सहेली सहायता के लिए तुम्हारे पास आती, और तुम्हें इस ढंग से वीरेन्द्र के साथ अकेली बैठे देख लेती, तो तुम्हें क्या संकोच न होता?'

'होता तो।'

'तुम शायद शर्म के मारे अपना मुंह ढक लेती। शर्म व संकोच उसी काम में होता है, जो अनुचित हो। अच्छा, यह बताओ, क्या तुम अपनी सहेलियों से निःसंकोच होकर कह सकती हो, कि तुम सुबह के तीन बजे तक एक पर-पुरुष के साथ अकेली बैठी बातें करती रही। तुम्हारी सहेलियाँ दकियानूसी नहीं हैं, सुशिक्षित हैं, आधुनिक विचारों की हैं। बताओ, तुम्हारे कार्य को वे किस दृष्टि से देखेंगी? क्या वे इसे पसन्द करेंगीं?'

'हाँ, तुम्हारी यह युक्ति मुझे समझ में आती है। मुझे कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये, जिससे मेरी आँख नीची होती हो। यह ठीक है, कि मैं इस बात का जिक्र अपनी सहेलियों से नहीं कर सकूँगी। मैं नहीं चाहती, कि हम तीन के अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यक्ति के कानों में इसकी भनक तक भी पड़े।'

'तो फिर तुमने अपनी गलती स्वीकार कर ली न?'

'हाँ, मैं यह स्वीकार करती हूँ, कि मुझे वीरेन्द्र के साथ इस प्रकार देर तक नहीं बैठना चाहिये था। पर तुम विश्वास मानो, मेरा उसके प्रति कोई भी असामान्य भाव नहीं है।'

गता रहे। मैं चुपचाप तुम्हारी अमर्यादा को सहता रहूँ। मैं इतना असहाय नहीं हूँ। मैं जानता हूँ, भारतीय नारी की दुर्दशा को तुम उत्कट रूप से अनुभव करती हो। पुरुषों के प्रति तुम्हारे दिल में प्रचण्ड विद्रोह है। पर स्त्री जाति की ओर से पुरुषों से बदला लेने का यह तो उपाय नहीं है। मैंने तो कभी तुमसे बुरा बरताव नहीं किया। मैंने कभी तुम्हें अपनी दासी नहीं समझा। फिर तुम क्यों मुझसे इस प्रकार बदला ले रही हो ?'

'मुझे माफ करो। अनजाने में मुझसे भूल हो गई। विश्वास रखो, मैं किसी भी अन्य पुरुष से प्रेम नहीं करती। वीरेन्द्र मेरा कोई नहीं है।'

लता की आँखों में आँसू आ गये। वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। विनोद का मन उद्विग्न था। लता के प्रति उसे बहुत रोष था। पर बारह साल के लम्बे अभ्यास के कारण वह लता की आंखों में आँसू नहीं देख सका। उसने उसे छाती से लगा लिया, और अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछ दिये। रात तक विनोद का मन कुछ हलका हो गया था। लता उसके पास आकर लेट गई। विनोद को छाती से चिपटाते हुए उसने आवेश से भर कर कहा—

'कभी मत भूलो, मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी। मैं कुलटा नहीं हूँ, मैं केवल तुमसे प्यार करती हूँ, केवल तुमसे।'

दिन बीतते गये। विनोद फिर अपनी पुस्तक लिखने में लग गया। बच्चों की छुट्टियाँ समाप्त हो गई थीं। लता उन्हें देहरादून छोड़ आई। जब वह लौटकर आई, तो उसने देखा, विनोद का मन अभी भी उदास है। पुस्तक लिखने में उसकी तबियत नहीं लगती, और लता से बातें करने में उसे रस नहीं आता। वह लता के साथ एक ही कमरे में सोता है, दे साथ बैठकर चाय पीते हैं, साथ बैठकर खाना खाते हैं, पर फिर भी ऐसा प्रतीत होता है, मानो उनके बीच में एक गहरी खाई हो। साथ रहते हुए भी वह लता से मीलों परे रहता है। लता के लिए यह दशा असह्य हो गई। एक दिन वह बोली—

'तुम्हें हो क्या गया है ? तुम ऐसे उखड़े-पुखड़े-से क्यों रहते हो ?'

'क्या बताऊँ, कितना अपने मन को समझाता हूँ, पर उस रात की बात एक क्षण के लिए भी मेरा पीछा नहीं छोड़ती। रह-रहकर ध्यान आता है, तुम अब अविकल रूप से मेरी ही नहीं रह गई हो। कोई और पुरुष भी तुम्हारे साथ है। जब कभी तुम्हारे पास आता हूँ, ऐसा प्रतीत होता है, वीरेन्द्र छाया रूप में तुम्हारे साथ लगा हुआ है।'

'मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ, कैसे तुम्हें विश्वास दिलाऊं। पुराने लोग प्रायश्चित्त की व्यवस्था किया करते थे। बड़े से कड़ा कुकर्म करके भी मनुष्य प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो जाता था। तुम इतने वड़े विद्वान हो। मेरे लिये किसी प्रायश्चित्त की व्यवस्था क्यों नहीं कर देते। तुम कठोर से कठोर प्रायश्चित्त बताओ, मैं सहर्ष उसे करूँगी। तुम्हारा यह उदास मुख मुझसे नहीं देखा जाता। तुम मुझे माफ कर दो। मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी हूँ।'

'क्या तुम सच कहती हो?'

'मैं बिलकुल सच कहती हूँ। मेरे मुख की तरफ देखो, क्या नजर आता है? मैं लता हूँ, तुम्हारी प्यारी लता। मेरी ओर किस ढंग से देख रहे हो, तुम्हारी इस दृष्टि से मुझे डर लगता है।'

'पता नहीं, मुझे क्या हो गया है। इसे जलन कहूँ, या उन्माद! पर मुझे क्षण भर के लिये भी चैन नहीं पड़ती। ऐसा प्रतीत होता है, कोई तपती हुई लौह शलाका को लेकर मेरे दिल को जला रहा है। अपने हृदय की पीड़ा को मैं स्वयं भी नहीं समझता।'

'मुझे माफ कर दो। तुम्हारी लता से एक भूल हो गई थी। वह चलते-चलते ठोकर खाकर गिर पड़ी थी। यदि कभी मेरा पैर फिसल जाए, मैं गिर पड़ूं, तो क्या तुम मुझे धक्के दे कर बाहर निकाल दोगे? समझ लो, एक बार मेरा पैर ही फिसल गया था।'

'तुम्हें मेरी दशा देख कर दया आती है, इसीलिये सान्त्वना देने के लिये ऐसी बातें कहती हो। न मैं तुम्हें पतित समझता हूँ, और न अपराधी। संसार में मैं अकेला ही पुरुष नहीं हूँ, लाखों अन्य पुरुष हैं, जो

मेरी अपेक्षा अधिक योग्य हैं, अधिक प्रतिभाशाली और बलवान हैं। वीरेन्द्र को ही लो, वह कितना सजीव और स्फूर्तिमान् है। अन्य पुरुषों के सम्पर्क में आने के कारण यदि तुम किसी के प्रति आकर्षण अनुभव करने लगी, तो इसमें अस्वाभाविकता कुछ नहीं है।'

'तुम ऐसी बातें क्यों कहते हो ? अन्य पुरुषों से मुझे क्या मतलब ? संसार की कोई भी शक्ति हम दोनों को अलग नहीं कर सकती। केवल मौत ही हमें पृथक् करेगी।'

'पर यह बताओ, कि वीरेन्द्र के साथ तुम्हारा जो सम्बन्ध है, उसे मैं कैसे अपनी आँखों से ओझल कर दूं। उसका ध्यान आते ही मैं बेचैन हो जाता हूँ। ऐसा प्रतीत होता है,एक उन्मत्त हाथी आया और हमारी फूलती फलती फुलवारी को उजाड़ गया। हमारा वैवाहिक जीवन कितना सुखी था। बाँसुरी से एक मीठी तान बज रही थी। संगीत की मधुर लहरी प्रवाहित हो रही थी। वीरेन्द्र आया, और उसे बेसुरा कर गया। ऐसा प्रतीत होता है, हमारी सुमधुर सितार के तार टूट गये हैं। वीणा हाथ से गिर गई है, और मैं उद्विग्न हुआ उन दिनों को याद कर रहा हूँ, जब हम दोनों एक थे, अविकल रूप से एक। क्या वे दिन फिर वापस नहीं आ सकते! क्या हमारी बाँसुरी फिर से मीठी तान नहीं निकाल सकती।'

'क्यों नहीं, मैं तुम्हारी ही तो हूँ, केवल तुम्हारी।'

'फिर तुम वीरेन्द्र से एकान्त में क्यों मिलती हो? उसके सम्पर्क में आकर अपने विवेक को क्यों खो बैठती हो ?'

'मैं स्वीकार करती हूँ, उस रात को अकेले उसके साथ बैठ कर मैंने भूल की। कभी-कभी मनुष्य से भूल हो ही जाती है। पर क्या यह ऐसा अपराध है, जिसके लिए तुम मुझे क्षमा नहीं कर सकते। यदि तुम क्षमा नहीं कर सकते, तो मुझे दण्ड दो—कठोर से कठोर दण्ड। मैं ख़ुशी के साथ उसे स्वीकार कर लूंगी।'

'देखो, न तुमने कोई अपराध किया है, न कोई पाप। बारह साल पहले न मैं तुम्हें जानता था, न तुम मुझे। हम दोनों का विवाह हो गया,

हम दोनों विवाह बन्धन में बंध गये । हम एक दूसरे को प्रेम करने लगे, पर तुम्हारा विवाह किसी और पुरुष से भी हो सकता था, तुम उसे भी प्यार कर सकती थी । यही बात मैं अपने विषय में भी कह सकता हूँ ।'

'ऐसी बात न कहो । जब तक मैंने तुम्हें नहीं देखा था, मैं किसी की ओर भी आकृष्ट नहीं हुई थी । पिता जी ने कितने रिश्ते सामने रखे, कितने युवकों की फोटो दिखाई, कितनों के पद धन व प्रतिष्ठा की बातें बताईं ! पर मेरा एक ही जबाब था, मैं विवाह नहीं करना चाहती । मैं अपने मुंह से कैसे कहती, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, केवल तुम्हें । पिता जी मुझ से बहुत नाराज थे । कहते थे, इस लड़की के मन का वर कहाँ से खोज कर लाऊँ । एक दिन उन्होंने तुम्हारा जिक्र किया । मेरे चेहरे पर खुशी दौड़ गई । मैं इन्कार नहीं कर सकी । भागी हुई गई, और भाभी की गोद में मुँह छिपा लिया । मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ, तुम्हें देखते ही मैं तुम पर आकृष्ट हो गई थी । तुम्हारी प्रतिमा मेरे मन मन्दिर में स्थापित हो गई थी । मैं अनुभव करती थी, तुम्हारे लिये ही भगवान ने मुझे बनाया है । आज भी तुम्हारे प्रति मेरा वही भाव है । तुम्हारे बिना मैं जी सकती हूँ, यह बात मेरी कल्पना से भी बाहर है ।'

'पर जो वस्तु सादि है, उसका अन्त होना भी स्वाभाविक है । केवल अनादि वस्तु ही अनन्त काल तक रह सकती है । हमारा प्रेम सादि था, वह अनन्त कैसे हो सकता है । तुम मुझे प्यार करती थी । पर उस प्यार का अन्त किसी दिन तो होना ही है ।'

'तो क्या तुम मेरे प्यार का अन्त कर डालने के लिये तुले हुए हो । तुम उस रात की मेरी भूल को माफ क्यों नहीं कर सकते ?'

'माफ करने वाला मैं कौन हूँ । जिस क्षण मुझे अनुभव हो जायगा, कि तुम केवल मेरी हो, वीरेन्द्र के लिये तुम्हारे हृदय में कोई भी स्थान नहीं है, उसी क्षण मेरा यह उन्माद स्वयमेव समाप्त हो जायगा ।'

'पर अब तो उसके लिये मैं कोई भी असामान्य भाव नहीं रखती । क्या तुम यह नहीं मानते ?'

'शायद तुम स्वयं ही अपने को नहीं समझ पा रही हो। असामान्य भाव के बिना कोई स्त्री किसी पुरुष के साथ रात भर बैठ कर बातें नहीं कर सकती, और वह भी उस दशा में जब उसका पति सिरदर्द से तड़प रहा हो।'

'तुम मुझे बार-बार शर्मिन्दा न करो। मैं अपनी भूल को स्वीकार कर चुकी हूँ। पर अब तो मेरे मन में वीरेन्द्र के प्रति कोई भी असामान्य भाव नहीं है। मैं अपने हृदय को चीर कर कैसे तुम्हारे सामने रखूं। बुखार का पता करने के लिये थर्मामीटर होता है। यदि मेरे मन का भाव देखने के लिये भी कोई इसी प्रकार का उपकरण होता, तो मैं तुम्हें विश्वास करा सकती। अच्छा, मेरी आँखों की ओर देखो। क्या मेरी आंखों में तुम्हें किसी और पुरुष की छाया भी दिखाई देती है ? सच-सच कहना।'

लता की बातों से विनोद का मन कुछ आश्वस्त हुआ। उसने कहा—

'जो हुआ, सो हुआ। अब भविष्य में जरा अधिक विवेक से काम लेना। पति पत्नी का सम्बन्ध बहुत नाजुक होता है। वह जरा सा भी आघात सहन नहीं कर सकता।'

(७)

कई दिन बीत गये। विनोद का मन अब शान्त था। वह अपनी पुस्तक लिखने में व्यग्र हो गया था, और लता उन दिनों की प्रतीक्षा में थी, जब कालिज बन्द हो जायगा, और बच्चे भी घर वापस लौट आएंगे। वह सोचती थी, इस साल गर्मियों की छुट्टी में काश्मीर चलेंगे। काश्मीर में अब शान्ति है, भविष्य की कौन जानता है। क्यों न इस साल काश्मीर घूम आएं। लता इस प्रकार सोच रही थी, कि विनोद ने एक पत्र उसके हाथ में दे दिया और कहा—'जरा इसे पढ़ो तो। आगरा से पत्र आया है। कामनवेल्थ यूनिवर्सिटी कान्फ्रेंस में शामिल होने के लिये मुझे आगरा यूनिवर्सिटी का प्रतिनिधि चुन लिया गया है। कुछ खर्च यूनिवर्सिटी से मिलेगा, और कुछ अपनी जेब से करना पड़ेगा। विलायत घूम आने का

बहुत अच्छा मौका है। क्या राय है, स्वीकार कर लूं।'

पत्र पढ़ कर लता खुश हो गई। बोली—'चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।'

'पर दो आदमियों के जाने पर खर्च बहुत बढ़ जायगा।'

'खर्च की तुम चिन्ता न करो। अकेले मेरा दिल नहीं लगेगा। तुम्हें भी अकेले क्या आराम मिलेगा। अच्छा मौका है, मैं भी तुम्हारे साथ यूरोप की सैर कर आऊंगी।'

'बच्चों का क्या होगा, वे किसके पास रहेंगे? मई के शुरू में उनकी छुट्टियां हो जाएंगीं।'

'क्यों न उन्हें मसूरी के कन्वेन्ट स्कूल में दाखिल कर दिया जाय। स्कूल में रहने की उन्हें आदत पड़ ही गई है। मसूरी के स्कूलों में दिसम्बर में छुट्टी होती है। सर्दियों में घर रह लेंगे।'

'बार-बार स्कूल बदलना अच्छा नहीं होता। छोटा मुन्ना उदास भी था, अभी उसका स्कूल में दिल नहीं लगा। घर से जाते हुए कैसे फूट-फूट कर रोया था।'

'शुरू में बच्चे इसी प्रकार रोते हैं। साल छः महीने बाद उसका घर में दिल भी नहीं लगेगा। मसूरी और देहरादून के कन्वेन्ट स्कूलों में पढ़ाई बिलकुल एक ढंग की है। स्कूल बदलने से कोई खास नुकसान नहीं होगा। अच्छा, मुझे अपने साथ विलायत ले चलोगे न? तुम जानते ही हो, विदेश-यात्रा की मेरी कितनी प्रबल इच्छा है। मेरे साथ चलने से तुम्हारे किसी काम में विघ्न नहीं पड़ेगा। समझ लेना, एक प्राइवेट सेक्रेटरी को साथ ले लिया है।'

'अच्छा, तो यही सही। अब तो खुश हो न?'

विनोद ने मसूरी के वेवरली कन्वेन्ट का प्रोस्पेक्टस मंगा लिया। बच्चों के दाखिले में कोई कठिनाई नहीं हुई। दो मई को देहरादून के कन्वेन्ट में गरमी की छुट्टियां हो गईं, और लता बच्चों को साथ लेकर उन्हें मसूरी दाखिल करा आई। मसूरी जाकर बच्चे बहुत प्रसन्न हुए।

लता ने उनके लिये बिस्कुट और मीठी गोलियों के डब्बे खरीद दिये। रानी आँखें खोलने और बन्द करने वाली गुड़िया पाकर खुश हो गई, और मुन्ना ? वह भी प्रसन्न था, क्योंकि लता ने उसके लिये गेंद और बल्ला खरीद दिये थे।

बच्चों को मसूरी छोड़ कर लता मेरठ लौट आई। वह खुश थी, और विदेश यात्रा के लिये तैयारी में लगी थी। थामस कुक एण्ड सन्स के साथ जहाज में स्थान सुरक्षित कराने के लिये पत्र व्यवहार जारी था, और पासपोर्ट के लिये प्रार्थना पत्र भेज दिये गये थे।

पर विनोद का मन अब तक भी पूरी तरह से शान्त नहीं हुआ था। कभी-कभी वह उदास हो जाता था। वह चुपचाप आसमान की ओर देखने लगता, और किसी भी काम में उसका मन न लगता। उसे इस दशा में देखकर एक दिन लता ने कहा—

'तुम क्यों उदास हो ? क्या अब भी तुम्हारा मन शान्त नहीं है ?'

'मैं तुमसे छिपाऊंगा नहीं। पर क्या कहूँ, तुम्हें सुनकर दुख होगा।'

'नहीं। वाणी द्वारा मन का उद्वेग बाहर निकल जाता है। तुम अपने दिल की बात अवश्य कहो। मैं दुख नहीं मानूंगी।'

'क्या बताऊं, रह रह कर वह रात मेरी आंखों के सामने घूमने लगती है। इच्छा होती है, कुछ दिनों के लिये कहीं चला जाऊं। इससे शायद कुछ शान्ति मिले। कहो तो पांच सात दिन के लिये मसूरी हो आऊं। बच्चों से भी मिल आऊंगा।'

'तो मैं भी साथ चलूंगी। यहां अकेले बैठे-बैठे क्या करूंगी। विलायत जाने से पहले एक बार बच्चों से मिल आना अच्छा ही होगा।'

'नहीं, मैं अकेला ही जाना चाहता हूँ। मुझे तुम्हारे साथ रहने की ऐसी आदत हो गई है, कि एक दिन भी तुम्हारे बिना नहीं रह सकता। यह आदत अच्छी नहीं है। उसी घटना को लो। यदि मुझे तुम्हारे बिना भी जीवन बिताने का अभ्यास होता, तो शायद उस बात से मुझे इतना दुःख न होता। मेरी हालत एक ऐसे लंगड़े आदमी की सी है, जो लाठी

दशा में मैं तुम्हें अकेले कहीं भी नहीं जाने दूंगी। चलो, हम दोनों कहीं घूम आएं। चलो, दस दिन के लिये काश्मीर हो आएं। विलायत तो जून के शुरू में जाएंगे न ?'

'और कहीं जाकर रुपया बरबाद करने से क्या लाभ ? विलायत के लिये भी तो रुपया चाहिये।'

'तो फिर चलो, सिनेमा ही देख आएं। नावेल्टी सिनेमा में मि० सम्पत चल रहा है। बहुत अच्छी फिल्म है। उसे देखकर तुम्हारी उदासी अवश्य दूर होगी।'

'नहीं, रहने दो। सिनेमा जाने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं होती।'

'तो चलो, आज कोई ड्रिन्क ही मंगा लें। गम को रफ़ा करने का यह भी एक तरीका है। कभी-कभी जब तुम मित्रों के साथ बैठ कर ड्रिन्क करते हो, तो तुम्हें बहुत अच्छा लगता है।'

'पर अकेले ड्रिन्क करने में जरा भी मजा नहीं आता। तुम तो इसमें मेरा साथ कभी देती ही नहीं।'

'क्यों नहीं देती। कितनी बार तुम्हारा साथ दे चुकी है।'

'तो यही सही। शायद ड्रिन्क करके ही मेरा चित्त कुछ प्रसन्न हो। पर तुमने पूरी तरह से मेरा साथ देना। ना ना न करने लग जाना। स्वीकार है ?'

'हां, स्वीकार है।'

रामू को भेज कर लता ने ह्विस्की की एक बोतल मंगाली। तीन-चार बोतलें सोडे की भी मंगा ली गईं। साँझ हो गई थी। भोजन से निबट कर लता ने कपड़े बदल डाले। उसने तबियत के साथ अपने शरीर का प्रसाधन किया। विनोद को प्रसन्न रखने के लिये वह सब कुछ करने को तैयार थी। उसे पाउडर रूज और लिपस्टिक आदि का जरा भी शौक नहीं था। पर आज उसने शृंगार में जरा भी कसर नहीं की। भाग्यवश, उस दिन आसमान में बादल घिर आये थे। मूसलाधार पानी पड़ा था, हवा में ठण्डक आ गई थी।

विनोद को मदिरापान की आदत नहीं थी। पर वह उसके स्वाद से परिचित भी नहीं था। कभी-कभी सुरापान करने में उसे वस्तुतः मजा आता था। उसने सोचा, हर्ज क्या है, एक दिन जी भरकर शराब पी लूं, शायद इससे ही तबियत बहल जाए। दिन-रात उदास रहने से तो यही अच्छा है, कि किसी उपाय से अपने गम को भूल जाऊं,चाहे वह थोड़ी ही देर के लिये क्यों न हो। आज वह लता के प्रति आकर्षण अनुभव कर रहा था, रूप और उसका प्रसाधन प्रेम में सहायक जो होता है। उसने एक-एक पेग ह्विस्की दो गिलासों में डाल दी, और उन्हें ऊपर तक सोडे से भर दिया। कुछ घूंट पीने के बाद लता और विनोद में नई स्फूर्ति आ गई। लता सुरापान को बुरा समझती थी। मित्रमण्डली में बैठकर मदिरापान करते हुए विनोद को देख कर उसे बहुत बुरा लगता था। वह उसे बहुधा शराब पीने से रोकती भी रहती थी। पर आज वह अपने हाथ से विनोद को सुरापान करा रही थी। सोचती थी, ये खुश रहें, इनकी उदासी दूर हो। हजारों आदमी शराब पीते हैं। ये भी पीने लगें, तो कौन बुरी बात होगी। फिर रोज-रोज तो पीते भी नहीं हैं। साल भर में पाँच सात दफे शौक पूरा कर लिया, तो क्या हर्ज है। और आज तो खास बात है। इनकी उदासी मुझसे नहीं देखी जाती। पता नहीं, इन्हें क्या हो गया है। लता के सहारा देने पर विनोद ने एक गिलास दस मिनट में समाप्त कर लिया। लता ने एक पेग और डाल दिया। इस पर विनोद ने कहा—'तुम तो पीती ही नहीं हो, लो मेरे हाथ से पिओ।' एक पेग खतम करके लता कुछ चंचल सी हो गई। उसने अपने गिलास में दूसरा पेग भी डाल लिया। उसे पीती हुई वह बोली—'आज तुम्हें खुश देखकर मैं कितनी प्रसन्न हूँ, तुम्हारे लिये मैं कुछ भी कर सकती हूँ। लो, सिगरेट जलाओ।'

सिगरेट और सुरा साथ-साथ चलते रहे। विनोद तीसरा पेग शुरू कर चुका था, और लता का भी दूसरा गिलास खाली होने को था। दोनों पर नशा छा गया था। विनोद ने कहा—

'तुम्हें क्या हो गया था, मेरी रानी ! क्या तुम सचमुच वीरेन्द्र को

प्यार करने लगी थी ?'

'नहीं, यह बात नहीं है। तुम्हारे सिवा मैं किसी और को प्यार नहीं करती।'

'तो वीरेन्द्र के प्रति तुम्हारा क्या भाव था, सच-सच कहना। मुझसे कुछ भी न छिपाना।' लता के होश हवाश ठिकाने नहीं थे। उसने कहना शुरू किया—

'जानते हो, वीरेन्द्र कितना प्यासा है। उसकी आंखों में अनन्त प्यास है। इतनी उमर हो जाने पर भी उसने अब तक विवाह जो नहीं किया। उसकी प्यासी आँखें ढूंढ़ रही हैं, किसी ऐसी प्रेयसी को, जो उसकी प्यास को बुझा सके। उसकी प्यास मुझसे नहीं देखी जाती। कोई प्यासा आदमी अपने घर आए, तो क्या उसे धक्का देकर बाहर निकाल दिया जाता है। मेरे पास बैठकर उसे शान्ति मिलती है। बस इतनी सी बात है, और कुछ नहीं।

'और तुम्हें ?'

'मुझे ? मुझ से उसकी प्यासी आंखें नहीं देखी जातीं। कितना मन को समझाती हूँ, उन आंखों में ज्वाला है, दावानल है, उनसे बचकर दूर रहो। कहीं उसकी लपटें मुझे झुलसा न दें। पर विवश हूँ, प्यासे को देखकर उसे पानी तो देना ही पड़ता है न ?

'तो तुम उसकी प्यास को बुझा क्यों नहीं देती ?'

'कैसे बुझाऊं ? यह समाज जो रास्ते में बाधक है। हमारा यह दकियानूसी समाज ! यह तो स्त्री को इतना भी अधिकार नहीं देता, कि वह किसी पर-पुरुष से दो घड़ी बातचीत भी कर सके, उसके साथ हँस बोल भी सके।'

'तुम समाज की इतनी परवाह क्यों करती हो ?'

'समाज की मुझे जरा भी परवाह नहीं है। उसे मैं ठुकरा सकती हूँ। पर तुम ? तुम भी तो इसे नहीं सह सकते। उस रात वीरेन्द्र के साथ बैठी बातें करती रहीं। तुमने कितना बड़ा तूफान खड़ा कर दिया। मैं समाज

की उपेक्षा कर सकती हूं, पर तुम्हारी नहीं।'

'तुम मेरी इतनी परवाह क्यों करती हो ?'

'क्यों न करूँ। पर हाँ, वह वहुत प्यासा है। उसका हृदय मरुभूमि के समान है, एक दम शुष्क। वह प्रेम चाहता है। प्रेम ही उसके हृदय में सरसता ला सकता है'

'फिर तुम उसकी प्यास को वुझाती क्यों नहीं ?'

'वुझाऊँ कैसे ? कोई वुझाने दे तव न ? हाँ, उसकी आँखें देखकर मैं अपनी सव सुध-वुध भूल जाती हूं। कितनी अनन्त प्यास है उन में। मेरे साथ वैठकर उसे शान्ति मिलती है। कहता है, प्रेम की जिस प्रतिमा को वर्षों से ढूंढ़ रहा है, वह आज सामने आगई है। पर कितना मूर्ख है वह ! एक दम वज्रमूर्ख ! इतनी मोटी सी वात भी नहीं समझता, कि यह प्रतिमा दूसरे की है, उसकी कभी नहीं हो सकती।'

'क्यों नहीं हो सकती ?'

'समाज, परिवार, वंधन और क्या ? हाँ, उसकी आँखों में अनन्त प्यास है। कभी तुमने विषधर साँप देखा है ? उसकी आँखें कैसे चमकती हैं ? यही दशा वीरेन्द्र की है।'

दूसरा पेग खतम करते-करते लता एकदम वेसुध होगई थी। वह विनोद की गोद में लुढ़क पड़ी। विनोद अभी होश में था। उसने उसे सहारा दिया, और पलंग पर लिटा दिया। उसका मन उद्विग्न था। लता की वातों से उसके हृदय में एक तूफान सा उठ खड़ा हुआ था। वह भी अपने पलंग पर लेट गया, और सुरा के प्रभाव से उसे शीघ्र ही नींद आगई।

अगले दिन लता की तवियत कुछ खराव रही। सारा दिन उसने लेटे-लेटे विता दिया। विनोद क्या कर रहा है, इस ओर उसका ध्यान नहीं गया। सांझ होने पर वह उठी और विनोद के पास गई। उस समय विनोद चुपचाप वैठा हुआ कमरे की छत की ओर देख रहा था। लता उसकी दशा को देखकर काँप गई। उसने कहा—

'अरे, तुम तो बहुत उदास हो। तुम्हें क्या होगया है ?'

'तुम कौन हो ? यहाँ मेरे पास क्यों आई हो ?"

'अरे, तुम्हें क्या हो गया, तुम क्या मुझे पहचानते भी नहीं ?'

लता विनोद के साथ लिपट गई, और उसे विस्तर पर लिटा दिया। विनोद ने रोष के साथ कहा—

'तुम कौन हो, मुझे मत छुओ। मैं कभी पर-स्त्री का स्पर्श नहीं करता।'

यह कहते हुए उसने लता को परे धकेल दिया। उसकी भाव भंगी को देखकर लता डर गई। वह सीधी खड़ी होकर विनोद को देखने लगी। विनोद की आँखें चढ़ी हुई थीं, वह एक टक छत की ओर देख रहा था। उसने हाथ उठाया, और उसे जोर से अपने सिर पर दे मारा। लता ने उसके हाथ पकड़ लिये, और कहा—'तुम्हें क्या हो रहा है ?'

'परे हट जाओ। मैं होश में नहीं हूँ।'

विनोद ने करवट ली, और उसका सिर जोर के साथ दीवार से टकरा गया। दीवार से टक्कर खा कर उसे कुछ होश हुआ। उसने पूछा—'यह कैसी आवाज थी ?'

'अरे, तुम तो पागल हो रहे हो। इस तरह अपना सिर दीवार से क्यों टकराते हो ?'

'हैं, यह मेरे सिर के टकराने की आवाज थी !'

विनोद ने अपना हाथ उठाया, और उसे जोर से अपने सिर पर दे मारा। उसकी हालत देखकर लता घबरा गई। उसने पुकारा—रामू !

'किसी को बुलाओ नहीं। रामू कौन है, किसे बुलाती हो ? तुम कौन हो ? मेरे पास क्यों बैठी हो ?'

'मैं लता हूँ, तुम्हारी प्यारी लता।'

'तुम लता हो ? नहीं, तुम झूठ बोलती हो। लता तो कहीं चली गई है। मुझे वह कितना प्यार करती थी। पर पता नहीं, उसे क्या होगया। वह अचानक कहीं चली गई। क्या तुम लता को जानती हो ? कितनी अच्छी थी वह !'

नहीं आजायगी, मुझे चैन नहीं पड़ेगी। क्या तुम उसे जानती हो ?'

'हाँ, वह मेरी सहेली है। मैं उसे भली भाँति जानती हूँ।'

'तो फिर तुम उसे मेरे पास वुला दो। उसके विना मैं कभी स्वस्थ नहीं हो सकता।'

'अच्छा, तुम पाँच मिनट चुपचाप पड़े रहो, मैं उसे अभी वुलाती हूँ। देखना, उठना नहीं।'

'तुम वड़ी अच्छी हो, नर्स ! क्या तुम सचमुच उसे वुला लाओगी।'

लता उठकर कमरे से वाहर चली गई। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा वह रही थी। आँसू पोंछ कर और वालों में कंघी कर वह वापस आई, और वोली—

'तुमने मुझे वुलाया था। लो, मैं आ गई।'

'तुम आ गई, लता ! हाँ, तुम लता ही तो हो। आओ, मेरे पास वैठो। तुम चली कहाँ गई थी ? मालूम है, तुम्हारे विना मैं कितना व्याकुल हो गया था। अव तो मुझे छोड़कर कहीं नहीं जाओगी ? वोलो, प्रतिज्ञा करो।'

'हाँ, मैं तुम्हें छोड़कर कभी कहीं नहीं जाऊँगी। मैं प्रतिज्ञा करती हूँ।'

'तुम कितनी अच्छी हो, जरा मेरे सिर पर हाथ तो रख लो।'

'अरे तुमने तो अपने कपड़े भी फाड़ लिए। तुम्हें हो क्या गया है ?'

'हैं, ये कपड़े क्या मैंने ही फाड़े हैं ! जाने दो, कपड़े और वन जाएँगे। पर सच वताओ, तुम मुझे कभी छोड़ोगी तो नहीं। मैं तुम्हारे विना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता।'

लता विनोद के साथ लेट गई। उसकी आंखों से अविरल अश्रुधारा वहने लगी। विनोद का मुख लता के आँसुओं से गीला हो गया। इससे उसे वहुत शान्ति मिली। आध घण्टे वाद वह उठ खड़ा हुआ, और वोला—

'चलो, उठो, स्नान कर लें। न जाने मुझे क्या हो गया था। क्या मैं सचमुच पागल हो गया था।'

'ऐसी वात न कहो। चलो, कहीं घूम आएँ। चाँदनी खिल आई है,

बुध खो बैठी थी।'

'तुमने कहा था, वीरेन्द्र कितना प्यासा है, उसकी प्यासी आँखें तुम से नहीं देखी जातीं। घर आये प्यासे आदमी को पानी दिये बिना वापस कर देना कितनी बड़ी नृशंसता है। वह अपनी प्यास बुझाना चाहता है; प्यार से। तुम्हारी ये बातें सुनकर मुझे न जाने क्या हो गया था। ऐसा प्रतीत होता था, तुम परायी हो गई हो।'

'ऐसा न कहो। शराब के नशे में मनुष्य न जाने क्या-क्या बक जाता है।'

'पर तुम न मुझे धोखे में रखो, और न अपने को। मनुष्य के अन्तस्तल में जो भावना घर कर जाती है, होश में वह उसे छिपा लेता है। पर नशे का दशा में, होश हवाश खो चुकने के बाद? हृदय की बात वाणी के रास्ते बाहर आ जाती है। पता नहीं, वीरेन्द्र ने तुम पर क्या जादू कर दिया है। मुझ से छिपाओ नहीं, साफ-साफ कह दो। यदि तुम सचमुच ही वीरेन्द्र के प्रति आकर्षण अनुभव करती हो, तो मैं बुरा नहीं मानूंगा। प्रेम दैवी होता है, अलौकिक होता है। समाज, दाम्पत्य जीवन या परम्परागत मर्यादा के विचार से उसका अनादर न करो। विवाह बन्धन मनुष्यकृत है। मानव जीवन के समान वह भी मर्त्य है। पर प्रेम अमर है। मैं सच्चे प्रेम का कभी अनादर नहीं करूंगा। मैंने तुम्हें सच्चे दिल से प्यार किया है। मेरी इच्छा है, तुम सदा सुखी रहो। यदि तुम सचमुच वीरेन्द्र को प्रेम करती हो, तो मैं खुशी-खुशी तुम्हें उसके साथ रहने की अनुमति दे दूंगा। संसार लैला और मजनू के गाने गाता है, बाज बहादुर और रूपमती की प्रेमगाथा का गान करता है। हम दोनों की कथा भी अमर हो जायगी। मैं अपने हाथ से वीरेन्द्र के साथ तुम्हारा विवाह कर दूंगा। दुनिया कहेगी, विनोद ने भी किसी के साथ प्यार किया था। अपनी प्रेयसी को सुखी देखने के लिये उसने अपने हाथ से उसे दूसरे को दे दिया था।'

लता अवाक् होकर विनोद के इन उद्गारों को सुन रही थी। उसे

'तुम भी कैसी बातें कर रहे हो, तुम्हें तो फिर उन्माद होने लगा।'

'नहीं, मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। दिल की बात कह देने से मन जरा शान्त हो जाता है। तुम्हें बुरा तो नहीं लगता ? यदि बुरा लगता हो, तो मैं नहीं कहूँगा।'

'नहीं, तुम्हारे मन में जो आए कहो, मुझे बुरा नहीं लगता।'

'हाँ, याद आया। मैं कह रहा था, प्रणय संसार की सबसे पवित्र वस्तु है, वह दैवी है। उसका अपमान मत करो। भगवान् का अपमान करने से पाप लगता है।'

'पर मैं तो किसी अन्य पुरुष से प्रेम नहीं करती।'

'वीरेन्द्र के प्रति तुम्हारा जो भाव है, वह असामान्य है। अपने भावों को दबाने से कोई लाभ नहीं होता। मैं जानता हूँ, तुम्हारा नैतिक आदर्श बहुत ऊँचा है। तुम सदाचार और नैतिकता को बहुत महत्त्व देती हो। वीरेन्द्र के प्रति तुम्हारे हृदय में जो आकर्षण है, उसे तुम दबाने का यत्न कर रही हो, क्योंकि तुम उसे नैतिकता के विरुद्ध मानती हो। पर मैंने मनोविज्ञान का अध्ययन किया है। तुम्हें इसमें सफलता नहीं होगी। जैसे बीज जमीन में पड़ा रहता है, और जब कभी अनुकूल जलवायु व परिस्थिति मिलती है, वह अंकुर रूप में फूट पड़ता है, और धीरे-धीरे बढ़कर एक विशाल वृक्ष बन जाता है, वही दशा प्रेम के बीज की भी होती है। वीरेन्द्र के प्रति तुम्हारे दिल में जो आकर्षण है, वह अभी बीज रूप में है। पर कौन जानता है, कि एक दिन वह एक विशाल वृक्ष के रूप में परिणत नहीं हो जायगा।'

'तुमने मुझे बिलकुल गलत समझा है। मैं इतने पुरुषों के साथ खुल कर मिलती-जुलती रही हूँ। तुमने कभी बुरा नहीं माना। गलतफहमी की भी कोई हद होती है। तुम्हें हो क्या गया है ?'

'पर इससे पहले तुमने कभी अपने विवेक को नष्ट नहीं होने दिया। मनुष्य केवल प्रेम में फँसकर ही विवेक को नष्ट कर सकता है। मेरी एक बात मानो। तुम अपने प्रेम का पारायण कर लो। अपनी भावना को दबाने

हो। बचपन की एक बात याद आती है। हमारे घर के आँगन में जामन के पेड़ पर एक चिड़िया का घोंसला था। एक दिन चिड़िया का छोटा सा बच्चा, जिसके पंख अभी पूरी तरह से निकले नहीं थे, घोंसले से निकल कर नीचे आ बैठा। मैंने नौकरानी से कहा, इसे उठाकर ऊपर रख दो। चिड़िया कहीं गई हुई है। यह बेचारा कहीं किसी के पैरों के नीचे न आ जाए। नौकरानी ने उठा कर उसे बाहर की बड़ी मेज पर रख दिया। थोड़ी देर बाद चिड़िया आई, और बच्चे को सूंघकर न जाने कहाँ उड़ गई। वह छोटा सा बच्चा वहीं पड़ा रहा। मुझे आश्चर्य हुआ, चिड़िया उसे सहारा देकर घोंसले में क्यों नहीं ले गई। नौकरानी ने बताया—बीबी, हमारे छूने से बच्चा अपवित्र हो गया है। अब चिड़िया उसे ग्रहण नहीं करेगी। तुम भी मेरे साथ ठीक यही व्यवहार कर रहे हो। तुम्हारी दृष्टि में मैं अपवित्र हो गई हूँ, एक पराये पुरुष के साथ रात के समय अकेले जो बैठ गई थी। तुम इतनी मोटी सी बात क्यों नहीं समझ पाते, कि कभी-कभी इन्सान से भूल भी हो जाती है। क्या तुम मेरी इस भूल को क्षमा नहीं कर सकते? क्या मेरी यह भूल इतनी भयंकर है, कि इसके कारण हमारी सोने की गृहस्थी मिट्टी हो जाए?'

'यदि तुम इसे भूल कहना पसन्द करती हो, तो मुझे कोई एतराज नहीं। पर सचमुच ही यह भूल ऐसी है, जिसके कारण हमारे दाम्पत्य जीवन पर कुठाराघात हो गया है। मैं स्त्री-स्वातन्त्र्य का पक्षपाती हूँ। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि स्त्री या पुरुष का किसी अन्य पुरुष व स्त्री के प्रति आकर्षण हो सकता है। मैं इस भ्रम में नहीं हूँ, कि संसार में मैं ही सर्वोत्कृष्ट पुरुष हूँ। मैं तो एक अत्यन्त साधारण प्राणी हूँ। वीरेन्द्र मेरी अपेक्षा अधिक सजीव है, उसकी आमदनी भी मेरे मुकाबले में बहुत अधिक है। वह रुपये को पानी की तरह बहा सकता है, देश-विदेश की सैर करता फिरता है। वह योग्य है, रूपवान् है। यदि तुम उसके प्रति आकर्षण अनुभव करो, तो मुझे क्या विप्रतिपत्ति हो सकती है। पर एक बात स्मरण रखो। प्रत्येक वस्तु के लिए कीमत देनी पड़ती है।

हम बाजार जाते हैं, एक कपड़ा पसन्द करते हैं। क्या हम उसे मुफ्त प्राप्त कर सकते हैं? नहीं, उसके लिए हमें कीमत देनी पड़ती है। जो चीज जितनी बढ़िया होगी, उसके लिए हमें कीमत भी उतनी ही अधिक देनी होगी। यदि तुम वीरेन्द्र के प्रति आकृष्ट हो, उसे प्राप्त करना चाहती हो, तो उसके लिए कीमत देने को भी तैयार रहो। यह कीमत है, हमारे दाम्पत्य सम्बन्ध का अन्त, इस गृहस्थी का सर्वनाश! बोलो, तुम इसके लिए तैयार हो?'

'तुम कैसी बातें कर रहे हो? तुमने तो तिल का ताड़ बना दिया है। मैं मानती हूँ, कि वीरेन्द्र के साथ बातें करना मुझे अच्छा लगता था। दुनिया भर की सैर कर के आया था। पाश्चात्य जीवन की मनो-रंजक बातें सुनाता था। मैं यहाँ खाली थी, कोई विशेष काम था नहीं। उसके साथ बातें करने बैठ गई, तो क्या यह इतना भयंकर अपराध था?'

'यदि तुम उससे केवल बातें ही करतीं, तो मुझे क्या एतराज हो सकता था?'

'तो क्या तुम समझते हो, मैं उससे प्रेमालाप कर रही थी?'

'मुझे क्या मालूम! पर उसकी प्यासी आँखें तुम्हें देख रही थीं, अपनी प्यास को शान्त करने के लिए। और तुम उत्सुक थी, उसकी प्यास को बुझा देने के लिए।'

'मालूम होता है, तुमने इस फलती-फूलती बगिया को उजाड़ देने का ही निश्चय कर लिया है। शायद भाग्य को यही मंजूर है।'

'पर इसका दोष तुम पर होगा, मुझ पर नहीं। यदि मेरे सामने दो विकल्प रखे जाएँ, किसी अन्य पुरुष के लिये आकर्षण अनुभव करने वाली पत्नी के साथ जीवन व्यतीत करो, या अपनी फलती-फूलती गृहस्थी को उजाड़ दो, तो मैं निःसंकोच दूसरे विकल्प को ही चुनूंगा।'

'पर इस सब की जरूरत ही क्या है? मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ, कि वीरेन्द्र के प्रति मेरे मन में किसी भी प्रकार का असामान्य भाव नहीं है।'

'फिर तुम उस रात अपने विवेक को कैसे खो वैठीं ?'

'उस रात सचमुच मुझसे भारी भूल हो गई थी। मैं अपनी भूल को स्वीकार करती हूँ। यदि उस समय मेरे मन में उसके प्रति कोई असामान्य भाव था भी, तो विश्वास रखो, अब तो वह बिलकुल भी नहीं रह गया है। क्या मैं इतनी मूर्ख हूँ, कि क्षण भर के सुख के लिए अपने घर बार का नाश कर दूँ। पता नहीं, उस दिन मुझे क्या हो गया था। पर क्या तुम उसके लिए मुझे क्षमा नहीं कर सकते।'

'क्षमा का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। तुम्हें केवल इतना समझ लेने की जरूरत है, कि पर-पुरुष या पर-स्त्री के प्रति आकर्षण रखना दाम्पत्य जीवन को नष्ट कर देता है। जिस क्षण तुम इस तथ्य को समझ लोगी, सब समस्या अपने आप हल हो जायगी।'

'मैंने इस तथ्य को भली भाँति समझ लिया है।'

'तो क्या अब सचमुच तुम्हारे हृदय में वीरेन्द्र के प्रति कोई भी असामान्य भाव नहीं है ?'

'नहीं है, बिलकुल नहीं है। मेरी तरफ देखो, तुम्हें क्या लगता है ?'

विनोद ने लता की ओर देखा। उसकी आँखों से आँसू झर रहे थे। वह विनोद से लिपट गई। आधे घण्टे तक दोनों इसी प्रकार लिपटे पड़े रहे। विनोद का सब उन्माद लता के आँसुओं के साथ बह गया। उसने लता को कस कर छाती के साथ लगा लिया, और उसके गाल पर हलका सा चपत लगाते हुए कहा—

'तुम्हारी यही सजा है, अब फिर कभी तो ऐसी गलती नहीं करोगी ?'

लता ने एक भी शब्द बोले बिना अपना सिर हिला दिया। विनोद ने कहा—

'कब तक इस तरह पड़ी रहोगी ? उठो, स्नान कर लो। अब मेरा मन बिलकुल शान्त है। मुझे क्षमा करना, रानी ! मैं भी कितना निष्ठुर हूँ। तुम्हारे साथ मैंने कितनी ज्यादती की है ?'

'नहीं। तुमने मेरे साथ कुछ भी ज्यादती नहीं की। मैं सचमुच

पर कभी-कभी विनोद की भाव भंगी को देख कर वह चिन्तित भी हो जाती थी। एक दिन उसने विनोद से पूछा—

'क्यों क्या बात है ? क्या तुम अब भी उमास हो ?'

'नहीं। पर क्या बताऊँ ? यह भी एक अद्भुत प्रकार की अनुभूति है। कभी-कभी वही विचार फिर से मन में उठने लगते हैं। अपनी प्रतिज्ञा मुझे स्मरण है। कितना यत्न करता हूँ,प्रसन्न रहूं। पर विवश हो जाता हूँ। ऐसा प्रतीत होता है, हृदय के क्षितिज पर एक बदली सी उठ रही है, जो क्षण भर में सारे मानस पटल को व्याप्त कर लेगी।'

'तुम्हें क्या अनुभव होता है।'

'रहने दो, तुम्हें व्यर्थ कष्ट होगा।'

'नहीं, कहो। तुम कितने कमजोर हो गये हो, चेहरा उतर गया है, मानो लम्बी बीमारी से उठे हो। तुम्हारी यह दशा देखकर मेरा चित्त उद्विग्न हो जाता है।'

'इसे जलन कहूँ या उन्माद ! अपने भाव को जताने के लिये कोई शब्द ही नहीं सूझता। शायद इसे अन्तर्दाह कहना अधिक उपयुक्त होगा।'

'क्या तुम्हारा हृदय हर समय जलता रहता है ?'

'हर समय नहीं। पर कभी-कभी, दिन रात में तीन चार बार हृदय में एक तूफान सा उठने लगता है। रानी,तुम्हें उस दिन हो क्या गया था?'

'कुछ भी तो नहीं। तुम तो फिर उसी प्रकार एक टक होकर शून्य की ओर देखने लग गये।'

'क्या कहूँ, यह अन्तर्दाह भी कितना दारुण है। जैसे राख के नीचे आग दबी रहती है, वैसे ही उस दिन की बात मेरे दिल में घर किये हुए है। अच्छा हो, एक बार यह आग पूरी तरह से धधक उठे। एक बार अच्छी तरह प्रज्वलित होकर यह शायद स्वयमेव बुझ जाए। मैं अब तक समझ नहीं पाया, कि वीरेन्द्र के प्रति तुम्हारे भाव का असली रूप क्या था। उसे प्रेम कहूँ,इसका साहस नहीं होता। पर उसकी उपेक्षा कर सकना भी तो मेरे लिये सम्भव नहीं।'
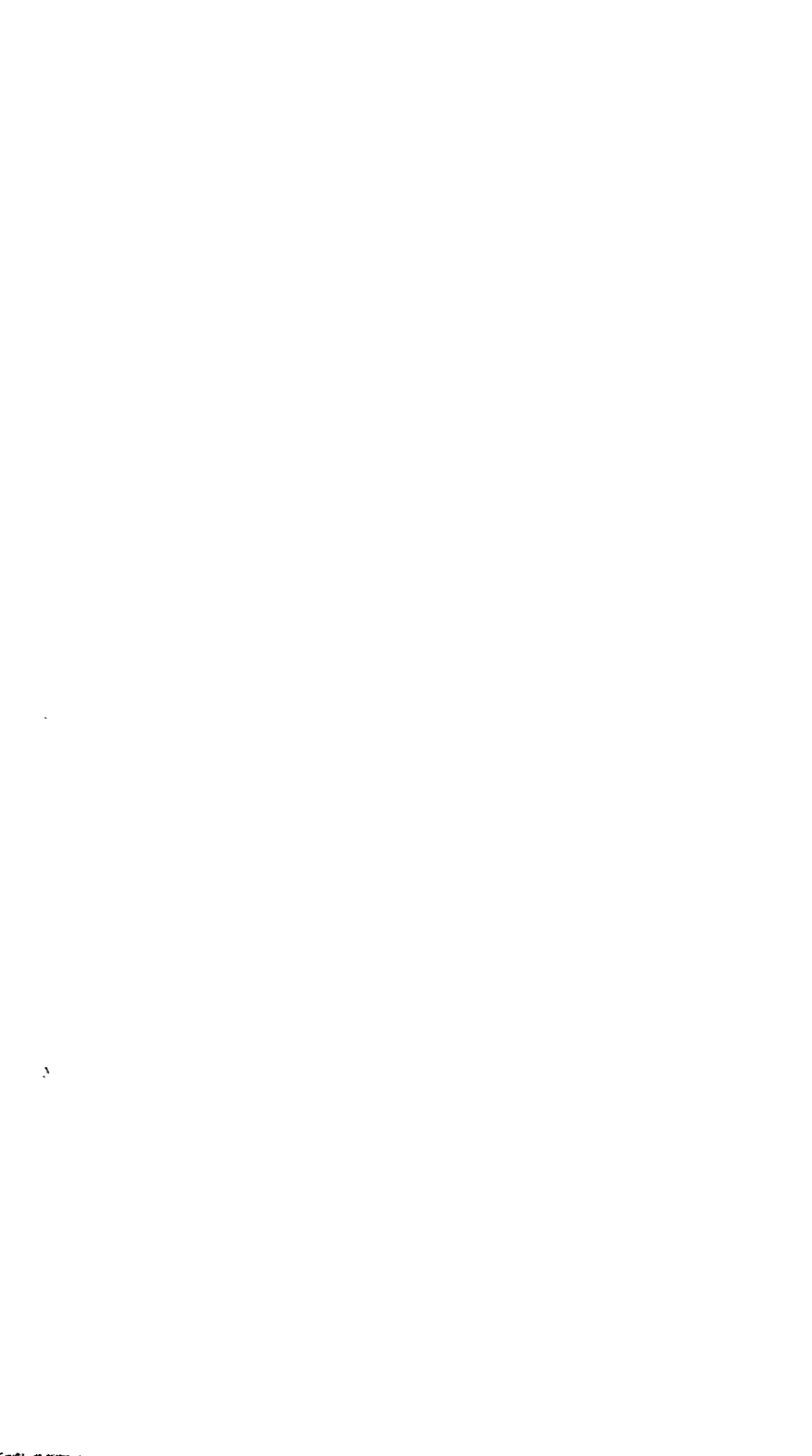
तो मुझे क्यों बुरा लगता ?'

'तुमने मेरे प्रश्न को टाल दिया है।'

'हाँ, मैं वीरेन्द्र के साथ अकेले में बातें करना चाहती थी। मैं जानती थी, तुम्हें उन बातों में कोई दिलचस्पी नहीं होगी। क्या तुमसे पृथक् मेरी कोई सत्ता ही नहीं है ? क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं है, कि किसी के साथ अकेली बैठकर उससे चार बातें कर सकूं ? तुम भलीभाँति जानते हो, मेरे पास जो कुछ भी है, वह सब तुम्हारा है। यह शरीर, यह मन, सब तुम्हारे अर्पण है। तुम्हें याद है,एक बार मैंने तुम्हें लिखा था, कि मेरे पास सोना चांदी हीरे जवाहरात आदि जो कुछ भी बहुमूल्य वस्तुएं हैं, वे सब तुम्हारे लिये हैं, केवल तुम्हारे लिये। पर यदि मैं किसी अन्य व्यक्ति को कभी कोई पैसा या कौड़ी दे दूं, तो उससे तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिये।'

'हाँ, तुमने मुझे एक बार यह बात लिखी थी। पर तब मैं इसका अभिप्राय नहीं समझ पाया था। मैं मानता हूँ, मैं इतना कंजूस हूँ, कि अपने घर की एक कौड़ी भी किसी और को देना पसन्द नहीं करता। मेरे पास जो कुछ है, वह सब तुम्हारा है, और तुम्हारे पास जो कुछ है, वह सब मेरा है। वस्तुतः, कोई भी ऐसी चीज नहीं है, जो केवल तुम्हारी या केवल मेरी हो। दाम्पत्य जीवन का यही मूल तत्त्व है। हम दोनों मिलकर किसी को अपने घर के हीरे जवाहरात तक भी दे सकते हैं। पर तुम से पृथक् हो कर मैं अपने घर की एक कौड़ी भी किसी और को देने का अधिकार नहीं रखता। इसी प्रकार मुझ से अलग होकर तुम किसी को एक पैसा भी नहीं दे सकती। विवाह भी एक अजीब सम्बन्ध है। उसमें पति-पत्नी मिलकर एक हो जाते हैं, उनमें पृथक्त्व रहता ही नहीं। मैं मानता हूँ, तुम्हारी रुचि मुझसे भिन्न हो सकती है। तुम्हारी कतिपय इच्छायें ऐसी हो सकती हैं, जो मुझसे भिन्न हों। खान-पान, रहन-सहन, आमोद-प्रमोद आदि कितने ही मामलों में हम दोनों की रुचि एक दूसरे से भिन्न हो सकती है। इससे दाम्पत्य जीवन पर कोई विशेष असर नहीं पड़ता। पर यदि पति या पत्नी

भी नहीं कर सकती।'

'पर वीरेन्द्र के प्रति मेरे भाव को तुमने विलकुल गलत समझा है। मेरा नैतिकता का आदर्श वहुत ऊँचा है। तुम्हारे सिवा मैं किसी अन्य पुरुष को प्रेम नहीं कर सक्ती।'

'यह मैं स्वीकार करता हूँ, कि तुम नैतिकता को वहुत महत्त्व देती हो। पर तुम्हारी दृष्टि में नैतिकता का स्वरूप यह है कि किसी पर-पुरुष के साथ शारीरिक सम्वन्व स्थापित न किया जाए। यह ठीक है या नहीं?'

'हाँ, यह ठीक है। किसी अन्य पुरुष का स्पर्श भी मुझे सह्य नहीं है। यदि कोई अन्य पुरुष मेरे समीप आकर वैठ जाए, तो वह भी मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'पर तुम अन्य पुरुष से मैत्री करने में कोई हानि नहीं मानती। मानसिक आकर्षण को तुम अनुचित नहीं समझती। कहो, ठीक है या नहीं?'

'क्या यह स्वभाविक नहीं है कि हम दूसरों के प्रति भी मानसिक आकर्षण अनुभव करें। एक पुरुष कवि है, गायक है, कलाकार है। कोई स्त्री उसके सम्पर्क में आती है, उसके गुणों के प्रति आकृष्ट होती है, उसके सान्निध्य में आने की इच्छा रखती है। क्या तुम इसे अनुचित कहोगे?'

'मैं उसे तव तक अनुचित नहीं कहूँगा, जव तक कि स्त्री उस पुरुष के साथ ऐसा सम्वन्ध विकसित न करले, जिसमें वह अपने पति को शरीक न करना चाहे। हो सकता है कि उसके पति को कविता, संगीत या कला से जरा भी प्रेम न हो। जव पत्नी कवि से कविता सुन रही हो, तो पति को नींद आने लग जाए। पर पत्नी की यह इच्छा अवश्य होनी चाहिये, कि उसका पति भी काव्य रस का आस्वाद ले। यदि उसे उसमें रस नहीं आता, तो दूसरी वात है। पर यदि स्त्री का कवि के प्रति आकर्षण इतना वढ़ जाए, कि वह अपने पति से वच कर उससे सम्पर्क स्थापित करने

लगे, तो मैं उसे कभी उचित नहीं समझूंगा।'

'मैं इस सिद्धान्त को स्वीकार करती हूँ। पर वीरेन्द्र के साथ मेरा कोई भी ऐसा सम्बन्ध नहीं था, जिसमें तुम्हारा शरीक होना मैं न चाहती।'

'वीरेन्द्र की बात को जाने दो। जो होगया, सो होगया। तुमने भूल की, या मैंने तुम्हें गलत समझा, इस बात को जाने दो। यदि हमारे विचार भविष्य के लिये भी एक हो जाएं, तो मुझे बहुत सन्तोष होगा। दाम्पत्य जीवन के सुख व शान्ति के लिये यह आवश्यक है, कि पति-पत्नी का मन एक हो। और बातों को जाने दो, जहाँ तक उनके पारस्परिक दाम्पत्य-सम्बन्ध का प्रश्न है, कम से कम उसके विषय में तो उनके विचार अवश्य ही एक सदृश होने चाहियें।'

'हां, यह बात ठीक है, इसे मैं स्वीकार करती हूं।'

'हमारे जीवन में जो यह दारुण काण्ड उपस्थित हुआ, उसका कारण यही था कि दाम्पत्य सम्बन्ध के विषय में हम दोनों में मानसिक ऐक्य नहीं था। तुम समझती थी, कि स्त्री किसी अन्य पुरुष के साथ भी घनिष्ठता व मैत्री रख सकती है। मैं समझता था, नहीं। सामाजिक जीवन में मनुष्य को मर्यादा का अनुसरण करना पड़ता है। परिवार भी सामाजिक जीवन का एक अंग है। उसके लिये भी एक मर्यादा की आवश्यकता है। पर इस मर्यादा का स्वरूप क्या हो, इस विषय में हम दोनों में एक मत नहीं है। तुम समझती हो, मैं अन्य स्त्रियों से और तुम अन्य पुरुषों के साथ भी सान्निध्य रख सकते हैं, उनके साथ घनिष्ठता रख सकते हैं। तुम्हें इस सान्निध्य में रस की अनुभूति होती है, और तुम यह भी चाहती हो, कि मुझे भी इस सुमधुर रस का आस्वाद मिले।'

'पर मेरी दृष्टि में इस सान्निध्य की जो कल्पना है, उसमें जरा भी कलुषता नहीं है। किसी अन्य पुरुष के साथ शारीरिक सान्निध्य की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती।'

'यह मैं मानता हूँ। पर मेरे विचार में मन और शरीर सर्वथा

पृथक् सत्तायें नहीं हैं। जब मानसिक आकर्षण या मन का सान्निध्य बहुत चढ़ जाता है, तो शारीरिक सान्निध्य हो जाने में भी देर नहीं लगती। ये एक ही रास्ते की दो मंजिलें हैं। पहला पड़ाव मानसिक आकर्षण है, और अगला पड़ाव शारीरिक सम्पर्क। दोनों पड़ावों में अधिक अन्तर भी नहीं है।'

'तुम कैसी बातें करते हो? क्या यह सम्भव नहीं है, कि कोई पुरुष किसी अन्य स्त्री के प्रति मानसिक आकर्षण रख सके, और नैतिकता के आदर्श के कारण उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने से दूर रहे।'

'संसार में असम्भव कुछ नहीं है। पर यह मत भूलो, कि मानसिक आकर्षण का ही एक नाम प्रणय या प्रेम है, और प्रेम की अभिव्यक्ति केवल मन तक ही सीमित नहीं रहती। जब कोई दो व्यक्ति एक दूसरे के प्रति आकर्षण अनुभव करते हैं, तो वे शारीरिक दृष्टि से भी एक हो जाने के लिये प्रवृत्त हो जाते हैं।'

'पर शारीरिक सम्बन्ध तो विना प्रेम के भी हो जाता है।'

'हां, यह ठीक है। केवल कामवासना से प्रेरित होकर भी मनुष्य शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है। लोग वेश्याओं के घर जाते हैं। क्या प्रेम के कारण? नहीं। वे केवल अपनी कामवासना की तृप्ति के लिये ही बाजार की खाक छानते फिरते हैं। तुम शारीरिक सान्निध्य को नैतिकता के विरुद्ध समझती हो। तुम्हारी दृष्टि में वह बहुत बड़ा पाप है। पर मेरे विचार में मानसिक आकर्षण शारीरिक सान्निध्य की अपेक्षा किसी भी प्रकार कम अनुचित नहीं है। बुरा मत मानना, पर मैं सच कहता हूं। यदि मैं देखता कि क्षणिक कामवासना को तृप्त करने के लिये तुमसे कभी कोई भयंकर भूल होगई, तो उससे मुझे इतना उद्वेग न होता, जितना कि इस बात से हुआ है।'

'तुम भी कैसी बातें करते हो? मेरे विषय में क्या तुम कभी यह सोच भी सकते हो?'

'पर तुमने तो एक ऐसी बात कह दी है, जो मेरी दृष्टि में शारीरिक

सान्निध्य की अपेक्षा भी अधिक बुरी है। कामवासना से अभिभूत होकर मनुष्य कभी-कभी भूल कर बैठता है, पर उसका प्रभाव स्थायी नहीं होता। उससे मनुष्य अपने पारिवारिक कर्तव्यों से सदा के लिये विमुख नहीं हो जाता। पर यदि मैं किसी अन्य स्त्री के प्रति असामान्य आकर्षण अनुभव करने लगूं, या तुम किसी परपुरुष के प्रति असामान्य मानसिक सान्निध्य अनुभव करने लगो, तो हमारा दाम्पत्य जीवन नष्ट हो जायगा। पति अपनी पत्नी के लिये सब प्रकार के कष्ट उठाता है, पत्नी अपने पति के लिये बड़ी से बड़ी कुर्बानी करने के लिये तैयार रहती है। क्यों ? क्योंकि वे अपने में अभेद मानते हैं। वे समझते हैं, हम अविकल रूप से एक दूसरे के हैं। हमारे बीच में अन्य कोई व्यक्ति नहीं है। यदि किसी भी कारण उनकी यह अनुभूति नष्ट हो जाय, तो दाम्पत्य जीवन की जड़ ही उखड़ जायगी।'

'पर क्या तुम यह नहीं समझते, कि इस बीसवीं सदी में जब स्त्री और पुरुष दोनों शिक्षित हों, दोनों अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता को महत्त्व देते हों, दाम्पत्य जीवन का यह स्वरूप क्रियात्मक नहीं है। इसे स्वीकार कर लेने पर पति और पत्नी की एक दूसरे से पृथक् स्वतन्त्र सत्ता रहती ही नहीं है। पति का पत्नी पर इस ढंग का एकाधिकार या पत्नी का पति पर इस प्रकार का एकाधिपत्य क्या वर्तमान परिस्थितियों में सम्भव है ?'

'सर्वथा सम्भव नहीं है, इसीलिये आधुनिक समाज में तलाक को वाञ्छनीय माना जाता है। यह स्वाभाविक है, कि कोई स्त्री अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के प्रति आकर्षण अनुभव करने लगे; या कोई पुरुष किसी अन्य स्त्री के प्रति आकृष्ट हो जाए। पर इस दशा में उसे दो विकल्पों में से एक को चुनना होगा। या तो उस आकर्षण का अन्त कर दे, और या तलाक द्वारा अपने दाम्पत्य जीवन की इतिश्री कर दे। उसे एक नई चीज को प्राप्त करने के लिये कीमत अदा करनी होगी, और वह कीमत होगी अपने पुराने साथी से सम्बन्ध विच्छेद।'

'पर बच्चों की समस्या भी तो है। स्त्री अपने पति को छोड़ सकती है, पर बच्चों को छोड़ सकना उसके लिये इतना सुगम नहीं होता।'

'पर अपने प्रेम या आकर्षण के पीछे उसे अपने बच्चों को भी कुर्बान करना पड़ेगा। यदि बच्चे पिता के साथ रहें, तो भी उसे उनसे बिछुड़ना होगा, और यदि उन्हें वह अपने साथ ले गई, तो भी वह उनके प्रति अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकेगी। बच्चों को माँ और बाप दोनों के प्रेम की आवश्यकता होती है।'

'यह कीमत तो बहुत मँहगी है।'

'पर क्या प्रेम बहुमूल्य नहीं है ? प्रेम कितना मधुर होता है, कितना आकर्षक। इतनी बहुमूल्य वस्तु की उपलब्धि के लिये यह कीमत तो देनी ही होगी।'

'पर क्या यह सम्भव नहीं है, कि पुरुष व स्त्री अपने दाम्पत्य जीवन को कायम रखते हुए भी किसी अन्य स्त्री या पुरुष के साथ घनिष्ठता व मैत्री रख सकें।'

'यह असम्भव है, क्योंकि इससे जो भयंकर अन्तर्दाह उत्पन्न होता है, वह बहुत ही दारुण है। मुझे उसकी अनुभूति प्राप्त हो चुकी है। वस्तुतः, उससे अधिक दारुण सन्ताप और कोई है ही नहीं।'

'इसका अभिप्राय यह हुआ, कि दाम्पत्य जीवन के लिए मनुष्य को किसी अन्य के प्रति घनिष्ठता का भाव रखना ही नहीं चाहिये। क्या तुम इसे एक प्रकार की दासता नहीं समझते ?'

'प्रत्येक सामाजिक सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार की मर्यादा की अपेक्षा रखता है। इस मर्यादा को यदि तुम दासता कहना चाहो, तो मुझे उसमें कोई एतराज नहीं है। हाँ, मर्यादा के स्वरूप में समय-समय पर अन्तर आता रहता है। एक समय था, जब दाम्पत्य जीवन में स्त्री परदे में रहा करती थी। यदि कोई पर-पुरुष उसकी आवाज भी सुन ले, उसके मुख को देख ले, उसके हाथ को छू ले, तो इसे अनुचित माना जाता था। उस युग में मर्यादा का यही स्वरूप था। पर अब वह समय बीत चुका

है। तुम अपने को ही लो, कितने पुरुषों के साथ तुम बातें करती हो, कितनों के साथ तुम हाथ मिलाती हो, परदा करना या सिर ढकना तो तुमने कभी सीखा ही नहीं। क्या मैंने इसे कभी अनुचित समझा ?'

'तो तुम एक कदम और आगे क्यों नहीं बढ़ सकते ? यदि मैं किसी पर-पुरुष के साथ मैत्री रखूं, तो तुम्हें वह क्यों बुरा लगता है। मैं अन्य पुरुषों के साथ मैत्री अवश्य कर सकती हूँ, पर उनकी बन तो नहीं सकती। मैं रहूंगी तो तुम्हारी ही।'

'मैं पूछता हूँ, तुम इससे भी एक कदम और आगे क्यों नहीं बढ़ सकती ? जब मानसिक आकर्षण में तुम्हें कोई दोष नजर नहीं आता, तो शारीरिक आकर्षण में ही तुम क्यों इतना बड़ा पाप समझती हो ?'

'तो क्या तुम दाम्पत्य जीवन में किसी भी मर्यादा की आवश्यकता नहीं समझते ?'

'क्यों नहीं समझता ? मर्यादा के बिना कोई सम्बन्ध सम्भव ही नहीं है। पर मर्यादा का स्वरूप सत्य नित्य व सनातन नहीं है। उसमें परिवर्तन आता रहता है। तुमने बौद्धों के वज्रयान और हिन्दुओं के वाममार्ग सम्प्रदायों का नाम सुना होगा। वज्रयानी लोग किसी भी कार्य को अकर्तव्य या अकरणीय नहीं मानते थे। वे कहते थे, साधना के दो ढंग हैं, या तो हम विधि निषेध द्वारा अपने मार्ग को अत्यन्त संकीर्ण बना लें, और या विधि निषेध की सर्वथा उपेक्षा कर जो चाहें सो करें। उन्हें दूसरा ढंग पसन्द था। साधक इन्द्रिय सुख को हेय मानकर उससे बचने का भी प्रयत्न कर सकता है, और यह भी समझ सकता है, कि इन्द्रियों की वासना एक स्वाभाविक वृत्ति है। मनुष्य उसे क्यों कोई महत्त्व दे। साधक के लिये खाद्य अखाद्य और भोग्य अभोग्य का कोई भी भेद नहीं है। तभी वह इन्द्रिय सुख में अलिप्त हुए बिना रह सकता है। इसीलिए वज्रयानी लोग कहते थे, सब स्त्रियों को अपने भोग की वस्तु मानो, सब पदार्थों को खाद्य समझो। मन या इन्द्रियों की वासना को जरा भी महत्त्व न दो। वे जिधर भी ले जाएं, उधर ही आंख मीच कर चलते जाओ। पुरुषों के लिए सब स्त्रियां

गम्य हैं, और स्त्रियों के लिए सव पुरुष गम्य हैं। विचार का यह भी एक ढंग है, और इसमें सत्य का अंश भी अवश्य है। इसके विपरीत अनेक विचारकों ने इन्द्रिय जय का उपदेश दिया था। मन और इन्द्रियों पर विजय करके ही ममुष्य मर्यादा में रह सकता है, यह चाणक्य व अन्य बहुत से प्राचीन भारतीय आचार्यों का मन्तव्य था। पर इन्द्रिय जय उतना सुगम नहीं है, जितना कि इन्द्रियों को खुली छूट दे देना। मैं स्वीकार करता हूं, कि वज्रयानी लोग भी सर्वथा भूल में नहीं थे। आधुनिक युग की प्रवृत्तियाँ हमें उसी ओर ले जा रही हैं। इसी कारण विवाह बन्धन का वर्तमान रूप भी शायद देर तक कायम नहीं रह सकेगा। पर हमें साफ-साफ तय कर लेना चाहिये, कि हमें किस मार्ग का अनुसरण करना है। यदि तुम वज्र-यानी मार्ग को पसन्द करो, तो मुझे उसमें कोई एतराज नहीं है। पर हम दोनों का मार्ग एक होना चाहिये। जब हम मर्यादा को तोड़ने का निश्चय करते हैं, तो यह न सोचो, कि इस ढंग की अमर्यादा उचित है, और उस ढंग की अनुचित। मुझे तुम्हारी अमर्यादा पसन्द नहीं है, और शायद तुम्हें मेरी अमर्यादा पसन्द न आए।'

'पर मैंने तो मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया।'

'ठीक है, अपनी दृष्टि में तुमने मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया, पर मेरे विचार में किया है। तुम शारीरिक आकर्षण को अनुचित समझती हो, और मैं मानसिक आकर्षण को शारीरिक सान्निध्य की अपेक्षा भी अधिक बुरा मानता हूं। यह अत्यन्त आवश्यक है, कि हम दोनों इस विषय में एकमत हो जाएँ। हम वज्रयानी मार्ग को भी अपना सकते हैं, पर हमें सोच समझ कर किसी निश्चित परिणाम पर पहुँच जाना चाहिए। उस दशा में तुम्हें वह सब कुछ करने का अधिकार होगा, जिसे तुम उचित समझो। यही अधिकार मुझे भी प्राप्त होगा। तब हम इस विषय पर बहस नहीं करेंगे, कि तुम्हारा या मेरा कार्य उचित है, या अनुचित है। हम दोनों स्वतन्त्र होंगे, पूर्णतया स्वतन्त्र। और स्वतन्त्र रहते हुए भी हम पति-पत्नी सम्बन्ध को कायम रख सकेंगे।'

'तुम जानते हो, मैं किसी पर पुरुष के प्रति शारीरिक आकर्षण नहीं रख सकती। यदि तुम किसी अन्य स्त्री के साथ इस ढंग का सम्बन्ध रखना चाहते हो, तो मुझे कोई एतराज नहीं है। तुम अपनी इच्छा पूर्ण कर लो।'

'देखो, इस मामले पर इस ढंग से विचार न करो। हमारे सामने दो मार्ग हैं, या तो हम किस अन्य व्यक्ति के प्रति मानसिक व शारीरिक आकर्षण रखें ही नहीं, हम विधि निषेध के मार्ग पर चलें; और या ? इस विषय में हम पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाएँ। बोलो, तुम्हें कौन सा मार्ग पसन्द है ? सच-सच कहना।'

'सच बात तो यह है, कि अभी तक मुझे यह समझ में ही नहीं आया, कि किसी अन्य पुरुष के प्रति मैत्री की भावना रखने में क्या अनौचित्य है। यदि तुम मानसिक आकर्षण और शारीरिक सान्निध्य को एक ही बात समझते हो, तो मुझे दूसरा मार्ग स्वीकार है। पर यह विश्वास रखो, कि मैं कभी किसी पर-पुरुष का स्पर्श तक भी नहीं करूँगी। हाँ, यदि तुम किसी के प्रति शारीरिक आकर्षण अनुभव करो, तो मैं तुम्हारे मार्ग में बाधक नहीं बनूंगी।'

'अच्छा, तो यही सही। मैं क्या करूँगा और क्या नहीं, इस विषय पर अभी तुम्हें विचार करने की आवश्यकता नहीं है। पर अब मेरा मन शान्त है। हम एक निश्चित परिणाम पर पहुँच गये हैं, हमने एक नई मर्यादा निश्चित कर ली है। अब तुम किसी भी अन्य पुरुष से मैत्री कर सकती हो, उसके साथ बैठ कर रात भर बातें कर सकती हो। इससे आगे भी बढ़ सकती हो, मुझे जरा भी दुख नहीं होगा, क्योंकि मैं जानता हूँ, कि अब मैं भी यह सब करने के लिए स्वतन्त्र हूँ।'

बातें करते-करते बहुत देर हो गई थी। लता ने कहा—'चलो, कहीं घूम आएँ। गरमी के कारण दिन में तो कहीं निकलना होता नहीं। साँझ हो गई है, चलो जरा पार्क की सैर कर आएँ।'

लता और विनोद सैर करने चले गये। वे दोनों शान्त थे, विनोद

का मन कुछ आश्वस्त था। पार्क में पड़ी एक बेञ्च पर बैठ कर लता ने कहा—

'अच्छा है, हम दोनों विलायत जा रहे हैं। वीरेन्द्र वहां की नाइट क्लबों का जिक्र करता था। तुम भी डान्स सीख लो। इस जीवन का भी कुछ अनुभव मिल जायगा।'

'फिलोसफी का अनुशीलन करूं या डान्स सीखूं। मुझे तो इसका जरा भी शौक नहीं है। हाँ, तुम सीख लो। यूनिवर्सिटियों की कान्फरेन्स में तुम्हें क्या अच्छा लगेगा। मैं तो उधर व्यग्र रहूंगा, डान्स सीख लेने पर तुम्हारा कुछ मनोरंजन ही हो जायगा।'

'डान्स सीखने की मेरी इच्छा तो बहुत होती है। पर यदि तुम सीखोगे, तभी मैं भी सीखूंगी।'

'इसकी क्या जरूरत है। अब हम दोनों स्वतन्त्र जो हैं।'

'स्वतन्त्र हैं या नहीं, यह तो तुम्हीं जानो। पर मैं कोई ऐसा कार्य नहीं करूंगी, जिसमें तुम मेरे साथ शरीक न हो। तुम इस तरह क्या देख रहे हो ?'

'कुछ नहीं। सोचा करता था, भारत का जो अधःपतन हुआ, उसका कारण वज्रयान और वाममार्ग सम्प्रदायों का प्रचार था। किसी समय आचार्य चाणक्य ने इन्द्रियजय का उपदेश किया था। तभी भारत में हिमालय से समुद्र पर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण विशाल मौर्य साम्राज्य का विकास सम्भव हुआ था। भारतीय इतिहास का वह सबसे गौरवशाली युग था। सातवीं सदी में इस देश में वज्रयान का विकास हुआ। तभी से इसका अधःपतन शुरू हो गया। नेपोलियन के समय में फ्रांस ने कितनी उन्नति की थी। पर उन्नीसवीं सदी में वह देश भोगविलास में ग्रस्त हो गया। तभी उसे जर्मनी से नीचा देखना पड़ा। आज हमारी आँखों के सामने ही ब्रिटेन का पतन हो रहा है, और चीन का उत्कर्ष। मैं सोचा करता था, पाश्चात्य लोग भी आज वज्रयान का अनुसरण कर रहे हैं। इसीलिये उनका अपकर्ष हो रहा है। और चीन ? वहाँ इन्द्रियजय के सिद्धान्त

का प्रयोग हो रहा है। वहाँ के लोग भोग-विलास को अपने जीवन में अधिक स्थान नहीं देते। वहाँ की स्त्रियाँ शरीर के प्रसाधन को उतना महत्त्व नहीं देतीं, जितना कि श्रम करने को। तभी चीन की उन्नति हो रही है। पर आज हमने अपने पारिवारिक जीवन में वज्रयान को अपनाने का निश्चय किया है। कैसी विडम्बना है। आज वज्रगुरुओं की विजय हुई है, और चाणक्य जैसे आचार्यों की पराजय। पता नहीं, यह मार्ग हमें कहाँ ले जायगा, विनाश के गर्त में या उन्नति के शिखर पर।'

'पर इसकी आवश्यकता क्या है? क्यों न हम इन्द्रियजय और मर्यादा के मार्ग का अनुसरण करें।'

'क्या तुम सचमुच मेरे मार्ग पर चल सकोगी?'

'क्यों नहीं? हमारे विवाह को हुए बारह साल बीत चुके। क्या आज तक मैंने कभी मर्यादा का उल्लंघन किया? एक बार भूल मुझसे हो गई, तुम उसके लिये मुझे क्षमा क्यों नहीं कर सकते?'

'क्या तुम सच्चे हृदय से अपनी भूल को स्वीकार करती हो?'

'हाँ, करती हूँ।'

'कहीं मुझे खुश करने के लिये ही तो यह बात नहीं कह रही हो?'

'नहीं। मैं सचमुच अनुभव करती हूँ, कि उस दिन मैं गलती पर थी। मुझे किसी भी अन्य पुरुष के साथ ऐसा सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये, जिसके कारण तुम्हारे हृदय को क्लेश पहुँचे। तुम्हारे लिये मैं बड़ी से बड़ी कुर्बानी कर सकती हूँ। किसी के साथ मैत्री तो चीज ही क्या है?'

'तुम मुझ पर दया न करो। मेरे कारण अपने को जीवन के मधुर रस से वञ्चित न करो।'

'नहीं, केवल तुम्हारे कारण ही नहीं। मैं सोचती हूँ, उस दिन मुझे न जाने क्या हो गया था। किसी अन्य व्यक्ति से ऐसा सम्बन्ध रखना उचित नहीं है, जिससे मनुष्य अपने कर्तव्यों को भूल जाए। तुम्हें सिर दर्द से तड़पता छोड़ कर वीरेन्द्र के साथ बातें करते रहना सचमुच अनुचित था। मुझ पर विश्वास करो, भविष्य में मैं कभी इस प्रकार अपने

विवेक को नष्ट नहीं होने दूँगी।'

'वज्रयानी मार्ग का अनुसरण करने के लिये जो निश्चय हमने किया था, फिर उसका क्या होगा ?'

'वज्रयान की हमें आवश्यकता नहीं है। इन्द्रियजय और मर्यादा पालन का मार्ग ही हमारे लिये श्रेयस्कर है।'

इसी प्रकार बातें करते-करते रात हो गई। आसमान में तारे निकल आए। विनोद ने कहा—

'इच्छा होती है, आज की सारी रात इसी प्रकार बातें करते-करते बिता दें। तुम क्या जानो, आज मेरा मन कितना प्रसन्न है। सन्ताप और विषाद की जो घटा मेरे मानस पटल पर घिर आई थी, वह आज छिन्न भिन्न हो गई है। ऐसा अनुभव होता है, एक बहुमूल्य हीरा खो गया था, आज वह फिर मिल गया है।'

'नहीं, यह हीरा खो नहीं गया था। वह तुम्हारी जेब में ही था। कहावत है, बगल में बच्चा, और शहर में ढिंढोरा। मैं तुम्हारे पास ही थी, कहीं चली नहीं गई थी।'

'यह मत भूलो, तुम्हारे बिना मेरा यह जीवन नष्ट हो जायगा। तुम मेरी सम्बल हो। कहीं यह सम्बल मुझ से छिन न जाए।'

'विश्वास रखो, यह सम्बल कभी तुमसे नहीं छिनेगा।'

रात के बारह बजे लता और विनोद घर वापस आए। रास्ते में विनोद ने कहा—

'विदेश यात्रा की तुमने सब तैयारी कर ली है न ?'

'अपनी समझ के अनुसार तो सब सामान तैयार कर लिया है।'

'क्या ही अच्छा होता, यदि वीरेन्द्र दो चार दिन के लिये मेरठ आ जाता। उसे यूरोप का बहुत अनुभव है। उससे कितनी ही उपयोगी बातें मालूम हो जातीं।

'उसका नाम न लो। अब वह हमारे जीवन में कभी न आए।'

(६)

जहाज पर लता और विनोद के लिये केबिन रिजर्व हो गया। १२ जून को उन्हें बम्बई से लण्डन के लिये प्रस्थान करना था। उनके पासपोर्ट भी बनकर आ गये थे। यूरोप यात्रा की तैयारी में उन्हें बहुत समय लगाना पड़ता था। विनोद का मन अब शान्त था। उसके हृदय में जो भयंकर तूफान उठा था, वह अब समाप्त हो चुका था। एक दिन जब लता और विनोद बैठे हुए बातों में लगे थे, रामू आया और एक प्लेट में डाक रख कर चला गया। एक चिट्ठी वीरेन्द्र की थी, जिसमें उसने लिखा था—'भाई विनोद ! जब से मैं मेरठ से आया, तुमने तो एक भी पत्र नहीं लिखा। क्या बात है ? आज अखबारों में यह पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई कि तुम कामनवेल्थ यूनिवर्सिटीज़ कान्फरेन्स में शामिल होने के लिये लण्डन जा रहे हो। मेरा यूरोप जाना टलता जा रहा है। आया तो इस इरादे से था कि महीना बीस रोज भारत रह कर वापस लौट जाऊँगा। पर पाँच महीने हो गये। पता नहीं, कितने दिन और यहाँ ठहरना पड़े। हां, भाभी को अपने साथ जरूर यूरोप ले जाना। उनकी विदेश यात्रा की प्रबल इच्छा है। यूरोप जाकर उन्हें बहुत प्रसन्नता होगी। मौका लगेगा, तो यूरोप में तुम दोनों से मिलूंगा। हां, तुम विक्टोरिया जहाज से जा रहे हो न ? वही तो १२ जून को बम्बई से जायगा। मैं कोशिश करूँगा कि बम्बई में तुमसे मिलूं। भाभी को सप्रेम सस्नेह प्रणाम कहना। उन्हें तो मेरी क्या याद आती होगी। शायद मुझे एक दिन के लिये दिल्ली आना पड़े। आया तो, अवश्य तुम से मिलूंगा।'

पत्र पढ़कर विनोद ने उसे लता के हाथ में दे दिया। वीरेन्द्र के पत्र को पढ़ते हुए लता का हाथ कुछ काँप सा गया। उसने कहा—'वीरेन्द्र भी हमारे जीवन में एक अभिशाप बन कर आया है। हम १२ जून को ही गाड़ी से बम्बई पहुँचेंगे। वहाँ हमें काम भी क्या है ?'

'इसकी क्या जरूरत है ? तुमने कभी बम्बई देखा भी तो नहीं है। अच्छा होगा, हम दो दिन पहले ही वहाँ पहुँच जाएँ। एलीफेन्टा की गुफाएँ

कला की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट हैं। वहाँ हम जरूर जाएँगे।'

दिन बीतते गये। मई का अन्त आ गया। लता बहुत प्रसन्न थी, वह एक-एक दिन गिन रही थी। ९ जून को मेरठ से चलना था। सब बातें तय हो चुकी थीं। विनोद अब भी कभी-कभी उदास हो जाता था। एक दिन लता ने उससे पूछा—

'क्या बात है ? तुम तो अब भी उदास हो।'

'नहीं, उदास नहीं हूँ। पर हाँ, यह अनुभूति भी अद्भुत है। तूफान शान्त हो चुका है,पर कभी-कभी हल्की सी लहर उठ ही जाती है। तुम उसकी चिन्ता न करो। समय से बढ़ कर और कोई औषधि नहीं होती। हाँ, याद आया। आज मुझे एक बहुत जरूरी काम है। इन्कम टैक्स आफिस में जाकर सर्टिफिकेट लेना है।'

'यह सर्टिफिकेट कैसा ?'

'कि मैंने इन्कम टैक्स अदा कर दिया है, और इस खाते मेरी कोई देनदारी शेष नहीं है। विदेश यात्रा कोई मजाक नहीं है, कितने ही सर्टिफिकेट लेने पड़ते हैं।'

'तुम कब तक लौट आओगे ?'

'सरकारी दफ्तरों में देर लग ही जाती है। अब एक बजा है, जल्दी भोजन से निबट लें। दो बजे इन्कम टैक्स आफिस में जा बैठूंगा। कोशिश करूँगा, जल्दी ही काम निबट जाए। पर देर भी लग सकती है। पाँच बजे तक तो लौट ही आऊँगा।'

भोजन खाकर विनोद इन्कम टैक्स आफिस चला गया। गरमी के दिन थे, लता बिस्तर पर लेट गई। कुछ देर बाद उसकी आँख लग गई। अभी उसे सोये हुए अधिक देर नहीं हुई थी कि रामू ने धीरे से दरवाजा खटखटाया और कहा—

'साहब आये हैं ?'

लता की नींद खुल गई थी। उसने आँखें मलते हुए कहा—'कौन साहब ?'

चल जायगा ।'

'नहीं, आपके भाई साहब इन चीजों से परहेज नहीं करते । बीयर घर में ही मौजूद है, उसे कहीं बाहर से नहीं मंगाना होगा । हां, बरफ मंगा लेती हूं ।'

रामू बरफ ले आया, और उसने बीयर की बोतल मेज पर लाकर रख दी । दो गिलासों में बीयर डालकर लता ने कहा—

'आप भी क्या सोचते होंगे । सिगरेट तो पीती ही थी, शराब भी पीने लगी । यह मत समझिये, कि भारत की सुशिक्षित स्त्रियां आधुनिकता में पाश्चात्य नारियों से किसी भी प्रकार कम हैं । पर मुझे इन चीजों की आदत नहीं है । शेखर साहब कई बार काम करते-करते बहुत थक जाते हैं, तब वे थोड़ा-बहुत सुरापान कर लेते हैं । तब मुझे भी उनका साथ देना पड़ता है । मेरे बिना उन्हें कोई भी चीज अच्छी भी नहीं लगती ।'

धीरेन्द्र ने दो मिनट में सारा गिलास खाली कर दिया, और कहा—

'अब कुछ चैन पड़ी है । ओह, कितनी भयंकर गर्मी है ।'

'एक बोतल और ले आऊं । आप बहुत थके हुए हैं । पीने वालों के लिये तो बीयर की एक बोतल भी काफी नहीं होगी । पूरी बोतल पीकर आपकी थकान मिट जायगी । तब आप कुछ देर विश्राम कर लीजियेगा । आपके भाई साहब भी अब लौटते ही होंगे ।'

'बैठने के लिये तो मैं नहीं आया हूं, भाभी ! पता नहीं, फिर कब आपसे मिलना हो ।'

लता उठ कर गई, और बीयर की दूसरी बोतल ले आई । बीयर को धीरेन्द्र के गिलास में डालते हुए उसने कहा—

'पहले मुझे बीयर बड़ी बदजायका लगती थी, कड़वी-कड़वी सी होती है । पर अब तो मुझे इसका स्वाद अच्छा लगने लगा है ।'

'तो आप भी एक गिलास और लीजिये न ?'

यह कह कर उसने स्वयं लता का गिलास बीयर से भर दिया । दो

गिलास पीकर लता के मन में स्फूर्ति उत्पन्न होगई। उसने निश्चय किया हुआ था कि वीरेन्द्र के साथ अब कभी अकेले में नहीं बैठेगी। कोई न कोई बहाना बना के उठ जायगी, और विनोद के लौटने तक उसके पास नहीं आयगी। पर बीअर के प्रभाव के कारण उसे अपने इस निश्चय का ध्यान नहीं रहा, और सिगरेट जलाकर वह उससे बातें करने लगी।

'मैं तो समझती थी कि अब आपसे यूरोप में ही भेंट होगी। आप इस प्रकार अकस्मात् मेरठ आ जाएंगे, इसकी स्वप्न में भी सम्भावना नहीं थी। वे आपसे मिलने के लिये बहुत उत्सुक हैं। यूरोप के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। आपसे मिलकर वह बहुत खुश होंगे।'

'और आप ?'

'मेरी बात जाने दीजिये। हां, अब आपका क्या प्रोग्राम है ?'

'आपसे मिलने के लिये ही यहां आया हूं। मेरठ में और कोई काम नहीं है। सांझ को दिल्ली लौट जाने का विचार है। टैक्सी में जाने से दो घण्टे से अधिक समय तो लगेगा नहीं। रात को आठ बजे चल कर साढ़े नौ बजे तक दिल्ली पहुँच जाऊंगा। अभी समय काफी है। सिनेमा का एक शो क्यों न देख लें। नावल्टी में 'ह्वाइट क्लिफस आफ डोवर' फिल्म चल रही है। बड़ी अच्छी फिल्म है। एक ऐसी स्त्री का चित्रण किया गया है, जिसका पति १९१४-१८ के महायुद्ध में मारा गया, और जिसका एकमात्र पुत्र १९३९-४५ के विश्वसंग्राम में काम आगया। उसके पति और पुत्र ने मानव सभ्यता की रक्षा के लिये प्राणों का उत्सर्ग किया। मानव समाज को इससे कोई लाभ पहुँचा या नहीं, इसे कौन जाने। पर वह स्त्री ? उसका तो सर्वस्व लुट गया।'

'कितनी करुण कहानी है।'

'फिलम सचमुच देखने लायक है। चलिये, आज इसे साथ बैठ कर देख लें। न जाने, साथ बैठने का मौका फिर कब मिले ?'

'शो कितने बजे शुरू होता है ?'

'छः बजे।'

'तब तक तो वे लौट ही आएंगे। अब चौथे बज चुके हैं, आते ही होंगे। तो मैं तैयार हो लूँ। चाय तो आप पीएंगे ही। रामू को कहे देती हूँ।'

विनोद को घर लौटने में देर होगई। कनाटप्लेस ऑफिस से निकल कर वह हेल्थ ऑफिसर साहब से मिलने चला गया। चेचक का टीका वह लगवा चुका था, पर उसका सर्टिफिकेट अभी तक नहीं मिला था। उसने सोचा, हेल्थ ऑफिसर साहब अपने मित्र हैं। वहां जाकर सर्टिफिकेट लेता आऊं। डा० गुप्ता घर पर अकेले बैठे थे। उन्होंने विनोद को बातों में लगा लिया। बातचीत में साढ़े छः बज गये।

लता और वीरेन्द्र ने पौने छः बजे तक विनोद की इन्तजार की। जब वे नहीं लौटे, तो लता ने कहा—'कहिये, अब क्या विचार है?'

'भाई विनोद किसी काम में फँस गया होगा। आप कब तक इन्तजार करेंगी। 'ह्वाइट विंग्स' [illegible] बहुत अच्छी फिल्म है। आज उसका अन्तिम दिन है। रात के शो में हिन्दी की फिल्म दिखायी जायगी। यही आखरी मौका है। इसे हाथ से जाने देना उचित नहीं होगा। इतनी भावपूर्ण फिल्म अंग्रेजी में भी बहुत कम बनती है।'

'पर उनके बिना मेरा सिनेमा चलना ठीक नहीं होगा। पता नहीं, किस काम में उन्हें इतनी देर लग गई। आपने उन्हें बहुत सी बातें भी करनी हैं।'

'हम तीन टिकट खरीद लेंगे। रामू को कहे जाते हैं, कि जब विनोद वापस घर आएं, तो उन्हें तुरन्त नावेल्टी सिनेमा आने को कह दे। वे आते ही होंगे—यदि दस मिनट पीछे ही सिनेमा पहुँच गये, तो कोई हर्ज नहीं होगा। शुरू में तो न्यूज आदि ही दिखाये जाते हैं। हम उनकी सीट रिजर्व रखेंगे, और गेट कीपर को कह देंगे।'

'तो फिर चलिये, मैं तैयार हूँ।'

लता और वीरेन्द्र सिनेमा चले गये। फर्स्ट क्लास के तीन टिकट खरीद कर वे सिनेमा में जा बैठे। लता की आंखें गेट की ओर लगी हुई थीं।

वह उत्सुकता पूर्वक विनोद के आने की इन्तजार कर रही थी।

पौने सात वजे के लगभग जव विनोद घर लौटा, तो उसने रामू से पूछा—

'मेम साहव कहाँ हैं ?'

'वीरेन्द्र वावू आये थे। वे उसके साथ नावल्टी सिनेमा गई हैं। आपके लिये कह गई हैं, कि जव आप आएं, सीधा सिनेमा चले आएं। आपका टिकट उन्होंने खरीद लिया है।'

विनोद ने रामू की वात का कोई उत्तर नहीं दिया। पांच मिनट घर पर चुपचाप वैठ कर वह वाहर निकल गया, और पैदल घूमता हुआ पार्क में जा पहुँचा। कुछ दिन पहले जिस वेंच पर वह लता के साथ वैठा था, आज फिर वह उसी पर जा वैठा। उसके मन में एक वार फिर तूफान उठ खड़ा हुआ था। वह सोच रहा था, नियति के विधान को कौन रोक सकता है। शायद भाग्य को यही मंजूर है, कि हमारे दाम्पत्य जीवन का इसी प्रकार से अन्त हो। जिस चीज का किसी दिन प्रारम्भ होता है, उसका अन्त होना भी अवश्यम्भावी है। पर यह अन्त कितना दारुण और करुण है।

उधर लता और वीरेन्द्र सिनेमा देखने में मग्न थे। जव हाफ टाइम हुआ, तो लता ने कहा—'क्या वात है, वे अव तक नहीं आये। दस मिनट का समय काफी होता है। क्यों न टैक्सी करके घर हो आएं।'

'कोई खास काम हो गया होगा। यदि विनोद घर आ गया होता, तो रामू अवश्य उसे यहाँ आने के लिये कह देता।'

'पर मुझे वहुत फिक्र लग रही हैं। घर पर टैलीफोन भी तो नहीं है।'

'इसमें फिक्र की क्या वात है। किसी जरूरी काम से कहीं चला गया होगा। घर जाकर पता लगाना विलकुल वेकार होगा।'

सिनेमा की पहली घण्टी वज गई। रिकार्ड वजने शुरू हो गये। पौने नौ वजे के लगभग शो समाप्त हुआ, और वीरेन्द्र को साथ लेकर लता घर वापस आई। उसने रामू से पूछा—

'साहब अब तक घर नहीं आए ?'

'आये थे ।'

'उन्हें सिनेमा जाने के लिये कह दिया था ।'

'कह दिया था, हुजूर ! पाँच मिनट बैठ कर वे साहब चले गये थे ।'

'पर वे सिनेमा तो आये नहीं । उन्हें बता दिया था न, कि वीरेन्द्र बाबू आये हुए हैं ?'

'हाँ, हुजूर !'

'फिर वे गये कहाँ । इतनी रात हो गई, अब तक वापस नहीं आये?'

'किसी से मिलने चले गये होंगे । अच्छा, भाभी, अब मुझे तो दिल्ली लौटना है । कल सुबह वहाँ जरूरी काम है ।' वीरेन्द्र ने कहा ।

'तो क्या आप प्रोफेसर साहब से बिना मिले ही चले जाएंगे ?'

'फिर और हो ही क्या सकता है ? मैं कोई सामान भी तो साथ नहीं लाया हूँ ।'

'सामान की आपको कमी नहीं । क्या हमारे घर में आपके लायक बिस्तर भी नहीं मिल सकेगा ! फिर भाभियों के रहते कपड़ों की भी चिन्ता ? आप उनसे मिले बिना यहाँ से वापस नहीं जा सकते ।'

'पर सुबह मुझे दिल्ली में बहुत जरूरी काम है ।'

'तो क्या मेरठ में टैक्सी नहीं मिलती ? मसूरी एक्सप्रेस सुबह पौने चार बजे मेरठ से छूटता है, और छः बजे तक दिल्ली पहुँच जाता है । आप उससे चले जाइयेगा । वे अभी लौटते ही होंगे ।'

'तो फिर जैसी आपकी मर्जी । सुबह पौने चार बजे रेल पर सवार कराने की जिम्मेवारी आपकी होगी ।'

'हाँ, यह मुझे स्वीकार है ।'

रानू को डिनर के लिए कह कर लता वीरेन्द्र के पास बैठ गई । यूरोप के बारे में तरह-तरह की बातें वे उससे पूछने लगी । बातचीत में सवा दस बज गये । लता को आश्चर्य था, कि विनोद अब तक क्यों घर नहीं लौटे हैं । उसका मन सशङ्क था । वह सोच रही थी, कि वीरेन्द्र के

साथ इस प्रकार अकेले सिनेमा चले जाने से विनोद ने कहीं बुरा न मान लिया हो, और उसके मन में फिर से अन्तर्दाह न शुरू हो गया हो। पर अपने मन की चिन्ता को वह वीरेन्द्र के सम्मुख प्रगट नहीं होने देना चाहती थी। वह सावधान थी, कि अपने घर की बात किसी बाहरी आदमी के सामने प्रगट न हो जाए।

साढ़े दस बजे के लगभग जब विनोद घर लौटा, तो लता और वीरेन्द्र हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। विनोद को देख कर वीरेन्द्र ने कहा—

'जब कभी घर आता हूँ, तुम से तो भेंट होने ही नहीं पाती। पता नहीं, किन झञ्झटों में फंसे रहते हो?'

'इन्कम टैक्स आफिस गया था। वहाँ से हेल्थ आफिसर के घर चला गया। वहीं देर हो गई।'

'सिनेमा में तुमने भी खूब इन्तजार कराई। भाभी तो तुम्हारी चिंता में बावली सी होगई थीं। इनकी आँख क्षण भर के लिये भी गेट से नहीं हटी। पता नहीं, फिलम भी इन्होंने देखी या नहीं। रामू ने तुम्हें हमारा सन्देश तो दे ही दिया होगा।'

'हाँ, उसने मुझे कह दिया था। पर फिलम का मजा शुरू से देखने पर ही आता है। मैंने सोचा, देर हो गई है। पार्क में ही टहल आऊँ। अच्छा, यह तो बताओ यूरोप के लिये हमें क्या क्या सामान साथ ले जाना चाहिये?'

रामू ने आकर सूचना दी, डिनर तैयार है। तीनों डाइनिंग रूम में चले गये। वीरेन्द्र यूरोप की बातें बताता रहा। होटल, रिस्तोरां, डिपार्टमेन्टल स्टोर, काफे, थियेटर आदि की चर्चा चलती रही। विनोद को इन सब बातों में विशेष दिलचस्पी नहीं थी। उसकी भावभंगी गम्भीर थी, और लता से यह छिपा हुआ नहीं था, कि विनोद फिर उदास हो गया है। उसके हृदय में जो दारुण अन्तर्दाह शुरू हो गया था, वीरेन्द्र को उसका आभास तक भी नहीं था। वह समझता था, दर्शनशास्त्र के निशिदिन अध्ययन के कारण विनोद एक दम नीरस हो गया है। पर लता से यह

बात छिपी हुई नहीं थी। वह जानती थी, कि विनोद के हृदय में एक बार फिर तूफान उठ खड़ा हुआ है। किसी अज्ञात भय से उसका मन सशंक हो गया था। इतने दिनों से उसके घर में जो भयंकर काण्ड उपस्थित था, उसे वह वीरेन्द्र के सामने प्रगट नहीं होने देना चाहती थी। इसलिये वह वीरेन्द्र के साथ हँस हँस कर बातें करती रही। भोजन समाप्त कर विनोद उठ कर अपने कमरे में चला गया। लता उसके साथ-साथ गई और उससे बोली—

'तुम तो बुरा मान गये। तुम्हें क्या मालूम, सिनेमा में मैं तुम्हार कितना इन्तजार करती रही। मुझे क्या पता था, कि तुम्हें इन्कम टैक्स आफिस से वापस लौटने में इतनी देर लग जायगी। सोचती थी, तुम पांच बजे तक तो घर आ ही जाओगे। इसीलिए सिनेमा का प्रोग्राम बनं लिया था। फिर मैं वीरेन्द्र को मना भी कैसे करती। तुम तो जरा-जरा-र्स बात से बुरा मान जाते हो ?'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।'

'दस मिनट वीरेन्द्र से पास बैठ कर बातें क्यों नहीं कर लेते ? व भी अपने दिल में क्या कहता होगा। घर की बात किसी और के साम क्यों प्रगट हो ?'

'तुम जानती ही हो, मेरा मन इस समय बहुत उद्विग्न है। उसके सा बैठ कर कोई ऐसी-वैसी बात मुंह से न निकल जाए। अच्छा है, तुम्हें उससे बातें कर लो।'

'तुम्हे अपने घर की प्रतिष्ठा का खयाल नहीं है, तो क्या मैं भी उसक विचार न करूं। यदि वीरेन्द्र को तुम्हारे मन में उठ रहे तूफान का जरा सा भी आभास मिल गया, तो क्या हम किसी को मुंह दिखाने लायक रह जाएँगे ? तुम पांच मिनट के लिए ही उसके पास चले चलो।'

'नहीं, मुझे आराम करने दो। तुम्हीं उसके पास चली जाओ।'

'वीरेन्द्र ड्राइंग रूम में अकेला बैठा हुआ था। लता उसके पास आकर बैठ गई। वीरेन्द्र ने कहा—

'भाई साहब कहाँ हैं ?'

'उनकी तबियत ठीक नहीं है। कितना समझाती हूं, इतना अधिक काम न किया करो। पर मानते ही नहीं। कहने को तो आजकल छुट्टियों के दिन हैं, पर उन्हें तो दम मारने की भी फुरसत नहीं है। ढेर के ढेर परीक्षापत्र आये रखे हैं। मार्किंग करके उन्हें शीघ्र वापस करना है। फिर अपनी किताब भी खतम करनी है। काम करते-करते सिर में दर्द होने लगता है।'

'तो चलिये, उन्हीं के पास बैठ कर बातें करें।'

'नहीं, उनकी इच्छा है, जल्दी पढ़ कर सो जाएं। थके हुए हैं। अब आप भी आराम करें। आपका बिस्तर लगा दिया है।'

'तो क्या इसी के लिए आपने मुझे दिल्ली वापस जाने से रोका था? बारह बजे से पहले तो मुझे नींद ही नहीं आती। आप भाई साहब के पास जाकर बैठिये। मैं बाहर घूमता रहूंगा। कैसी अच्छी रात है। गर्मियों में तारों भरी रात कितनी अच्छी लगती है।'

'नींद तो मुझे भी नहीं आ रही है। वे तो अब तक पढ़कर सो भी गये होंगे। चलिये, पांच मिनट साथ बैठ कर बातें ही कर लें। आप कब रोज-रोज घर आते हैं।'

'आप विलायत जा रही हैं, तो यूरोप में सब जगह घूमकर आइयेगा। स्विटजरलैण्ड और फ्रांस के रिविएरा की सैर करना न भूलियेगा। आपने सब सामान तैयार कर लिया है न ?'

'हाँ, उनके सब सूट रख लिए हैं, अपनी भी बढ़िया साड़ियां साथ ले ली हैं।'

'मुझे एक बात समझ में नहीं आती। भारतीय स्त्रियां यूरोप जाकर भी क्यों साड़ी पहनती हैं। पुरुष तो पोशाक में पूरे यूरोपियन बन जाते है, पर स्त्रियां साड़ी जम्पर को छोड़ना ही नहीं चाहतीं।'

'साड़ी से बढ़ कर सुन्दर पोशाक और कोई नहीं है।'

'यह मैं मानता हूं। पर कहावत है, जब रोम में रहो, तो रोमन लोगों

की तरह रहो। आपने मेरठ के बाजार में कभी भूटानी लोगों को देखा होगा। देखा है न ?'

'हां, देखा है।'

'भारत में उनकी स्त्रियों की पोशाक कैसी अजीब प्रतीत होती है। बच्चे उन्हें घेर लेते हैं, और स्त्री-पुरुष भी घूर-घूरकर उनकी ओर देखने लगते हैं। यदि वे भी भारतीय पोशाक पहनकर घूमें, तो क्या आपको अच्छा नहीं लगेगा ?"

'क्यों नहीं अच्छा लगेगा।'

'और यदि कोई यूरोपियन महिला साड़ी जम्पर पहन कर रहे, तो आप उससे अधिक आत्मीयता अनुभव करेंगी या नहीं ?'

'जरूर करूँगी।'

'पोशाक की भिन्नता मनुष्यों के बीच में एक दीवार-सी खड़ी कर देती है। यदि यूरोप में आप भी ब्लाउज और स्कर्ट पहन कर रहें, तो आपके लिए यूरोपियन समाज में घुलमिल सकना अधिक सुगम हो जायगा। आप यूरोपियन सभ्यता और संस्कृति को अधिक अच्छी तरह से समझ सकेंगी। यूरोपियन लोगों और आपके बीच में जो परदा है, वह उठ जायगा। आप पर यूरोपियन पोशाक फबेगी भी खूब। आपका रंग इतना साफ है, कि स्कर्ट और ब्लाउज में आपको लोग इटालियन या स्पेनिश समझेंगे।'

'आप भी कैसी बातें करते हैं। आप तो मुझे पूरी मेम साहब बना देना चाहते हैं।'

'तो इसमें हर्ज भी क्या है? मेरी बात मानिये, आप अपने साथ केवल दो साड़ियां ले जाइये। खास मौकों पर काम आएँगी। पर सामान्यतया पाश्चात्य पोशाक में रहिये। एक बात और कहूं, बुरा तो नहीं मानेंगी।'

'कहिये, आपकी किसी बात को मैंने बुरा माना है ?'

'यूरोप में कोई स्त्री लम्बे बाल नहीं रखती। मुझे याद है, मैं पेरिस में फ्रेंच भाषा पढ़ रहा था। एलिआंस फ्रांसेज नाम का एक स्कूल वहां है,

जिसमें हजारों विदेशी विद्यार्थी फ्रेञ्च भाषा सीखते हैं। टीचर इंडियोक्रेसी शब्द का अर्थ समझा रही थी। उदाहरण दे-देकर इस शब्द का अर्थ बताने लगी। बोली, यदि किसी स्त्री के लम्बे बाल देखो, तो उसे क्या कहोगे ? हमारी क्लास में पचास से अधिक स्त्रियाँ थीं। केवल एक ऐसी थी, जिसके बाल कटे हुए नहीं थे। सब उसे देखकर हँस पड़े। वह बेचारी भी शरमा गई। यूरोप जाकर आपको भी ऐसा ही अनुभव होगा। मेरी बात मानिये, बम्बई में जहाज पर चढ़ने से पूर्व ही अपने बाल कटवा कर उन्हें पर्म करवा डालिए।'

लता और वीरेन्द्र देर तक इसी प्रकार बातें करते रहे। वीरेन्द्र की बातें इतनी आकर्षक और मनमोहक थीं, कि लता को समय का ध्यान ही नहीं रहा। जब घड़ी ने बारह बजाए, तो लता चौंक कर उठ खड़ी हुई, और बोली—

'ओह, आधी रात हो गई। अब आप एक नींद ले लीजिए। सुबह पौने चार बजे आपको रेल पकड़नी है। रामू को तीन बजे ताँगा लाने के लिए कह दिया है।'

वीरेन्द्र अपने बिस्तर पर जा लेटा, और लता विनोद के पास चली गई। आधी रात बीत चुकी थी। पर विनोद को अभी नींद नहीं आई थी। वह लेटा हुआ करवटें बदल रहा था। लता उसके पास आकर लेट गई, पर विनोद ने अपना मुंह दूसरी तरफ फेर लिया।

(१०)

सुबह तीन बजे ताँगा घर पर आ गया। वीरेन्द्र के पास कोई असबाव तो था नहीं, ताँगे पर बैठते हुए उसने लता से कहा—

'भाई विनोद क्या अभी सो रहे हैं ?'

'हाँ, रात उनकी तबियत खराब रही। अभी आँख लगी थी, इसलिए मैंने उन्हें जगाया नहीं। आपको स्टेशन तक छोड़ आऊँ ?'

'इसकी क्या जरूरत है ? भाई साहब का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। आप उनके पास बैठिये। मेरी नमस्ते कह देना। अब आप लोग शीघ्र

यूरोप जा रहे हैं। शायद फिर मुलाकात न हो।'

नमस्ते कहकर वीरेन्द्र ने लता से विदा ली। जब ताँगा चला गया, तो लता विनोद के पास पलंग पर लेट गई। विनोद सचमुच सोया हुआ था। उसे निद्रामग्न देखकर उसने कुछ शान्ति अनुभव की। सुबह की ठंडी हवा से उसकी भी आँख लग गई। जब वह सोकर उठी, तो सात बज रहे थे। विनोद उठकर जा चुका था, और स्नान आदि से निवृत्त होकर अपनी पुस्तक लिखने में लग गया था। लता उसके पास आई, और उसके गले में हाथ डाल कर बोली—'तुमने चाय पी ली ?'

'हाँ, रामू सुबह छः बजे ही चाय दे गया था।'

'ओह, मैं भी आज कितनी देर तक सोती रही, नींद खुली ही नहीं।'

'जब तुम रात को बारह बजे तक जागोगी, तो सुबह नींद जल्दी कैसे खुलेगी ?'

'तुमने ही तो कहा था, वीरेन्द्र के पास बैठ आओ, जाकर उससे कुछ बातें कर लो। मैंने भी सोचा, घर की बात घर में ही रहे तो अच्छा है। कोई बाहर का आदमी उसे क्यों जाने। यदि हम दोनों में से कोई भी उसके पास न बैठता, तो वह न जाने क्या समझता।'

'पर मैंने यह तो नहीं कहा था, कि आधी रात तक उससे बातें करती रहो। वीरेन्द्र के पास जाकर तुम्हें न जाने क्या हो जाता है, तुम अपनी सुध-बुध भूल जाती हो, तुम्हें उचित अनुचित का ज्ञान ही नहीं रहता, तुम अपना सब विवेक खो बैठती हो।'

'तुम तो फिर बुरा मान गये। साढ़े दस बजे तो भोजन से ही निवटे थे। यदि मैं डेढ़ दो घण्टा उसके पास बैठ गई, तो इसमें क्या अनौचित्य हो गया। वह यूरोप की बातें सुना रहा था। उन्हें सुनते हुए समय का ध्यान ही नहीं रहा।'

'क्या तुम पन्द्रह-बीस मिनट उसके पास बैठ कर वापस नहीं आ सकती थी ? तुम्हारे साथ रहते हुए मुझे बारह साल हो गये हैं। तुम्हारी आदतों से मैं भलीभांति परिचित हूं। रात को तुम बहुत जल्दी पड़ कर सो

जाती हो। कई बार मेरी इच्छा होती है, तुम से बैठकर बातें करूँ। मुझे रात को जल्दी नींद नहीं आती। पर तुम तो जहाँ बिस्तर पर लेटीं, तुरन्त सो गईं। पर वीरेन्द्र के समीप जाते ही तुम्हारी नींद न जाने कहाँ भाग जाती है। जब कभी वह आता है, तुम रात भर उसके साथ बैठी बातें करती रहती हो। तुम उसके साथ आगरा गईं। रात भर जागती रहीं। सच बताओ, यदि मैं तुम्हारे साथ होता, तो क्या तुम इस तरह से जागती रह सकती ?'

'पर मैं तो तुम्हारी ही बातें करती रही थी। यही सोचती थी, यदि तुम भी साथ होते, तो कितना अच्छा होता। पर तुम्हें तो फुरसत ही नहीं मिलती। कल सिनेमा तक देखने नहीं आए, तुम्हारी सीट खाली पड़ी रही, और तुम पार्क में अकेले बैठे रहे।'

'मैं आकर क्या करता। सिनेमा का प्रोग्राम तुमने मेरी इच्छा से तो बनाया नहीं था। याद करो, तुमने क्या प्रतिज्ञा की थी। तुम वीरेन्द्र के साथ कभी कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं रखोगी, जिसमें मैं शरीक न होऊँ। तुम क्या दस मिनट तक मेरी इन्तजार नहीं कर सकती थीं ?'

'मैंने रामू को कह तो दिया था, तुम्हें तुरन्त नावेल्टी सिनेमा भेज दे।'

'पर मुझे देर भी तो हो सकती थी, यह सम्भावना तुम्हारे दिल में क्यों नहीं आई। क्या तुम वीरेन्द्र को यह नहीं कह सकती थी, कि वे जल्दी आने को कह गये हैं, आते ही होंगे, उनके आने पर ही चलेंगे। यदि मैं न आता, और तुम्हारा सिनेमा का प्रोग्राम पूरा न हो सकता, तो क्या कोई विशेष हानि थी। पर वीरेन्द्र के सम्पर्क में आते ही तुम अपना विवेक खो बैठती हो। उसमें तुम्हें न जाने कैसा असामान्य आकर्षण अनुभव होता है।'

'मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? मेरे दिल में उसके प्रति जरा भी तो असामान्य भाव नहीं है।'

'मेरे कितनी ही अन्य मित्र हैं, जिनसे तुम हँसती-बोलती हो। वे घंटों तुम्हारे साथ बैठे बातें करते रहते हैं। क्या तुम किसी और के साथ भी

इस प्रकार अकेले ताजमहल या सिनेमा जाना पसन्द करोगी ? सच कहना ।'

'मैं झूठ नहीं बोलूंगी । यह सच है, मैं किसी और के साथ इस प्रकार अकेली नहीं जाऊंगी । पर वीरेन्द्र तुम्हारा घनिष्ठ मित्र है, तुम उसे अपना भाई मानते हो । मैं उसके साथ उसी भाव से मिलती हूँ, जैसे कोई स्त्री अपने देवर से मिलती है । क्या तुम समझते हो, मैं उसके साथ बैठकर प्रेमालाप करती हूँ ? उससे बातें करना मुझे अच्छा लगता है, इसीलिये उसके साथ घण्टों बिता सकती हूं । इसमें अपवित्र भाव का तो नामोनिशान तक भी नहीं है ।'

'दिक्कत यह है, कि तुम अपने भाव को स्वयं भी नहीं समझती । देवर भाभी, भाई बहन आदि शब्दों के पीछे कितने ही अनर्थ होते रहते हैं, यह तुम से छिपा नहीं है । पुरुष जिस स्त्री के प्रति आकृष्ट होते हैं, उसके साथ पहले बहन का सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं, यही सम्बन्ध बाद में बिगड़ कर एक अनैतिक रूप धारण कर लेता है । तुम्हें मालूम है, मनु ने सगे भाई बहनों का भी एकान्त में मिलना निषिद्ध ठहराया है । शायद तुम सोचोगी, मैं भी किस दकियानूस और पुराने जमाने के स्मृतिकार की बातें कर रहा हूँ । जिन विचारकों की रचनाएं सैंकड़ों हजारों साल बीत जाने पर भी कायम रहती हैं, उनमें सत्य का अंश अवश्य होता है । मुझे अनेक ऐसे उदाहरण ज्ञात हैं, जिनमें सगे भाई-बहनों में भी अनुचित सम्बन्ध रहा । यह मैं मानता हूँ, कि वीरेन्द्र के साथ तुम्हारा जो सम्बन्व इस समय है, उसमें शारीरिक आकर्षण का सर्वथा अभाव है । पर मैं पहले भी तुम्हें कह चुका हूँ, कि मानसिक और शारीरिक आकर्षण एक ही मार्ग के दो पड़ाव हैं । स्त्री का किसी अन्य पुरुष के प्रति या पुरुष का किसी अन्य स्त्री के प्रति जब अत्यधिक आकर्षण हो जाता है, चाहे वह आकर्षण केवल मानसिक ही क्यों न हो, तो दाम्पत्य जीवन सम्भव नहीं रहता मैं समझता था, इस विषय पर तुम और मैं पूर्णतया सहमत हैं । इस पर हम कितना विचार विमर्श कर चुके हैं । पर तुम्हें न जाने क्या हो गया है ?'

'मुझे कुछ भी तो नहीं हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है, मुझे घर से निकाल कर ही तुम्हें चैन मिलेगी। मैं रात को वीरेन्द्र के साथ बातें करने बैठ गई, पर तुमने ही तो मुझे ऐसा करने को कहा था। तुम कहोगे, दस मिनट के बाद उठ क्यों नहीं आई। क्या तुम मुझे कठपुतली की तरह नचाना चाहते हो? जितने मिनट तुम चाहो, बातें करूं। जिस क्षण तुम चाहो, उठकर चली आऊं। मैं तुम्हारे हाथों में कठपुतली बन कर रहने में खुश हूँ। तुमने रामू से कहलवा क्यों नहीं दिया, साहब बुलाते हैं। मैं तुरन्त न चली आती, तो तुम्हें शिकायत का मौका होता। पर जब तुम्हारे कहने से ही बैठी थी, तो यदि घण्टा आध घण्टा देर हो गई, तो इसमें बुरा मानने की क्या बात है? रही सिनेमा की बात? यदि मुझे वीरेन्द्र के साथ अकेले ही सिनेमा देखने की इच्छा होती, तो तुम्हारे लिये टिकट क्यों खरीदती, क्यों रामू को कह जाती कि साहब को तुरन्त नावेल्टी सिनेमा भेज दे, और क्यों मेरी आँखें निरन्तर गेट की तरफ लगी रहतीं? तुम्हें क्या मालूम, मेरी निगाह स्क्रीन पर न रहकर गेट पर जमी हुई थी। तुम्हारे लिये मैं कुछ भी करूं, पर तुम्हें तो किसी भी प्रकार सन्तोष नहीं होता। पता नहीं, मेरे भाग्य में क्या लिखा है?'

यह कहते हुए लता फूट-फूट कर रोने लगी। विनोद से लता का रुदन नहीं देखा गया। वह उठ खड़ा हुआ, और लता को छाती से लगा कर उसने कहा—

'अरे, तुमने तो अभी चाय तक भी नहीं पी। रामू को चाय के लिये कह देता हूँ। जाओ, हाथ मुँह धो लो। कोई देख लेगा, तो क्या कहेगा?'

आधे घण्टे तक लता बिलख-बिलख कर रोती रही। विनोद ने बहुत यत्न किया, पर लता का उद्वेग शान्त नहीं हुआ। मन का संताप आँसुओं की राह से बाहर निकल जाता है। जब लता कुछ आश्वस्त हुई, तो विनोद ने कहा—

'मैं भी तुम्हें कितना दुःख देता हूँ। चलो, अब उठो। मुंह हाथ धोकर चाय पी लो।'

'तुम भी मेरे साथ चाय पिओगे न ?'

'हाँ, अब मेरा मन शान्त है। तुम्हारे अश्रुजल से मेरे मन की कालिमा धुल कर साफ हो गई है।'

रामू चाय ले आया। विनोद ने कहा—

'वीरेन्द्र ने यूरोप यात्रा के विषय में कुछ उपयोगी निर्देश दिये होंगे।'

'वह तो ऊटपटांग बातें करता था। कहता था, साड़ियां न ले जाओ। यूरोप में फ्राक या स्कर्ट और ब्लाउज पहन कर रहना। उसकी बातों को जाने दो।'

'इसमें हर्ज भी क्या है ? जब मैं यूरोपियन ड्रेस में रहूँगा, तो तुम भी उसी तरह रहना।'

'खैर, देखा जायगा। आज तुम्हें कोई खास काम तो नहीं है ? मैं नहीं चाहती, कि तुम एक क्षण के लिये भी मुझ से अलग रहो। पता नहीं, मेरे मन को क्या हो गया है।'

लता और विनोद इसी तरह की बातों में मग्न थे, कि लता की सहेली कुसुम आ गई, और उसने कहा—

'अभी तक चाय से भी नहीं निवटी, लता बहन ! आजकल तो ईद की चांद बन रही हो। कभी दिखाई ही नहीं देती।'

'चलो, मेरे कमरे में चल कर बैठो', कहती हुई लता उठ खड़ी हुई, और और कुसुम को अपने साथ ले गई। दोनों सहेलियाँ देर तक बातें करती रहीं। एक बजा, तो रामू ने आ कर कहा—'खाना तैयार है। मेज पर लगा दूँ ?'

'बहन, तुम भी यहीं खाना खा लो। इस गरमी में कहाँ बाहर जाओगी ? भाई साहब तो काम पर गये होंगे। उनकी रोटी तो दफ्तर में ही भेजी जाती है न ?'

'हाँ, उनकी रोटी दफ्तर भिजवा कर ही तो तुम्हारे पास आई थी। घर पर भोजन तैयार रखा है। बेकार जायगा। अब मैं चलती हूँ।'

'नहीं, आज तुम्हें मेरे साथ ही भोजन करना होगा। इतने दिनों बाद

आई हो, इस धूप में कहाँ जाओगी । लू लग जायगी । साँझ को घर चले जाना ।'

लता ने रामू को तीन थालियाँ लगाने का आदेश दे दिया । कुसुम ने कहा—

'भाई साहब के सामने भोजन करने में मुझे शर्म आती है । मेरा खाना यहीं भिजवा दो । तुम जल्दी निवट कर चली आना । बैठ कर बातें करेंगे । अब तुम शीघ्र ही विलायत जा रही हो । वापस आओगी, तो पता नहीं, मुझे पहचानोगी भी या नहीं ।'

'कैसी बातें करती हो, बहन ! अपना खाना भी यहीं मंगा लेती हूँ । उनके साथ तो रोज ही भोजन करती हूँ । एक दिन तुम्हारे साथ ही सही ।'

रामू दो थालियाँ ले आया । लता और कुसुम ने साथ बैठकर भोजन किया । विनोद अकेला डाइनिंग रूम में गया और दो फुलके खाकर उठ गया । ड्राइंग रूम में जाकर वह अकेला सोफे पर लेट गया । लता और कुसुम तीसरे पहर पाँच बजे तक बातें करते रहे । घड़ी देखकर कुसुम ने कहा—

'अब वे घर वापस आते होंगे । उनके लिये जलपान की तैयारी करनी है । अब चलती हूँ ।'

'अच्छा, तो अब फिर कब तक आओगी ?'

'जल्दी ही किसी दिन आऊँगी ।'

कुसुम चली गई और लता विनोद के पास ड्राइंग रूम में आई । विनोद सोफे पर अकेला लेटा हुआ चुपचाप छत की ओर देख रहा था । उसकी मुखमुद्रा को देखकर लता घबरा गई, और पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठते हुए बोली—

'अरे, तुम तो फिर उदास हो गये । पाँच मिनट के लिये अपनी एक सहेली के पास बैठ गई थी । तुम तो शायद उससे भी बुरा मान गये ।'

'यह बात नहीं है । पर तुम्हारे साथ रहने की भी मुझे कैसी आदत पड़

हुई है। तुम्हारे विना एक क्षरण को भी चैन नहीं पड़ती, यह आदत भी कितनी वुरी है।'

'तो इसमें हर्ज भी क्या है ? मैं भी तो तुम्हारे विना नहीं रह सकती।'

'नहीं, यह वात नहीं है। तुम्हारे मित्र हैं, तुम्हारी सहेलियाँ हैं। तुम मेरे विना भी जीवन का रस प्राप्त कर सकती हो। पर मैं कैसा अभागा हूँ, जिसके लिये या तो उसकी पुस्तकें हैं और या तुम। मेरी न किसी पुरुष से मित्रता है, और न किसी स्त्री से। तुम्हारी छोटी-छोटी वातें मुझे वुरी लग जाती हैं। किस लिये ? क्योंकि मैं तुमसे अनन्त ममता रखता हूँ। तुम मेरी वनकर रहो, केवल मेरी, अन्य कोई हम दोनों के रास्ते में आये ही नहीं—यही विचार मेरे सम्पूर्ण उद्वेग का मूल कारण है। यदि मैं तुम्हारे विना भी जीवन विता सकता, तुम्हारे विना भी रस की अनुभूति ले सकता, तो मेरी यह दशा क्यों होती ? तुम किसी अन्य पुरुष के साथ हँसो वोलो, किसी अन्य के साथ ताजमहल की सैर करो, किसी और के साथ सिनेमा देखने जाओ— यह सव मुझे क्यों अच्छा नहीं लगता ? क्योंकि मैं तुम्हें अपनी समझता हूँ, केवल अपनी। पर ममता की इस अतिशयता का कारण क्या है ? क्योंकि मैं तुम्हारे विना सुखी रह ही नहीं सकता।'

'तो इसमें हर्ज ही क्या है ?'

'यदि तुम मेरे अन्तर्दाह का जरा भी आभास पा सकती, तो तुम्हें यह समझने में देर न लगती कि इसमें क्या हर्ज है। मैं सोचता हूँ, मैं तुम्हारे विना भी जीवन विताने की आदत डालूँ। इस तरह से रहूँ कि तुम्हारे विना भी मुझे सुख मिल सके।'

'यदि तुम्हें मेरे विना ही रहना था, तो इतनी धूम-धाम से मुझे अपने घर लाये क्यों थे ? उस दिन को याद करो, जव तुमने मेरा हाथ पकड़ा था, और अग्नि देव के सम्मुख कतिपय प्रतिज्ञाएँ की थीं।'

'मैं तुम्हें छोड़ देने की वात कव कहता हूँ। पर किसी मानव को इस प्रकार अपना सम्वल वना लेना भी तो उचित नहीं है। इतनी ममता, इतना एकाधिकार—क्या यह उचित है ? इसी के कारण आज मुझे इतने दारुण

संताप की अनुभूति हो रही है। तुम और लोगों के साथ हँस बोल सकती हो, औरों के साथ सैर सपाटे कर सकती हो। पर इससे मुझे ईर्षा क्यों होती है ? यदि मैं भी यही सब कर सकता, तो मुझे क्या इस तरह जलन होती ?'

'तो फिर तुम चाहते क्या हो ? मैं तो तुम्हें किसी और से हँसने बोलने से रोकती नहीं हूँ।'

'मैं चाहता क्या हूँ ? मैं चाहता हूँ, अकेले यूरोप जाऊं। कुछ महीने तुम से अलग रहते हुए व्यतीत करूँ। इसके लिये इससे अच्छा अवसर और कौन सा मिलेगा ?'

'तो तुम साफ-साफ क्यों नहीं कहते, कि तुम मुझे अपने साथ यूरोप नहीं ले जाना चाहते।'

'यही तो कह रहा हूँ।'

'पर क्या तुम मेरे विना सुखी रह सकोगे ?'

'शुरू में कठिनाई अवश्य होगी, पर धीरे-धीरे आदत पड़ जायगी। मैं जानता हूँ, अकेले यात्रा करना बहुत सुगम नहीं होता। याद है, एक बार हम नैनीताल गये हुए थे। हमारे पड़ोस में ही एक सज्जन ठहरे हुए थे, बिलकुल अकेले। सुबह उठकर वह चाय पीते और सैर करने निकल जाते। ताल के किनारे किसी बेंच पर वे अकेले घण्टों तक बैठे रहते। किसी से बात करने के लिये वे तरसते रहते थे। कोई और न मिलता, तो कुलियों से ही बातें करने लग जाते। सारी दुपहरी होटल में करवटें बदलते हुए बिता देते और सायंकाल ? किसी रिस्तोरां में जाकर बैठ जाते, और शून्य दृष्टि से नर नारियों की तरफ देखते रहते। मैं जानता हूँ, यूरोप में मेरी भी यही दशा होगी। अकेले मेरा दिल नहीं लगेगा, पर करूं क्या ? अकेलेपन का दुःख उस दारुण संताप से तो कम ही होगा, जो तुम्हारी छोटी-छोटी बातों से बुरा मान कर मुझे प्राप्त होता है।'

'तो तुम्हें मेरा साथ रहना बुरा लगता है ?'

'बुरा नहीं लगता। पर तुम पर जिस ढंग का अपना एकाधिप

मान लिया है, तुममें जिस प्रकार की ममता मैंने उत्पन्न करली है, वह मुझे चैन नहीं लेने देती।'

'पर इस ममता या एकाधिकार में बुराई की क्या बात है ?'

'यह बहुत बुरी है, क्योंकि इसी से मेरे हृदय में अन्तर्दाह होता है। यदि मुझे भी तुम्हारे बिना रहने की आदत पड़ जाए, तो कितना अच्छा हो। यह ममता ही तो सब दुःखों का मूल है। किसी को शराब की आदत पड़ जाती है, किसी को अफीम की। मुझे तुम्हारी आदत पड़ गई है। इसी कारण तुम्हें किसी और के साथ देख कर मुझे उन्माद-सा होने लगता है।'

'तो फिर यह क्यों नहीं कहते, कि अब मुझ से तुम्हारा मन भर गया है। कहो तो, कहीं चली जाऊँ। अपना पेट भरने लायक रुपया तो कहीं भी रह कर कमा लूंगी। यदि किसी कालिज में प्रोफेसरी नहीं, तो किसी छोटे स्कूल में टीचरी तो मुझे भी मिल ही जायगी। मेरा खर्च ही कितना है? स्त्री की दशा भी कितनी दयनीय होती है। आर्थिक दृष्टि से वह आत्म-निर्भर नहीं होती। कहने को तो वह स्वतन्त्र है। पर असल में वह दूसरों की दासी है। जो तुम्हारे मन में आता है, मुझे कहते हो। मेरी छोटी-छोटी बातों की आलोचना करते हो। मेरे चरित्र पर सन्देह करने में भी संकोच नहीं करते। किस लिये ? क्यों कि मैं तुम्हारे टुकड़ों पर पल रही हूँ। यदि मैं भी आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होती, तो क्या तुम मेरे साथ ऐसा बरताव कर सकते ?'

'देखो, मेरे प्रति अन्याय न करो। मैंने कभी एक क्षण के लिये भी यह नहीं समझा, कि हमारे पास जो दस बीस रुपये हैं, वे मेरे हैं, तुम्हारे नहीं हैं। मैं तो इस सिद्धान्त में विश्वास रखता हूँ, कि विवाह के बाद पति और पत्नी की पृथक् सत्ता रहती ही नहीं है, वे मिलकर एक हो जाते हैं। यदि मैं नौकरी करता हूँ, तो क्या मेरा वेतन केवल मेरा होता है। तुम्हारा उस पर उतना ही अधिकार है, जितना मेरा है।'

'पर जब तुम मेरे साथ रहना ही नहीं चाहते, तो मैं तुम्हारे गले में

फाँसी बन कर क्यों पड़ी रहूँ ?'

'यह बात नहीं है। मैं तुम्हारे साथ रहना चाहता हूँ,तुम्हारे बिना मेरा जीवन अपूर्ण होजायगा, अपङ्ग हो जायगा। पर क्या करूँ ? यह अंतर्दाह तो असह्य है। मैं कितना अपने मन को समझाता हूँ। पर क्या करूँ? मैं तुम पर अपना एकाधिकार चाहता हूँ, ऐसा एकाधिकार जिसमें किसी अन्य पुरुष का रत्ती भर-परमाणु भर भी प्रवेश न हो। पर तुम मेरी दासी तो हो नहीं,सुशिक्षित व सुसंस्कृत महिला हो। अन्य पुरुषों से मिलती हो, किसी एक के प्रति यदि तुम्हारे दिल में थोड़ा बहुत आकर्षण उत्पन्न हो जाए, तो यह सर्वथा स्वाभाविक ही है। पर मुझसे यह भी तो सहन नहीं होता। मेरी भी कैसी अजीब हालत है। इसीलिये सोचता हूँ, कुछ समय तुमसे अलग रहूँ, और तुम्हारे बिना भी सुखी होने की आदत डालूं।'

'यदि तुम मेरे बिना भी सुखी रह सको, तो मुझे क्यों एतराज होना चाहिये। मैं तो तुम्हें सुखी देखना चाहती हूँ। पर क्या यह सम्भव नहीं है, कि मैं तुम्हारे साथ यूरोप जाऊं,यदि पत्नी के रूप में नहीं, तो प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में ही सही। मैं तुम्हारे साथ रहूँगी। समझ लेना, एक सेक्रेटरी साथ में ले ली है। बड़े आदमी सेक्रेटरी तो रखते ही हैं।'

'यूरोप जाने की तुम्हारी कितनी प्रबल इच्छा है, यह मुझे मालूम है। पर मेरे लिये तुम्हें इतनी कुर्बानी करनी ही होगी। मैं बहुधा सोचा करता हूँ, दर्शनशास्त्र का अध्ययन करते करते मैं भी कितना नीरस हो गया हूं। अपने साथी प्रोफेसरों को देखता हूँ, वे ब्रिज खेलते हैं, मसूरी और दिल्ली जाकर डान्स करते हैं, क्लबों के मेम्बर बनते हैं, और स्त्रियों से मित्रता करते हैं। तुम अपने को ही लो। तुम्हारे दिल में कितनी उमङ्गें हैं, कितनी स्फूर्ति है। ताज महल में तुम सारी रात हँसते बोलते बिता सकती हो, पुरुष तुम्हारे प्रति आकृष्ट हो सकते हैं। यदि किसी क्लब में पहुँच जाओ, तो लोग भौंरे के समान तुम्हारे चारों ओर मंडराने लगें। कोई तुम्हें ड्रिन्क आफर करे, कोई डान्स के लिये तुमसे प्रार्थना करे। तुम्हें नृत्य आता है या नहीं, इस पर विचार करने की आवश्यकता

किसे है। जिस किसी की वाँह का सहारा लेकर तुम नृत्यशाला के दो चक्कर लगा लो, वह अपने को धन्य समझेगा। और मैं? पुस्तकों का कीड़ा हूँ, जिसे न क्लवों में आनन्द आता है, न सिनेमा में, जो दस मित्रों में वैठ कर हँस बोल तक भी नहीं सकता, जो किसी स्त्री को अपने प्रति आकृष्ट करने की क्षमता नहीं रखता। यदि अकेला यूरोप रह आया, तो शायद मुझमें भी कुछ आधुनिकता आ सके। इसी के अभाव के कारण तो तुम अन्य पुरुषों के प्रति आकृष्ट होती हो। चाहता हूँ, कि इस यात्रा के वाद जव भारत लौटूं, तो ऐसा वनकर आऊँ, जिससे तुम भी मेरी पत्नी होने में गौरव अनुभव करो।'

'तुम कैसी वातें कर रहे हो? क्या तुम समझते हो, कि मैं तुम्हारी पत्नी होने में गौरव अनुभव नहीं करती। तुम्हें कैसे वताऊँ, तुम्हें पाकर मैं कितनी गौरवान्वित हूँ, तुम्हारी पत्नी होने के कारण मैं कितना गर्व अनुभव करती हूँ। यदि तुम अकेले यूरोप जाना चाहते हो, तो वेशक जाओ, मैं तुम्हारे मार्ग में वाधक नहीं वनूंगी। पर मुझे इस तरह से जलाओ नहीं।'

'मैं तुमसे अपने मन के भाव को छिपाऊँगा नहीं। किसी समय तुम सचमुच मुझे गौरव की वस्तु समझती थी। पर अव तुम्हारे मनोभाव में अन्तर आगया है। मेरी विद्वत्ता का तुम आदर करती हो, मेरे पांडित्य का तुम्हें गर्व है। पर स्त्री के सन्तोष के लिये इतना ही तो पर्याप्त नहीं है। तुम्हारे दिल में कितनी ही ऐसी उमङ्गें हैं, जो मुझसे पूर्ण नहीं हो सकतीं। आधुनिक समाज के प्रति तुम्हारे हृदय में आकर्पण हैं। जिसे आजकल 'सोसायटी वोमन' कहते हैं, उसका जीवन तुम्हें आकृष्ट करता है। तुम आधुनिक स्त्री के समान जीवन विताना चाहती हो, मैं तुम्हारी इस इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकता। सोचता हूं, यदि मैं भी 'आधुनिक' वन सका, तो शायद तुम्हें अधिक संतुष्ट कर सकूंगा। मालूम नहीं, मुझे इसमें सफलता होगी या नहीं। पर प्रयत्न तो मुझे करना ही चाहिये। तुम्हें मैं इतना अधिक चाहता हूँ, कि यदि इसके लिये मुझे अपने अध्ययन को भी कुछ अंश तक कुर्वान करना पड़े, तो मुझे दुख नहीं होगा।'

'तुम भी मुझे कितनी तुच्छ समझते हो। मैं इतनी नीच नहीं हूँ, कि अपने क्षणिक सुख के लिये तुम्हें तुम्हारे उच्च आदर्श से च्युत करूँ। मैं तो यह स्वप्न देखती हूँ, कि एक दिन तुम संसार के सर्वप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वानों में गिने जाने लगोगे। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तुम्हारा नाम हो जायगा। मेरे लिये क्या यह कम गौरव की बात होगी ?'

'अब तक मैं भी यही समझता था। पर वीरेन्द्र के प्रति जो भाव तुमने प्रदर्शित किया है, उसने मुझे अपना मत बदलने के लिए विवश कर दिया है। तुम्हारी कितनी ही ऐसी इच्छाएँ हैं, जिन्हें मैं पूर्ण नहीं कर सकता। यही सोचता हूँ, वे इच्छाएँ भी मुझसे ही पूर्ण हो सकें, तो तुम्हें किसी अन्य पुरुष के साथ असामान्य सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता न रहे।'

'पर यदि मैं भी तुम्हारे साथ यूरोप गई, तो क्या हर्ज होगा !'

'तुम आधुनिकता में इस समय भी मुझसे दस कदम आगे हो। यूरोप जाकर यह अन्तर और बढ़ जायगा। बेशक, मैं भी इस मार्ग पर कुछ पग आगे बढ़ूँगा, पर तुम तो दो मील आगे निकल जाओगी। मैं जीवन पथ पर तुम्हारे साथ-साथ चलना चाहता हूं। तुम मुझसे दस कदम आगे रहो, या तुम मेरे पीछे-पीछे चलो, यह मुझे अच्छा नहीं लगता। एक बार अकेला यूरोप घूम आने से मैं शायद तुम्हारे बराबर हो जाऊँ।'

'पर तुम तो मेरे लिये भी जहाज पर स्थान रिजर्व करा चुके हो।'

'आज दोपहर ही मैंने थामस कुक एण्ड सन्स को तार दे दी थी। तुम्हारी बर्थ कैन्सल कराने के लिए उन्हें आदेश दे दिया है।'

'तो अब बेकार मुझसे इतनी बातें क्यों कर रहे हो। साफ-साफ क्यों नहीं कह देते, कि तुम मुझसे अपना पिण्ड छुड़ाना चाहते हो। यदि तुम मुझे अपने साथ नहीं रखना चाहते, तो मैं स्वयं ही तुम्हारे मार्ग से हट जाती हूं। कितनी बार कह चुके हो, जो चीज सादि है, उसका अन्त होना भी अवश्यम्भावी है। क्या हमारे दाम्पत्य जीवन का भी यह अन्त है ?'

'मैं तुमसे कुछ भी छिपाऊँगा नहीं। मुझे हर समय यह अनुभव होता रहता है, कि अब तुम केवल मेरी ही नहीं हो। एक अन्य पुरुष की स्वा-

सदा मुझे तुम्हारे साथ दिखायी देती है। मैं कितना ही अपने को समझाता हूं, पर क्या करूँ ? अपनी आँखों को मैं कैसे धोखा दूं।'

'तो तुम मुझे पतित समझते हो ? साफ-साफ क्यों नहीं कहते, तुम्हारी दृष्टि में मैं अब कुलटा हूं, चरित्रभ्रष्ट हूं।'

'मैंने इन शब्दों का प्रयोग तो नहीं किया। पर हाँ, अब तुम केवल मेरी ही नहीं रह गई हो। एक अन्य पुरुष भी तुम्हारे दिल में घर कर गया है। यह ठीक है, उसके प्रति तुम्हारा जो आकर्षण है, वह अभी बहुत उत्कट नहीं है। पर क्या करूँ ? दाम्पत्य जीवन में तो किसी अन्य के प्रति रत्ती भर आकर्षण भी सह्य नहीं होता।'

'तुम मुझे कुलटा समझते हो, पर मुख से मुझे कुलटा नहीं कहते, यह तुम्हारी कृपा है, यह तुम्हारी उच्च संस्कृति का परिणाम है। इसके लिए मैं तुम्हें हृदय से धन्यवाद देती हूं। पर कुलटा होकर मैं तुम्हारे घर पर नहीं रहूँगी। इस विशाल पृथ्वी पर मुझे भी कहीं न कहीं स्थान मिल ही जायगा। यदि कहीं रह कर अपना गुजर कर सकी, तो अच्छा ही है। अन्यथा, गंगा माता तो हैं ही। कितनी दुखिया नारियों को गंगा माता की गोद में शरण मिली है। मुझे भी वे अवश्य शरण देंगी। पर यह याद रखना, तुम्हारी निगाहों में गिर कर मैं तुम्हारे घर में एक क्षण के लिये भी नहीं रह सकूंगी। स्त्री जब किसी पुरुष का हाथ पकड़ती है, तो अपना सर्वस्व उसे दे देती है। अपना सर्वस्व देकर उस घर की वह स्वामिनी बन जाती है। बारह साल मैं तुम्हारे पास रही, स्वामिनी बन कर, तुम्हारे घर की भी और तुम्हारे हृदय की भी। पर जब एक बार मैं तुम्हारी निगाहों में गिर गई, तो मैं भार बन कर तुम्हारे घर पर नहीं रह सकती।'

लता की आंखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। उसे न रोना आ रहा था, और न घबराहट के ही कोई चिन्ह उसके चेहरे पर थे। आवेश में भरी हुई वह कहती जा रही थी—

'यदि नियति को यही मंजूर है, तो यही सही। तुम मुझे कुलटा समझो, और मैं तुमसे चिमटी बैठी रहूं, यह मुझसे नहीं होगा।'

'तो तुम सोचती क्या हो ?' विनोद ने प्रश्न किया।

'मैं क्या सोचती हूं, अब इससे तुम्हें क्या ? समझ लो, मैं तुम्हारे लिए मर गई। बारह साल तुम्हारे घर पर सुखपूर्वक रही, तुमसे मैंने अगाध प्रेम पाया। मैं तृप्त हूँ, पूर्णतया तृप्त। तृप्ति की यह अनुभूति ही मेरे जीवन का सम्बल बन कर रहेगी।'

'देखो, लता ! इस सोने की गृहस्थी को इस प्रकार नष्ट न करो। मैं तुम्हें कुलटा नहीं समझता। जो चीज एक बार टूट जाती है, उसका दुबारा जुड़ना कठिन हो जाता है। रानी और मुन्ना का खयाल करो। उनका क्या बनेगा ?'

'मैं उनका बोझ तुम्हारे सिर पर नहीं डालूंगी। वे मेरे साथ रहेंगे। जो रूखा-सूखा उनकी मां खाएगी, वही खाकर वे भी अपना पेट भर लेंगे।'

'तुम मुझ पर इतना अत्याचार क्यों करती हो ? व्यर्थ में मेरी और अपनी बदनामी न करवाओ। लोग क्या कहेंगे ? बेकार अपने घर को छीछालेदार न कराओ।'

'तो फिर मैं क्या करूँ ? तुम्हारी नजरों में गिर कर तुम्हारे टुकड़ों पर जीना तो मेरी कल्पना से भी बाहर है।'

'तुम मेरी नजरों में गिरी नहीं हो। हां, मेरे मन में सन्देह का अंकुर अवश्य उत्पन्न हो गया है। उसे नष्ट होने का मौका दो। अपने घर को इस प्रकार उजाड़ो नहीं। तुम दुखी रहो, और मुन्ना और रानी दुखी रहें, यह मैं कभी सहन नहीं कर सकता। तुम मिसेज विनोद की स्थिति में घर पर रहो, तीन-चार महीने बाद तो मैं लौट ही आऊँगा। शायद एक बार फिर तुम मेरी बन सको, केवल मेरी। इस फलती-फूलती बगिया को इस ढंग से उजाड़ दोगी, तो फिर इसे सरसब्ज करना कठिन हो जायगा। केवल चार महीने प्रतीक्षा करो। यदि इस बीच में मेरा मन शान्त हो गया, मेरा अन्तर्दाह नष्ट हो गया, तो हम फिर पहले के समान एक साथ रहेंगे। तुम मेरी होगी, और मैं तुम्हारा। चार महीने का समय कम नहीं होता। यदि वीरेन्द्र के प्रति तुम्हारा कोई असामान्य भाव है, तो इस बीच में वह

नष्ट हो जायगा। अलग रह कर तुम्हें मेरी कीमत मालूम होगी, और मुझे तुम्हारी। कुछ समय तक अलग रह कर हम दोनों एक-दूसरे के अधिक नजदीक आ जाएँगें।'

'मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊं, कि मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी। भविष्य की कौन जानता है? बाद में भी तुम कभी मेरा विश्वास कर सकोगे, इसका क्या भरोसा है।'

'यह मत कहो। तुमसे अलग रह कर मेरी क्या दशा होगी, इस बात की कल्पना से भी मेरा चित्त उद्विग्न हो उठता है। तुम मुझे मौका दो, इस अन्तर्दाह को शान्त कर सकूँ। इतने दिन मुझ से अलग रह कर तुम भी मेरे अभाव को अधिक उत्कट रूप से अनुभव करने लगोगी। यह मत भूलना, मन सर्वव्यापी होता है। हजारों मील दूर बैठे हुए भी तुम्हारे मन का भाव मुझ से छिपा हुआ नहीं रहेगा। जिस क्षण मुझे मालूम होगया कि अब तुम केवल मेरी ही हो, मैं तुरन्त वापस लौट आऊंगा।'

'और यदि तुम्हें ऐसी अनभूति नहीं हुई?'

'फिर तो हमारा अलग हो जाना ही श्रेयस्कर है। पर ऐसा होगा ही क्यों? मुझे तुम पर अगाध विश्वास है। हमारे जीवन में यह कैसा दारुण काण्ड उपस्थित होगया है! इसका अन्त होना ही चाहिये। इसका अन्त करने का यही उपाय सबसे अच्छा है।'

(११)

विनोद का जहाज बारह जून को बम्बई से चलता था। आठ जून को फन्टियर मेल से उसने मेरठ से प्रस्थान किया। लता उसे छोड़ने के लिये स्टेशन तक आई। वह चाहती थी, बम्बई तक उसके साथ जाए। पर विनोद ने कहा—इतनी गरमी में बम्बई जाकर क्या करोगी? जब तीन-चार मास के लिये अलग ही रहना है, तो तीन-चार दिन में क्या फर्क पड़ेगा। लता ने कहा, दिल्ली तक तो साथ चली चलूँ, वहाँ गाड़ी दो घण्टे ठहरती है। अगली गाड़ी से मेरठ लौट आऊंगी। पर विनोद इसके लिये भी तैयार नहीं हुआ। उसने कहा—जब अलग ही रहना है, तो तीन-चार घण्टे और

साथ रह कर कर ही क्या होगा। लता की आँखों में आँसू आगये। इतने दिनों से जिस वेदना को वह हृदय में छिपाये हुए थी, वह अकस्मात् फूट पड़ी। उसने रोते रोते कहा—

'तो क्या तुम सचमुच मुझे छोड़े जा रहे हो? मेरे साथ एक क्षण भी बिताना तुम्हें भारी प्रतीत होता है। हे भगवान्, अब क्या होगा!'

'नहीं; ऐसा मत सोचो। मैं अवश्य लौटकर आऊंगा। तीन महीने की छुट्टी ली है। दसहरे से पहले तो मुझे लौट ही आना है।'

'जाने वाले को कौन रोक सकता है। तुम जहाँ रहो, सुखी रहो। यदि तुम्हें मेरे बिना सुख मिल सकता है, तो मैं क्यों तुम्हारे साथ चिमटी रहूँ।'

फन्टियर मेल मेरठ सिटी के स्टेशन पर आ खड़ी हुई। कुली ने सब असबाब गाड़ी पर चढ़ा दिया। स्टेशन पर गाड़ी केवल तीन मिनट ठहरती थी। असबाब रखते-रखते गाड़ी ने सीटी दे दी। लता ने कहा—'तो अब चलती हूं। तुम अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। पत्र लिखते रहना। अपना पता जरूर लिखना। यदि पता भी नहीं लिखोगे, तो मैं चिट्ठी कैसे भेज सकूंगी।'

गाड़ी चल पड़ी। जब तक वह आँखों से ओझल नहीं होगई, लता उसी की ओर एक टक देखती रही। गाड़ी के अदृश्य हो जाने पर वह अपने घर लौटी, और बिस्तरे पर पड़ कर फफक-फफक कर रोने लगी। अब वह घर में बिलकुल अकेली थी। बच्चे स्कूल में थे, और पति विदेश में। वह अपना समय कैसे बिताती। रामू और खानसामा अब भी नौकरी में थे। पर उन्हें भी कोई काम न था। वे किसके लिये भोजन बनाते, किसकी खिदमत करते। लता को न भूख लगती थी, न प्यास। वह दिन भर चुपचाप पड़ी रहती, और डाकिये की राह देखती रहती। दिन बीतते गये, पर विनोद का कोई पत्र उसे नहीं मिला। १५ जून का दिन आगया। लता को विश्वास था, आज उसे विनोद का पत्र अवश्य मिलेगा। वे ८ जून को मेरठ से चले थे। ९ तारीख को बम्बई पहुँचे होंगे। वह सारा दिन सफर

की थकान मिटाने में बीत गया होगा। दस जून को उन्हें बहुत काम रहा होगा। थामस कुक एण्ड सन्स के दफ्तर में गये होंगे, सब सर्टिफिकेट दिखाये होंगे। कई जरूरी चीजें भी उन्हें खरीदनी थीं। कई मित्रों से भी मिलना था। इन कामों में दस जून का दिन भी बीत गया होगा। पर ग्यारह तारीख को तो उन्होंने अवश्य ही मुझे पत्र लिखा होगा। यदि ग्यारह को नहीं, तो जहाज चलने से पूर्व बारह को तो अवश्य ही कुछ लाइनें लिखकर एक कार्ड लेटर बक्स में डाल दिया होगा। जहाज तो बारह की सुबह ही बम्बई से चल पड़ा होगा। पत्र के बम्बई से मेरठ पहुँचने में दो दिन लगते हैं। उनकी चिट्ठी मुझे कल अवश्य मिल जानी चाहिये थी। पर पोस्ट आफिस में देर लग ही जाती है। एक दिन की देरी तो मामूली बात है। आज की डाक से उनकी चिट्ठी अवश्य ही आयगी। लता इसी तरह की उधेड़-बुन में थी कि पोस्टमैन आया और डाक डालकर चला गया। लता उत्सुकतापूर्वक उठी, और डाक को देखने लगी। दो एक साप्ताहिक अखबार थे और एक मासिक पत्रिका। चिट्ठी कोई नहीं थी। कटे हुए वृक्ष के समान लता सोफे पर गिर पड़ी और फफक-फफक कर रोने लगी। वह सोचने लगी, उन्होंने मेरा त्याग कर दिया है। मुझे कुलटा और पापिनी जो समझते हैं। बम्बई से जहाज पर बैठकर चले गये, और मुझे एक पत्र तक भी नहीं लिखा। रोज सहेलियाँ आती हैं, पूछती हैं, भाई साहब का कोई पत्र आया? उन्हें क्या जवाब दूं? कुसम कह रही थी, तुम यूरोप क्यों नहीं गई? सब तैयारियाँ कर चुकी थी, लण्डन का टिकट भी खरीद लिया था। क्या बात होगई, जो आखरी मिनट पर इरादा बदल गया? दस बहाने बनाकर सहेलियों को टाल देती हूं। कह देती हूं, अचानक एक ऐसा खर्च आ पड़ा कि दो आदमियों के सफर के लायक पैसा नहीं रहा। पर इन बातों पर कौन विश्वास करेगा। सब जानते हैं, पैसे की हमारे घर में कमी नहीं है। उन्हें अच्छा वेतन मिलता है, और पुस्तकों की रायल्टी से भी खासी अच्छी आमदनी है। अब अपनी सहेलियों से कैसे कहूं कि उन्होंने कोई पत्र तक भी नहीं लिखा। वे मन में क्या समझेंगी? उन्हें तो घर की इज्जत का जरा

भी ध्यान नहीं है। यदि मुझ से कोई सम्बन्ध नहीं रखना था, तो मुझे कहीं चले क्यों नहीं जाने दिया ? यदि कहीं और चली जाती, तो इस तरह छीछालेदार तो न होती।

लता इस प्रकार चिन्तामग्न थी, कि कुसुम आ गई। उसने कहा—

'क्यों बहन, क्या कर रही हो ? भाई साहब का कोई पत्र आया ? वे तो अब तक अदन पहुँच गये होंगे ?'

'हाँ, आज तार आई थी, बम्बई से भेजी थी।'

'तार आने में इतनी देर कैसे लग गई ? वे तो १२ जून को बम्बई से चले थे न ?'

'हाँ, बहन, तार में लिखा है, सब राजी खुशी है, काम की अधिकता के कारण पत्र नहीं लिख सके। अदन से चिट्ठी पोस्ट करेंगे। सोचती हूं, कुछ दिनों के लिए मसूरी हो आऊँ। यहाँ अकेले दिल नहीं लगता। कोई काम भी तो नहीं है। मसूरी में बच्चों से मिल कर तबियत बहल जायगी।'

'मसूरी कब जाने का विचार है ?'

'सोचती हूँ, आज ही रात की गाड़ी से चल दूँ। मेरे लिए जैसा मेरठ, वैसी ही मसूरी। मसूरी जाकर यहाँ की गरमी से तो बच जाऊँगी।'

लता ने रामू और खानसामा को बुलाया। उनसे कहा, मैं मसूरी जा रही हूँ। एक महीना वहीं रहूँगी। वर्षा शुरू होने पर जुलाई में घर लौटूँगी। तुम दोनों को घर गये बहुत दिन हो गये, एक महीने की छुट्टी मना लो। मुमकिन है, मसूरी में अधिक दिन लग जाएँ। यदि ऐसा हुआ, तो तुम्हें चिट्ठी लिख दूँगी।

'तो मकान पर कौन रहेगा, हजूर !' रामू ने प्रश्न किया।

'हाँ, यह भी ठीक है। मकान को खाली छोड़ना भी तो उचित नहीं। अच्छा, रामू तुम मकान पर रहो। सब चीजों की ठीक तरह से देखभाल करते रहना।'

पोस्ट आफिस को डाक के बारे में आदेश देकर लता मसूरी के लिए

चल पड़ी। जून में मसूरी में वहुत रौनक रहती है। सव होटल भरे हुए थे, पर लता को मलवील होटल में एक सिंगल रूम मिल गया, भोजन के साथ दस रुपये रोज पर। वह वहाँ ठहर गई। साँझ को जव वह माल रोड पर सैर करने के लिए निकली, तो वहाँ की चहल-पहल देखकर उसका चित्त कुछ प्रसन्न हुआ। अगले दिन इतवार था। सुवह होते ही वह कान्वेन्ट स्कूल गई, और वच्चों को अपने साथ होटल में ले आई। माँ से मिलकर छोटा मुन्ना वहुत प्रसन्न हुआ। वह उसे क्षण भर के लिए भी नहीं छोड़ता था। रानी ने पूछा—'डैडी नहीं आये ?'

'वे विलायत गये हैं, चार महीने में लौटेंगे। तुम्हारे लिये वहुत सी चीजें लायेंगे, खिलौने पुस्तकें और मिठाइयाँ।'

खिलौनों की वात सुन कर वच्चे खुश हो गये, और माँ से विलायत के वारे में पूछने लगे। साँझ के समय लता वच्चों को स्कूल छोड़ आई, और उन्हें समझा दिया, कि अगले इतवार को वह फिर उन्हें घर ले आयगी। अभी उसे एक महीने मसूरी रहना है। उन्हें जिस चीज की इच्छा हो, लिस्ट वना लें। अगले इतवार को सव चीजें खरिदवा देगी।

वच्चों से मिलकर लता का उद्वेग कुछ कम हुआ। उसने सोचा, चार महीने वीतते कितनी देर लगेगी। अक्टूवर के शुरू में तो वे लौट ही आएँगे। तव तक यदि मसूरी ही रहती रहूँ, तो क्या हर्ज है। सप्ताह में एक दिन वच्चे घर आ जाया करेंगे, उनसे दिल वहलता रहेगा। मसूरी में मुझे जानता ही कौन है ? यहाँ कौन पूछेगा, कि उनका पत्र आया है या नहीं। परिचितों और मित्रों के सामने अपना दुख उमड़ आता है। यहाँ स्त्रियाँ खुली घूमती फिरती हैं। सैर सपाटे में समय अच्छी तरह वीत जायगा। होटल में और भी कई ऐसी स्त्रियाँ ठहरी हुई हैं, जो अकेली हैं। उनसे साथ वन जायगा। मेरठ जाकर क्या करूँगी। रामू घर का पुराना नौकर है। उसके रहते हुए किसी चीज का नुकसान नहीं होने पायगा। खानसामा को छुट्टी दे दूँगी। जव वे यूरोप से लौट आएँगे, तव उसे फिर रख लेंगे।

मसूरी में लता के दिन आराम से कटने लगे। वह अब प्रसन्न थी। उसका मानसिक सन्ताप बहुत कुछ कम हो गया था। वह सुबह-शाम सैर करने जाती, और कभी-कभी सिनेमा भी देख आती। माल रोड पर घूमते हुए उसे अपनी कई सहेलियाँ भी मिल गई थीं, जिनके साथ उसने कालिज में शिक्षा प्राप्त की थी। वह उन्हें अपने पास बुलाती, और उनके घर चाय पीने के लिए जाती। मसूरी में पिकनिक के स्थानों की कमी नहीं है। लता कभी कम्पनी बाग जाती, और कभी लाल टिब्बे पर चढ़कर हिम से आच्छादित पर्वत शिखरों का दृश्य देखती। केमटी नदी के जल प्रपात को भी वह देख आई थी। इन सब में उसका समय मजे से बीत रहा था। पर विनोद की याद उसे हर समय बनी रहती थी। उसे मेरठ से गये एक महीना बीत चुका था, पर अब तक उसका एक भी पत्र लता को नहीं मिला था। वह सोचती थी, अब तो वे लण्डन पहुँच गये होंगे। जहाज ने २२ जून को जिनीवा पहुँचना था। वहां से लण्डन का रास्ता केवल दो दिन का है। यदि रास्ते में कहीं दो-तीन दिन ठहर भी गये, तो भी २६ या २७ जून तक तो वे अवश्य ही लण्डन पहुँच गये होंगे। एअर मेल से पत्र भेजते, तो अब तक यूरोप से भी उनके कई पत्र मुझे मिल गये होते। मेरठ के पोस्ट मास्टर को उसने कई पत्र लिखे। पर विनोद का कोई पत्र आया होता, तब तो वह उसे मसूरी के पते पर रीडायरेक्ट करता। लता परेशान थी, वह किस पते पर विनोद को पत्र लिखे। वे कुशल तो हैं, कहीं उनके अन्तर्दाह ने उन्माद का रूप तो धारण नहीं कर लिया है। वह उन्माद कितना भयंकर था। उसका ध्यान आते ही वह भयभीत हो जाती थी। पर मसूरी के मस्त वातावरण में रहकर उसे शान्ति मिलती थी। अपनी सहेलियों से मिलकर और सुबह शाम सैर करके उसका मन आश्वस्त हो जाता था।

उसके दिन इसी तरह से कट रहे थे, कि एक दिन उसकी सहेली मिसेज़ वर्मा ने उसे कहा—'मिसेज़ विनोद, हैकमन्स होटल में आज बहुत बढ़िया प्रोग्राम है। सौन्दर्य प्रतियोगिता होगी, और उसमें यह निश्चय

किया जायगा, कि सबसे सुन्दर महिला कौन सी है। सौन्दर्य प्रतियोगिता में जो सर्वप्रथम आयगी, उसे 'मिस मसूरी' की उपाधि दी जायगी। तुम भी इस प्रतियोगिता में क्यों भाग नहीं लेतीं ?'

'मजाक न करो, बहन ! दो बच्चों की मां बन चुकी हूँ। उमर ढलनी शुरू हो गई है। इन तमाशों से अब मुझे क्या मतलब ?'

'ऐसा मत कहो, मिसेज़ विनोद ! अभी तुम्हारी उमर ही क्या है ? सच पूछो, तो तीस साल की आयु से पहले तो स्त्री का सौन्दर्य निखरता ही नहीं है। मैं शर्त बदती हूँ, यदि तुम इस प्रतियोगिता में शामिल हो जाओ, तो अवश्य ही मिस मसूरी चुनी जाओ।'

'रहने दो, बहन ! अब ये बातें मुझे शोभा नहीं देतीं।'

'तो कम से कम इस प्रतियोगिता को देखो तो अवश्य। मैंने एक टेबल रिजर्व करा ली है, दो और सहेलियां साथ होंगी। एक टिकट तुम भी खरीद लो। हम चारों का साथ हो जायगा।'

तीन रुपया पन्द्रह आने देकर लता ने भी ब्यूटी कम्पिटीशन (सौंदर्य प्रतियोगिता) शो का टिकट खरीद लिया। रात के नौ बजे शो प्रारम्भ होता था। बीस मिनट पहले से ही हैकमैन्स का विशाल बॉल रूम दर्शकों से खचाखच भर गया था। बेयरा लोग हर टेबल पर आते, और आर्डर लेकर चले जाते। मिसेज़ वर्मा की टेबल पर आकर बेयरा ने पूछा, क्या आर्डर है हजूर। मिसेज़ वर्मा ने लता की ओर देखा। लता ने कहा—मेनू ले आओ। बेयरा मेनू कार्ड ले आया, जिस पर चाय, काफी, मिल्क शेक, शोकोला, केक, पेस्ट्री, सैंडविच, लेमनेड, आइसक्रीम आदि के रेट लिखे हुए थे। मिसेज़ वर्मा ने कहा—वार लिस्ट कहां है। बेयरा वार लिस्ट भी ले आया। लता ने उसे देखते हुए कहा – डिनर तो खा ही आये हैं। केक पेस्ट्री आदि की अब इच्छा नहीं है, पेट भरा हुआ है। मिसेज़ वर्मा ने पूछा—आप बीयर लेना पसन्द करेंगी, या ह्विस्की। लता ने कहा—मेरे लिये तो एक छोटा पेग काफी होगा। मिसेज़ वर्मा ने ह्विस्की के चार छोटे पेगों का आर्डर दे दिया।

नौ बजते ही आर्केस्ट्रा बजना शुरू होगया। नर-नारियों के बहुत से जोड़े रंगस्थली पर उतर आये, और एक दूसरे की कमर में हाथ डाल कर नृत्य करने लगे। लता धीरे-धीरे मदिरा की चुस्कियां भरती हुई इस दृश्य को देख रही थी। उसे वीरेन्द्र की बातें याद आने लगीं। पेरिस की किसी नाइट क्लब में वह बैठी होती, कोई युवक उसके पास आता, और उसे नृत्य के लिये आमन्त्रित करता। नाचना न जानते हुए भी वह उठ खड़ी होती, और उसके सहारे से रंगस्थली के चार चक्कर लगा कर अपनी टेबल पर आ बैठती। धीरे-धीरे वह नृत्य में प्रवीण हो जाती। यह जीवन भी कितना आकर्षक है। नर-नारियों के कितने जोड़े संसार के सब सुख-दुखों और चिन्ताओं को भुलाकर नृत्य में मग्न हैं। लता ने सिगरेट निकाल कर ओठों से लगा ली, और सिगरेट का टिन मिसेज़ वर्मा की ओर बढ़ाते हुए कहा—'लीजिये, आप भी सिगरेट लीजिये।'

'मैं तो सिगरेट नहीं पीती।'

'पी कर देखिये, गले को बड़ा अच्छा लगता है।'

लता के आग्रह से मिसेज़ वर्मा और उसकी सहेलियों ने भी सिगरेट ले ली, और धुंआ उड़ाते हुए नृत्य देखना शुरू कर दिया। शीघ्र ही उनके गिलास खाली हो गये। बेयरा सामने आकर खड़ा हो गया, और आर्डर की प्रतीक्षा करने लगा। लता ने मिसेज़ वर्मा की ओर देखा। मिसेज़ वर्मा ने फिर चार छोटे पेग लाने का आर्डर दे दिया।

नृत्य समाप्त हो चुका था। बाल रूम के मैनेजर ने लाउडस्पीकर पर सूचना दी, कि अब सौन्दर्य प्रतियोगिता शुरू होगी। निर्णायक होंगे, रानी साहिबा आफ किलसपुर, मिस्टर ग्रान्ट और मिस्टर वीरेन्द्र। वीरेन्द्र का नाम सुनकर लता चौंक पड़ी। फिर उसने सोचा, कोई और होगा। वीरेन्द्र तो इन दिनों पता नहीं कहां-कहां भटक रहा होगा। क्षण भर बाद तीनों निर्णायक अपनी-अपनी सीट पर आकर बैठ गये। लता ने देखा, सौन्दर्य प्रतियोगिता का अन्यतम निर्णायक वीरेन्द्र प्रोफेसर विनोद का मित्र वीरेन्द्र ही है। उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा

मसूरी कब आया, वह कहां ठहरा है, कब तक यहां रहेगा। वह तो सोचता होगा, इस समय मैं लण्डन में बैठी हूँ। अकस्मात् मुझे मसूरी में देख कर वह क्या कहेगा। उसे मैं क्या उत्तर दूंगी। यूरोप न जा सकने का क्या कारण उसे बताऊंगी। इसी बीच में सौन्दर्य प्रतियोगिता में भाग लेने वाली दस युवतियां रंगस्थली पर आकर खड़ी हो गईं। उनके शरीर अर्ध-नग्न थे। केवल जांघ और वक्षस्थल हलके कपड़े से ढंके हुए थे। सौन्दर्य प्रतियोगिता में भाग लेने वाली इन युवतियों ने आज अपने शरीरों का विशेष रूप से प्रसाधन किया था। हेयर ड्रेसर (केश प्रसाधक) के पास जाकर अपने बालों को नवीनतम ढंग से सेट कराया था। ब्यूटी लोशन, पाउडर, क्रीम, रूज, लिपस्टिक आदि का प्रभूत परिमाण में प्रयोग कर उन्होंने अपने रूप को शत गुण निखार लिया था। छोटी-छोटी नोट-बुकें हाथ में लेकर निर्णायक उनके सामने आये, और एक दृष्टि से उन्हें देख-कर अपने स्थानों पर जा बैठे। आर्केस्ट्रा बजने लगा, फिर नृत्य शुरू हो गया। वीरेन्द्र ने रानी साहिबा आफ किलसपुर को हाथ पकड़ कर उठाया, और उनके साथ नृत्य करने में मग्न हो गया। ह्विस्की के दो पेग पी चुकने पर लता के मन में अद्भुत स्फूर्ति उत्पन्न हो चुकी थी। अपने मानसिक सन्ताप पर उसने पूरी तरह से विजय पा ली थी, और वीरेन्द्र को एक अन्य युवती के साथ नृत्य करते देख कर वह सोच रही थी, कि वीरेन्द्र की निगाह अभी मुझ पर नहीं पड़ी है, यदि उसने मुझे देख लिया, तो अवश्य ही वह मुझे भी नृत्य के लिए निमन्त्रित करेगा। यूरोप नहीं गई, तो क्या हुआ। मसूरी क्या लण्डन और पेरिस से कम है? वीरेन्द्र के कारण मुझे भी आधुनिक नर-नारियों के इस प्रमोदमय जीवन की अनुभूति लेने का अवसर अवश्य प्राप्त होगा। नृत्य खतम हो गया। अब निर्णायकों ने युवतियों की टाँगों और जांघों का निरीक्षण किया। हाथ से टोह-टोहकर उन्होंने उनके जघनों को देखा। निरीक्षण समाप्त कर जब निर्णायक अपनी सीटों पर जा बैठे, तो फिर आर्केस्ट्रा बजना शुरू हुआ, और बीसियों जोड़े नृत्य के लिए रंगस्थली पर उतर आए। इसी बीच में वीरेन्द्र

की निगाह लता पर पड़ी। नृत्य का एक दौर समाप्त कर वह उसके पास आया, और बोला—

'हैलो, लता, तुम यहाँ कहाँ ?' सुरा के प्रभाव से वह आप और तुम के भेद को भूल गया था, और मिसेज विनोद को वह अब तक सदा 'भाभी' कह कर पुकारता रहा है, इसका भी उसे ध्यान नहीं रहा था।

'तुम यूरोप नहीं गईं। मेरा ख्याल था, इस समय तुम लण्डन की किसी नाइट क्लब में बैठी हुई होगी।

'वीरेन्द्र, तुम मसूरी कब आये ?' लता ने प्रश्न किया। बेयरा ने एक कुर्सी लाकर रख दी थी, और वीरेन्द्र उस पर बैठ गया था।

'सप्ताह भर हुआ, जब मसूरी आया था। नीचे की गरमी असह्य हो गई थी। सोचा, कुछ दिन मसूरी रह आऊँ। यहाँ काम ही क्या था ? न किसी से जान, न पहचान। रोज हैकमन्स में आकर डान्स करता था। किसी तरह से समय तो काटना ही था। शीघ्र ही यहाँ के लोगों से परिचय हो गया। इसी कारण आज यह बेगार करनी पड़ रही है। भाभी, तुम सौन्दर्य प्रतियोगिता में क्यों शामिल नहीं हुईं ?

'अरे, मैंने अपनी सहेलियों का तो तुम से परिचय कराया ही नहीं। ये हैं, मिसेज़ वर्मा। आप हैं, मिस सुषमा और ये हैं, मिसेज शुक्ला। ये हैं, मि० वीरेन्द्र, मशहूर जर्नलिस्ट। सात वर्ष बाद यूरोप और अमेरिका से लौटे हैं। जहाँ पहुँच जाते हैं, धूम मचा देते हैं। आज की प्रतियोगिता के निर्णायक हैं, इसी से समझ लीजिये।'

वीरेन्द्र ने सब के साथ हाथ मिलाये, और उनसे परिचय प्राप्त करने के कारण प्रसन्नता प्रगट की। फिर कहा—'आपके गिलास तो खाली हैं। ऐसे कब तक बैठे रहेंगे ?' उसने बेयरा को ह्विस्की लाने का आर्डर देते हुए कहा।

'नहीं, रहने दीजिये। बहुत पी चुके हैं, अधिक पीने की आदत नहीं है।' लता ने कहा।

'एक पेग मेरी तरफ से सही। अभी तो केवल बारह बजे हैं

प्रोग्राम दो बजे तक चलेगा । तब तक क्या खाली बैठी रहेंगी ?'

बेयरा ह्विस्की ले आया । उसका बिल चुकाते हुए वीरेन्द्र ने कहा—

'आप अपनी तो सुनाइये, यूरोप क्यों नहीं गईं ?

'रानी का पत्र आया था । लिखा था, स्कूल में मुन्ना की तबियत नहीं लगती । हर समय उदास रहता है । कमजोर भी हो गया है । मैंने सोचा, हम दोनों का विलायत जाना ठीक नहीं होगा । मैं मसूरी चली आई । मुझे देखकर मुन्ना खुश हो गया है ।'

डान्स समाप्त हो गया था । वीरेन्द्र उठ कर चला गया । इस बार युवतियों के वक्षस्थल, कटि प्रदेश आदि की जाँच की गई, और दर्शक-गण उत्सुकतापूर्वक निर्णायकों के फैसले की प्रतीक्षा करने लगे । पर अभी जाँच का काम समाप्त नहीं हुआ था । आर्केस्ट्रा बजने लगा, मिस पपीता ने नृत्य करके दिखाया । आध घण्टे तक कैबरे शो होता रहा । इस बीच में वीरेन्द्र फिर लता के पास आ बैठा, और बोला—

'मसूरी में आप ठहरी कहाँ हैं ?'

'मलबील होटल में । आप कहाँ ठहरे हैं ?'

'मैं सेवाय में हूँ । मलबील होटल का तो नाम नहीं सुना । वह कहाँ है ?'

'एक छोटा होटल है, कुलड़ी में है । १० नं० कमरे में ठहरी हूँ । कल आकर अवश्य मिलियेगा ।'

'विनोद का कोई पत्र आया ? वह अब कहाँ है ?

'लण्डन पहुँच गये हैं । इन दिनों कामनवेल्थ यूनिवर्सिटी कान्फ्रेन्स में व्यग्र हैं । अभी सैर-सपाटे की फुरसत नहीं मिली । कान्फ्रेन्स से निबट कर फिर कहीं आएँ-जायँगे ।'

'लण्डन में कहाँ ठहरे हैं । मुझे तो उसने कोई पत्र ही नहीं लिखा । शायद काम में ध्यान न रहा हो । मैं उसे कल ही पत्र लिखूँगा ।'

लता विनोद का कौन-सा पता बताती । उसे एकदम सूझ गया, और उसने कहा—

'लण्डन यूनिवर्सिटी के रजिष्ट्रार के मार्फत पत्र भेजने को लिखा था। शायद किसी होटल में स्थिर रूप से ठहरने का विचार नहीं है। पर वहां वे वड़े मजे में हैं।'

रात का एक वज गया था। अब प्रतियोगिता में भाग लेने वाले युवतियों का अन्तिम रूप से निरीक्षण किया गया। तीनों निर्णायकों ने मिल कर परामर्श किया, और अपना निर्णय सुना दिया। मिस आइलीन स्मिथ 'मिस मसूरी' चुनी गईं। दूसरा और तीसरा पारितोपिक मिसेज कुन्नी चोपड़ा और मिस मालती शुक्ला ने प्राप्त किया।

तीन कैवरे आइटम्स के वाद सौन्दर्य प्रतियोगिता का शो समाप्त हुआ। जुलाई का महीना था। आधी रात होते-होते आसमान में काली घटा घिर आई थी। मूसलाधार पानी पड़ने लगा था। शो खतम होने पर जब लता उठ कर चलने लगी, तो वीरेन्द्र उसके पास आया और बोला—

'चलिये, आपको होटल तक छोड़ आऊँ।'

'इसकी क्या जरूरत है। मेरा स्थान यहां से अधिक दूर नहीं है। कोई सात आठ मिनट का रास्ता है। चली जाऊँगी। छतरी और वरसाती मेरे पास हैं। कल आप किस समय आएँगे ?'

'कल दिन में तो मैं नहीं आ सकूंगा। एक जरूरी काम है। उत्तर प्रदेश के एक मिनिस्टर मसूरी आये हुए हैं, विड़ला हाउस में ठहरे हैं। उनकी प्रेस कान्फ्रेन्स में शामिल होना है। हां, आप सांझ का भोजन मेरे साथ कीजिये। वैठ कर दो घड़ी वातें करेंगे।'

'आप ही मलवील होटल आ जाइयेगा। होटल छोटा जरूर है, पर उसका भोजन वहुत अच्छा है।'

'संकोच न कीजिये। सांझ को आठ वजे मैं सेवाय में आपका इन्तजार करूंगा। मेरा रूम नम्वर ८७ है। पूछ लीजियेगा। तो यह पक्का रहा न ?'

'अच्छा, आऊंगी।'

(१२)

अगले दिन लता की नींद सुबह आठ बजे से पहले नहीं खुली। रात को देर से सोई थी, और कुछ ह्विस्की की खुमारी भी थी। वह कभी-कभी शराब पी जरूर लेती थी, पर उसे उसकी आदत नहीं थी। हैक्मन्स होटल में बैठ कर वह कुछ अधिक पी गई थी। इसलिए अगले दिन उसकी तबियत जरा खराब रही। उसने सोचा, डिनर के लिए वीरेन्द्र का निमन्त्रण स्वीकार कर मैंने बहुत गलती की है। जब प्रोफेसर साहब मेरा उससे मिलना पसन्द नहीं करते, तो मुझे उसके साथ अधिक मेल-जोल नहीं बढ़ाना चाहिये। हमारे घर में जो इतना दारुण काण्ड उपस्थित हुआ, उसकी जड़ वीरेन्द्र ही तो है। उसी के कारण वे इतने उद्विग्न रहे, महीनों तक अन्तर्दाह से जलते रहे। वे मुझे छोड़ कर अकेले विलायत चले गये, वीरेन्द्र के कारण ही तो न? उसके प्रति मेरे हृदय में कोई भी असामान्य भाव नहीं है। मैं स्वयं उससे मिलने-जुलने में कोई हर्ज नहीं समझती। पर उनकी खातिर यदि मैं उसके साथ सम्पर्क न रखूं, तभी अच्छा है। इससे मेरा बिगड़ता भी क्या है? वह मेरा कौन सगा है? जैसे और हजारों लाखों पुरुष हैं, वैसा ही वीरेन्द्र भी है। मैं उससे मेल-जोल क्यों बढ़ाऊँ?

वह होटल के दफ्तर में गई, और सेवाय होटल के साथ टैलीफोन मिलाया। वहाँ से जवाब मिला, वीरेन्द्र अपने कमरे में नहीं है, ताला बन्द है। लता ने दिन में तीन चार बार वीरेन्द्र को टैलीफोन करना चाहा, पर उसे सफलता नहीं हुई। अब वह क्या करती? उसने सोचा, एक चिट्ठी लिख कर भेज दूं, कोई कुली जाकर सेवाय के दफ्तर में दे आयगा। जब वीरेन्द्र होटल वापस लौटेगा, उसे मेरा सन्देश मिल जायगा। चिट्ठी में लिख दूंगी, मेरी तबियत खराब है, आज डिनर के लिये नहीं आसकूंगी। पर यदि तबियत अच्छी न होने की बात जानकर वीरेन्द्र स्वयं यहाँ आ गया, तो उससे कैसे पिण्ड छुड़ाउंगी। जब एक बार डिनर का निमन्त्रण स्वीकार कर चुकी हूँ, तो अच्छा है, आज सेवाय हो ही आऊँ। वीरेन्द्र देर तक तो मसूरी ठहरेगा नहीं, जल्दी ही वापस चला जायगा। फिर

उससे मेरा क्या सरोकार रह जायगा। उसे क्यों यह समझने का मौका दूं, कि मैं उससे बचने की कोशिश करती हूँ।

लता इस प्रकार विचार में मग्न थी, कि होटल का बेयरा आया, और बोला—'हजूर के लिये टेलीफोन आया है।' लता उठ कर दफ्तर में गई, और बोली—'हैलो, मैं लता बोल रही हूँ।'

'अच्छा, भाभी हैं। कहिये, आप अच्छी तो हैं। आज सायंकाल का निमन्त्रण भूल तो नहीं गईं।'

'निमन्त्रण तो नहीं भूली हूँ, पर आज मेरी तबियत ठीक नहीं है। यदि अपने निमन्त्रण को कलके लिये स्थगित कर दें, तो बहुत अच्छा हो।'

'क्यों क्या बात हैं?'

'कोई खास बात तो नहीं है। रात देर में सोई थी, इसीलिये आज कुछ थकान महसूस हो रही है।'

'मसूरी में रात को एक बजे से पहले सोता ही कौन है। कभी डान्स, कभी सिनेमा, कभी पार्टियां—यही तो यहाँ का जीवन है। इस प्रकार आप मसूरी का क्या मजा लेंगी। देखिये, आज जरूर आइये। मैं स्पेशल डिनर का आर्डर कर चुका हूं। आठ बजे से कुछ पहले ही आ जाइये। साढ़े सात बजे तक अवश्य पहुँच जाइये। मैं दफ्तर के बाहर आपकी प्रतीक्षा करूँगा।'

'सात तो बजने ही वाले हैं, इतनी जल्दी कैसे आ सकूंगी।'

'आप कोशिश तो कीजिये। पांच चार मिनट देर की कोई बात नहीं। जरा पहले आजायेंगी, तो बैठ कर इतमीनान से बातें करेंगे।'

'अच्छा, अभी आती हूँ।'

लता अपने कमरे में गई। कपड़े बदले, और शृंगार करने बैठ गई। सेवाय मसूरी का सबसे बढ़िया होटल है। वैभव, रूप, यौवन और सौन्दर्य की छटा वहाँ सदा बिखरी रहती है। लता ने सोचा, जब सेवाय में डिनर खाना है, तो शरीर का प्रसाधन व वस्त्र भी उनके अनुरूप ही होने चाहियें। सौन्दर्य में वह किस स्त्री से कम है। जरा से शृंगार से उसका

रूप भली भाँति निखर आयगा। उसने तबियत के साथ अपने केशों और मुखमण्डल का प्रसाधन किया, और बढ़िया साड़ी पहन कर रिक्शा पर बैठ गई। पन्द्रह मिनट में रिक्शा सेवाय पहुँच गई। वीरेन्द्र दफ्तर के आगे खड़ा हुआ उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। लता को देखकर उसने कहा—

'हेलो, लता, तुमने कल सौन्दर्य प्रतियोगिता में भाग क्यों नहीं लिया? गारण्टी करता हूं, मिस मसूरी का पद तुम्हें ही प्राप्त होता।'

'बेकार की बातें न बनाओ। यदि अकेले तुम्हीं निर्णायक होते, तो बात दूसरी थी।'

'नहीं, सच कहता हूं, भाभी! तुम्हें प्रथम पुरस्कार अवश्य प्राप्त होता।'

वीरेन्द्र लता को होटल के लॉन्ज में ले गया। वहाँ जाकर वे एक टेबल पर बैठ गये। वीरेन्द्र ने लता से कहा—

'डिनर में अभी पौन घण्टे की देर है। आप क्या पीएंगी? शैरी मंगाऊं?'

'नहीं, रहने दीजिये। रात की खुमारी अभी तक भी नहीं उतर पायी है। आपके आग्रह से कल एक पेग अधिक पी लिया था।'

'शैरी में तो कुछ हर्ज नहीं है। जरा तबियत ठीक हो जायगी। वह तो स्त्रियों का ही ड्रिन्क है।'

वीरेन्द्र ने बेयरा को बुलाया और एक गिलास शैरी व एक पेग स्काच ह्विस्की का आर्डर दे दिया। सुरापान करते हुए उसने कहा—

'रात को तो आपसे कोई बात हो ही नहीं सकी। निर्णायक का कार्य सुगम नहीं होता। उस ओर से ध्यान हटा कर आपसे बातें करने का मौका ही नहीं मिला। अच्छा, यह बताइये, आप यूरोप क्यों नहीं गईं? आपकी तो सीट भी रिजर्व होगई थी।'

'कोई खास बात नहीं हुई। आखिरी वक्त पर विचार बदल गया। सोचा, मुन्ना अभी बहुत छोटा है। स्कूल में उसकी तबियत नहीं लगती। देर तक माँ बाप को देखे बिना कहीं उदास न हो जाए। हम दोनों

विलायत जाने से खर्च भी बहुत हो जाता।'

'यूरोप न जाकर आपने अच्छा नहीं किया। नई दुनिया देखने के ऐसे अवसर बार बार नहीं आया करते। खैर, जो हुआ, सो हुआ। अब कहिये, अकेले कैसे समय बिताती हैं। अकेले रहते हुए तबियत तो नहीं लगती होगी।'

'सब आदत पड़ जाती है। सुबह शाम घूमने चली जाती हूँ। कई नई सहेलियाँ भी बन गई हैं। गप शप करते हुए समय अच्छी तरह बीत जाता है।'

'मसूरी रहते हुए आप डान्स क्यों नहीं सीख लेतीं? अच्छा मौका है। यहाँ नृत्य सीखने के दो तीन स्कूल हैं। दस दिन में आप इस लायक हो जाएंगी कि बाल रूम में डान्स कर सकें। सांझ का समय बहुत अच्छी तरह बीत जाया करेगा। नृत्य न केवल एक उत्कृष्ट कला है, अपितु आमोद प्रमोद का भी उत्तम साधन है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिये भी यह बहुत उपयोगी है। आप डान्स अवश्य सीखें।'

'देखिये, आपके भाई साहब यूरोप गये हुए हैं। मैं यहाँ अकेली हूं। उनके पीछे एक नई आदत डाल लेना मैं उचित नहीं समझती। पता नहीं, वे इसे पसन्द करेंगे या नहीं।'

'वे क्यों नहीं पसन्द करेंगे? लण्डन में रहते हुए उन्होंने तो डान्स करना शुरू भी कर दिया होगा।'

'नहीं, मैं ऐसा नहीं समझती। दर्शनशास्त्र का अध्ययन करते-करते वे बहुत गम्भीर हो गये हैं। ऐसी बातों के प्रति उन्हें जरा भी रुचि नहीं है।'

'पर इस विषय में आपकी रुचि तो दूसरी है। दाम्पत्य जीवन का यह रूप कितना हास्यास्पद है। धृतराष्ट्र अन्धा था, तो गान्धारी ने भी अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली थी। आप तो गान्धारी का अनुसरण कर रही हैं। विनोद को नृत्य पसन्द नहीं, इसलिये आप भी उसे नहीं सीखेंगी। अरे, आपका गिलास तो कभी का खतम होगया। डिनर शुरू होने में अभी देर है। ह्विस्की का छोटा पेग ले लीजिये। भोजन से पहले पीने से अच्छा रहता है। खूब भूख लग आती है।'

वीरेन्द्र ने ह्विस्की के लिये वेयरा को आर्डर दे दिया। ह्विस्की की चुस्कियों के साथ सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए वीरेन्द्र ने कहा—

'डिनर के वाद सेवाय में डान्स का भी प्रोग्राम है। यदि आपने डान्स सीख लिया होता, तो आपको भी कितना मजा आता।'

'तो आप सिखा दीजिये न?'

'पर आप तो गान्धारी के समान आँखों पर पट्टी वाँधे वैठी हैं। दाम्पत्य जीवन का यह रूप कितना वीभत्स है। यदि पति प्याज नही खाता, तो पत्नी भी प्याज से परहेज करे। यदि पति रात को जल्दी सो जाता है, तो स्त्री भी जल्दी सोने की आदत डाले। क्या नारी का कोई अपना स्वतन्त्र जीवन नहीं है? क्या उसका एकमात्र प्रयोजन वच्चों का पालन पोषण और पति की सेवा करना ही है। मध्य-युग वीत चुका, सामन्तशाही का अन्त हो गया, दास दासियाँ स्वतन्त्र हो गये, राजाओं के निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन का अन्त होकर जनता का शासन स्थापित हो गया। पर घरों में अभी तक भी पति का निरंकुश ासन कायम है, स्त्री उसकी प्रजा है, उसकी दासी। पति के सामने न उसकी कोई इच्छा है, न कोई स्वतन्त्र सत्ता। आज की स्त्री अपने को स्वतन्त्र समझती है, पर वस्तुतः वह अव भी गुलाम है। वह परदा वेशक नहीं करती, पर पुराने जमाने की दासियाँ भी तो परदा नहीं किया करती थीं।'

'वैवाहिक जीवन के विषय में आपके जो विचार हैं, मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। आप भूल में हैं, पत्नी पति की दासी नहीं होती। वह अपने घर की स्वामिनी होती है। सामूहिक जीवन में मनुष्य को आंशिक रूप से अपनी स्वतन्त्रता को कुर्वान करना ही पड़ता है। राज्य संस्था में, धार्मिक समाज में, आर्थिक संगठनों में—सर्वत्र मनुष्य को अपनी स्वतन्त्र इच्छा को मर्यादित करना पड़ता है, क्योंकि सामूहिक जीवन का यही मूलभूत तत्त्व है। यदि सव मनुष्य स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करने लगें, तो समाज की सत्ता ही सम्भव नहीं रहेगी। आपको दाम्पत्य जीवन का जरा भी अनुभव नहीं है, इसीलिये ऐसी वातें करते हैं।'

'यह बात नहीं है, भाभी ! अब तक मैंने विवाह नहीं किया। किसलिये? क्योंकि मैं किसी स्त्री को अपनी दासी बना कर नहीं रख सकता। विवाह के विषय में भी लोगों को कितने भ्रम हैं। लोग समझते हैं, विवाह का मूल प्रेम है। कितनी गलत बात है ! भारत में तो पति-पत्नी प्रेम को जानते तक नहीं। माता-पिता ने जहां-कहीं रिश्ता तय कर दिया। मालूम कर लिया, लड़की का रंग साफ है, कुछ पढ़ी-लिखी भी है, घर के काम-काज में चतुर है, लड़की वाले विवाह पर अच्छा खर्च करेंगे, बरात का आतिथ्य करने में कोई कोर कसर नहीं उठा रखेंगे, दहेज भी माकूल देंगे। बस, रिश्ता तय होगया, और दुलहन घर में आ गई। अब पति के लिये आवश्यक है, कि पत्नी के साथ प्रेम करे। और पत्नी, वह पति के चरणों की पूजा करती रहे। इसी को आप प्रेम कहती हैं न? पाश्चात्य देशों में भी प्रेम का इसी प्रकार उपहास होता है। विवाह से पहले वहां कोर्टशिप चलती है, स्त्री-पुरुष कुछ दिनों तक प्रेम की अनुभूति प्राप्त करते हैं। पर जब विवाह होगया? प्रेम समाप्त हो जाता है, चखचख शुरू हो जाती है। तलाक के लिये दरख्वास्तें दी जाती हैं। स्त्री और पुरुष—दोनों अन्य पुरुषों व स्त्रियों की ओर भागने लगते हैं। अमेरिका में हिसाब लगाया गया है, कि ३३ प्रतिशत से अधिक विवाहों का अन्त तलाक में होता है। मेरे से पूछिये, तो जो ६६ प्रतिशत विवाह सफल समझे जाते हैं, उनमें भी असन्तोष अशान्ति और जलन की आग सुलगती रहती है। पर तलाक के लिये भी तो साहस चाहिये। सब लोगों में यह हिम्मत ही नहीं होती, कि वे विवाह-बन्धन को तोड़ कर स्वतन्त्र हो जाएं। बच्चे उन्हें एक साथ जीवन बिताने के लिये विवश किये रखते हैं। यदि बच्चों का सवाल न हो, तो मुझे विश्वास है, कि दस फीसदी विवाह भी कायम न रह सकें।'

डिनर की घण्टी बज गई। वीरेन्द्र ने कहा—

'चलिये, डिनर तैयार है। पहले भोजन से निबट लें। फिर डान्स में भी जाना है।'

लता और वीरेन्द्र सेवोय होटल के विशाल डाइनिंग हाल में अपने

लिये रिजर्व की गई टेवल पर जा वैठे। वेयरा ने इस टेवल को शौक के साथ सजाया था, क्योंकि वीरेन्द्र जैसे जिन्दादिल मेहमान ने दो आदमियों के लिये स्पेशल आर्डर जो दिया था। टेवल पर फूलों के दो गुलदस्ते रखे हुए थे, एक गुलदस्ता लाल फूलों का था और दूसरा श्वेत फूलों का। वेयरा ने झुककर लता और वीरेन्द्र को सलाम किया और सूप की प्लेटें लाकर रख दीं। भोजन खाते हुए लता ने कहा—

'सेवाय का भोजन तो वहुत अच्छा है। मलवील होटल में ऐसा खाना नहीं वनता।'

'तो आप सेवाय में ही क्यों नहीं आ जातीं। वहां कितना रुपया रोज देती हैं?'

'दस रुपये रोज।'

'मैं आपको इसी रेट पर यहां कमरा दिलवा दूंगा। सेवाय के मालिक मेरे मित्र हैं, वे मेरी वात कभी नहीं टालेंगे। वैसे तो इस होटल का रेट अधिक है, पर वे आपके साथ अवश्य रियायत करेंगे। आप जैसी महिलाओं से ही वड़े होटलों की शोभा होती है। सेवाय में कुछ कमरे ऐसे भी हैं, जिनका रेट कम है। उनमें और सव आराम हैं, केवल स्नान के लिये अंग्रेजी टव नहीं हैं।'

'अंग्रेजी टव तो मलवील होटल में भी नहीं हैं।'

'तो आपके लिये कोई भी फर्क नहीं पड़ता। यहां आपको सोसायटी भी अच्छी मिलेगी। आप अकेली हैं, आपका दिल लगा रहेगा। आप मसूरी कव तक रहेंगीं?'

'अभी कुछ निश्चित नहीं है।'

'आप मेरठ जाकर करेंगी भी क्या? यहीं रहिये। भाई विनोद तो विलायत में है, वच्चे स्कूल में हैं। मेरठ भी आपको अकेले ही रहना है। विनोद के वापस लौटने तक यहीं रहिये।'

'अच्छा, सोचूंगी।'

'इसमें सोचने की क्या वात है? हां, आप डान्स अवश्य सीख

लीजिये। इससे सोसायटी में मूव करने में बहुत सहायता मिलती है। डिनर के बाद बालरूम में चलेंगे। कैबरे के भी कुछ आइटम होंगे। मसूरी भी एक बहुत अच्छी जगह है। लण्डन और पेरिस की नाइट क्लबों के जीवन का कुछ आभास यहां मिल जाता है।'

डिनर समाप्त कर लता और वीरेन्द्र बालरूम में गये। वीरेन्द्र ने कहा—

'आप क्या पीएंगी ? ह्विस्की मंगा लेता हूं। असली स्काच ह्विस्की स्वास्थ्य के लिये बहुत उत्तम होती है। पता नहीं, भारत में लोग सुरापान को इतना बुरा क्यों समझते हैं। मात्रा में कोई भी चीज बुरी नहीं होती। मात्रा से बढ़ जाने पर तो दूध दही तक नुकसान करते हैं। यूरोप का सिद्धान्त तो यह है, दिन को खूब डट कर काम करो और रात को खुल कर मौज उड़ाओ। मैं भी इसी सिद्धान्त का अनुयायी हूं। दिन को काम करते-करते थक जाता हूं, और आधी रात तक नृत्य व सुरापन में मस्त रह कर शरीर की श्रान्ति और मन की क्लान्ति का अन्त कर देता हूं। रात को एक बजे पड़ कर सो जाता हूं, और सुबह आठ-नौ बजे तक पड़ा सोता रहता हूं।'

बेयरा ह्विस्की के दो पेग ले आया। सेवाय का बालरूम नर-नारियों से भरा हुआ था। कहीं तिल रखने को भी जगह नहीं थी। स्त्री पुरुषों की मण्डलियां टेबलों पर बैठी हुई सुरापान में व्यस्त थीं, और हंस हंस कर बातें कर रही थीं। ह्विस्की का एक पेग समाप्त कर लता में नई स्फूर्ति आ गई। सिगरेट का धुंआ उड़ाते हुए उसने कहा—

'आप कहते थे, इस बीसवीं सदी में भी नारी की स्थिति दासी से भिन्न नहीं है।'

'हां, मैं बिलकुल ठीक कहता हूं। लोग स्त्री को पता नहीं क्या समझते हैं। पहले वह पिता के अधीन रहती है, फिर पति के और फिर अपनी सन्तान के। उसका अपना स्वतन्त्र जीवन होता ही नहीं है। पति उस पर अपना एकाधिकार समझता है। वह किसी अन्य से हंसी बोली, और

उसे बुरा लगा। पुरुष इतनी मोटी सी बात क्यों नहीं समझ पाते, कि स्त्री की भी अपनी स्वतन्त्र इच्छा होती है। वे उसे अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति क्यों मानते हैं? तुम्हीं सोचो भाभी, यदि विनोद मुझे इस तरह तुम्हारे साथ बैठे देखें, तो क्या कहेंगे? उनका हृदय जलने लगेगा, एक दारुण अन्तर्दाह उनके अन्तस्तल को व्याप्त कर लेगा।'

'वे ऐसे नहीं हैं। मैं तुम्हारे साथ अकेली ताजमहल गई, रात भर बैठी तुमसे बातें करती रही, पर उन्होंने बुरा नहीं माना।'

'उनकी बात जाने दो। वे विद्वान हैं, दार्शनिक हैं। पर वे अपवाद-रूप हैं। साधारण तौर पर कोई भी पति यह सहन नहीं करता, कि उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष के साथ मैत्री रखे। स्त्री को इतनी भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है, कि वह किसी के साथ हँस बोल भी सके। यदि पति सहनशील हुआ भी, तो समाज तो स्त्री की स्वतन्त्रता को कभी भी सहन नहीं कर सकता।'

'विवाह बन्धन में बंध जाने के बाद न स्त्री को स्वतन्त्रता रहती है, और न पुरुष को। आपने सुना नहीं—प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाएं। विवाह का आधार प्रेम है, और प्रेम एक व्यक्ति के साथ ही हो सकता है।'

'यदि दाम्पत्य जीवन का आधार सचमुच प्रेम होता, तो मैं आपकी बात को स्वीकार कर लेता। पर असल में देखा जाए, तो विवाह एक ऐसा बन्धन है, जो स्त्री और पुरुष दोनों की स्वतन्त्रता का अपहरण कर लेता है। दाम्पत्य जीवन का आधार प्रेम न होकर आर्थिक हितों की एकता है। पुरुष कमाता है, स्त्री उसकी कमाई को खर्च करती है। वह पति के प्रति इसी कारण अनुरक्त रहती है, क्योंकि आर्थिक दृष्टि से वह उस पर निर्भर करती है। फिर देर तक साथ रहने के कारण उन्हें एक-दूसरे की आदत पड़ जाती है। कामवासना की भूख भी उन्हें एक-दूसरे के साथ बांधे रखती है। समाज ने यह मर्यादा निश्चित कर दी है, कि लैङ्गिक भूख को शान्त करने के लिए विवाह आवश्यक है। इस पर

तमाशा यह है, कि कितने ऐसे दम्पति हैं, जो असल में एक-दूसरे से अपनी इस क्षुधा की तृप्ति कर सकते हैं। प्रेम की अनुभूति तो विवाह के बाद रहती ही नहीं है। आपको याद है, उस दिन ताजमहल के उद्यान में आपने मुझ से कहा था, कि प्रेम सर्वव्यापी है, अनादि है, अनन्त है, वह हमारे हृदयों में स्थित हैं। हम अपने प्रेमी के रूप में उसे मूर्तरूप देते हैं, उसकी प्रतिमा बनाते हैं।'

'हाँ, मैं प्रेम का यही रूप सत्य समझती हूँ।'

'पर यह आपका भ्रम है। कभी लोग प्रतिमा-पूजन में विश्वास करते थे, यूरोप में भी और भारत में भी। पर अब तो सर्वत्र निराकार ब्रह्म की उपासना का जोर है। सन्त-महात्मा कहते हैं, सर्वव्यापी भगवान् की पूजा के लिए प्रतिमा की प्रतिष्ठा की क्या आवश्यकता है। ऐसे ही मैं कहूँगा, यदि प्रेम भी हमारे हृदयों में स्थित है, तो उसके लिए किसी व्यक्ति को हम प्रतिमारूप क्यों मानें? हम किसी को देखते हैं, किसी के सम्पर्क में आते हैं, हमारा मन बरबस उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। हम चाहते हैं, वह हमारा हो जाए, हम उसके हो जाएँ। बस, प्रेम इसी का नाम है। प्रेम को मूर्तरूप देने के लिए हमें ऐसे ही व्यक्ति की तलाश करनी होगी। और यह जरूरी नहीं, कि जिससे हमारा विवाह हो, वही वह व्यक्ति हो।'

आर्केस्ट्रा बजना शुरू हो गया था। नर-नारियों के कितने ही जोड़े नृत्य करने के लिए रंगस्थली पर उतर आये थे। वीरेन्द्र ने कहा—

'चलिए, हम भी डान्स करें।'

'पर मुझे तो डान्स आता नहीं।'

'इसकी क्या जरूरत है? नृत्य में पुरुष स्त्री को लीड करता है। आप चिन्ता न करें, मैं इस कला में प्रवीण हूँ। आप मेरे हाथ पकड़े रहें, जैसे मैं चलाऊँ, वैसे ही चलते रहें।'

वीरेन्द्र ने लता का हाथ पकड़ कर उसे उठा लिया। साड़ी संभालती हुई लता वीरेन्द्र के साथ रंगस्थली में उतर आई। वीरेन्द्र ने अपना एक

हाथ उसकी कटि में डाल लिया, और दूसरे से उसके हाथ को पकड़ लिया। लता का दूसरा हाथ स्वयमेव वीरेन्द्र के कन्धे पर चला गया, क्योंकि नृत्य करने वाली अन्य स्त्रियों ने भी अपने हाथ को इसी ढंग से रखा हुआ था। दस मिनट तक वीरेन्द्र का सहारा लेकर लता रंगस्थली का चक्कर काटती रही। जब आर्केस्ट्रा वन्द हुआ, तो वह उसका हाथ पकड़े हुए अपनी टेवल पर आ बैठी। वीरेन्द्र ने कहा—

'अब आप क्या पीएँगी। ह्विस्की मंगाऊँ ?'

'नहीं, रहने दीजिये। मुझे सुरा की आदत नहीं है, नशा हो जायगा।'

'तो शाम्पेन मंगा लेता हूँ। वह अधिक तेज नहीं होती। आपकी थकान मिट जायगी।'

वेयरा दो गिलास और शाम्पेन की एक वोतल ले आया। वीरेन्द्र ने उसे गिलासों में डाल दिया। शाम्पेन पीकर लता की थकान काफूर की तरह उड़ गई, और उसमें नई स्फूर्ति उत्पन्न हो गई। रंगस्थली में मिस पपित्ता मयूर-नृत्य कर रही थी। दर्शकगण उसकी कला पर मुग्ध होकर तालियाँ पीट रहे थे। सिगरेट सुलगाते हुए लता ने कहा—

'शाम्पेन तो वहुत उत्कृष्ट ड्रिन्क है। इसे पीते ही मेरी थकान न जाने कहाँ भाग गई।'

'तभी तो मैं कहता हूँ, हमारे देश के लोग न काम करना जानते हैं, और न मौज उड़ाना। वताइये, आपने ह्विस्की पी, शाम्पेन पी। क्या आप इससे पतित हो गईं ? दिन भर की थकी मांदी यहाँ आई थीं, अब ताजगी अनुभव करती हैं या नहीं ? आपको डान्स करना कैसा लगा ?'

'अच्छा लगा। यदि मैं भी आपकी तरह इस कला में प्रवीण होती, तो इसका और भी अधिक रसास्वाद कर सकती।'

'आप डान्स करते हुए संकोच न कीजिए। यह आमोद-प्रमोद का एक निर्दोष साधन है। यहाँ जो पचासों जोड़े नृत्य कर रहे हैं, क्या वे सब पतित हैं ? पुराने ढंग के दकियानूसी लोग हमें देख कर सोचते होंगे, हम सब कितने वेशर्म हैं। किसी स्त्री का हाथ पकड़ लिया, उसकी कमर में

बाँह डाल ली, और लगे बेशर्मों की तरह से थिरकने। पर यदि मैंने आपकी कमर में बाँह डाल दी, या आपने अपना हाथ मेरे कन्धे पर रख दिया, तो इससे क्या अनर्थ हो गया ?'

कैबेरे समाप्त हो गया था, और डान्स के लिए आर्केस्ट्रा फिर बजना शुरू हो गया था ? पड़ौस की टेबल पर राजा साहब कासिमपुर बैठे हुए थे, और देर से लता को घूर रहे थे। सेवाय में रहते हुए वे वीरेन्द्र से परिचित हो चुके थे। वे वीरेन्द्र के पास आये, और उसने राजा साहब से लता का परिचय कराया। राजा साहब ने लता से मिलकर प्रसन्नता प्रगट की और उससे नृत्य की अभ्यर्थना की। लता ने वीरेन्द्र की ओर देखा। वीरेन्द्र ने कहा—

'आप राजा साहब के साथ डान्स कीजिये। रानी साहिबा किलसपुर मेरा इन्तजार कर रही हैं। मैं उनके साथ डान्स करूंगा।'

राजा साहब कासिमपुर नृत्य-कला में पारंगत थे। लता उनके साथ रंगस्थली पर उतर गई। उसे नाचना नहीं आता था, पर राजा साहब के कुशल हाथ उसे भली भाँति संभाले रहे, और वह डान्स करने वाले अन्य जोड़ों के साथ-साथ रंगस्थली का चक्कर काटती रही। एक बार राजा साहब ने उसके कटि देश को जोर से दबा कर व अपने मुख को उसके मुख के अत्यन्त समीप ले जाकर धीरे से कहा—'कौन कहता है, आप नाचना नहीं जानतीं। आपतो इस कला में अत्यन्त प्रवीण हैं।' लता ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। राजा साहब और उत्साहित हुए, और उन्होंने अपनी छाती को लता की छाती के समीप ले जाते हुए कहा—'आज आपके साथ नृत्य करके बहुत आनन्द आया। कल मेरी कोठी पर पधारियेगा, साथ खाना खाएँगे।'

आर्केस्ट्रा बजना बन्द हो गया, और लता अपनी टेबल पर आ बैठी। राजा साहब ने भी वहीं आसन जमाया, और लता से बोले—'आप शाम्पेन तो पीती ही हैं। बेयरा को आर्डर दिये देता हूँ।'

'नहीं रहने दीजिये। मैं और नहीं पीऊँगी। अब घर जा रही हूँ।'

रानी साहिवा किलसपुर से विदा लेकर वीरेन्द्र भी लता के पास आ गया। इसी समय राजा साहब उठकर एक अन्य टेबल पर चले गये। लता ने वीरेन्द्र से कहा—

'तुमने किस जानवर के साथ मुझे भेड़ दिया था ?'

'क्यों क्या बात होगई ?'

'बदतमीज कहीं का। न जान न पहचान, मुझे लन्च के लिये कोठी पर बुलाता था। देखो, वीरेन्द्र, तुम प्रोफेसर साहब के मित्र हो। मैं तुम्हें अपना भाई समझती हूँ। तुम्हारे साथ उठना बैठना मुझे अच्छा लगता है। तुम्हारे साथ डान्स करने में भी मुझे कोई एतराज नहीं। पर भविष्य में किसी ऐसे जानवर के साथ मुझे अकेला न छोड़ देना।'

'क्या बात हुई ? तुम क्यों इतना बुरा मान गईं ?'

'कोई खास बात नहीं। अच्छा, अब चलती हूँ। बहुत देर होगई है, नींद आ रही है।'

'पर यह प्रोग्राम तो एक बजे तक चलेगा। अभी तो बारह भी नहीं बजे।'

'मैं अब बहुत थक गई हूँ, चलती हूँ। डिनर के लिये बहुत बहुत धन्यवाद !'

'चलो, मैं तुम्हें होटल तक छोड़ आऊँ ?'

'नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं। मैं सिंगल रिक्शा कर लूँगी।'

(१३)

दिल्ली से बम्बई जाते हुए रेल में विनोद का मन बहुत उदास रहा। उसे बार-बार लता की याद आती थी, और वह सोचता था, मैं भी कितना निष्ठुर हूँ, अपनी जीवन संगिनी के साथ मैंने घोर अन्याय किया है। कितनी उमंगों के साथ उसने यूरोप यात्रा की तैयारी की थी। कितनी निर्दयता के साथ मैंने उसकी उमंगों को धूल में मिला दिया। यदि विदेश यात्रा में वह भी मेरे साथ रहती, तो कितना अच्छा होता। वह भी क्या सोचती होगी। तिल का ताड़ बना कर मैंने उसके प्रति सन्देह करना शुरू कर

दिया है। वह मेरे प्रति कितनी अनुरक्त है। किस तरह रो-रो कर कहती थी—मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी।

रेल में वह निरन्तर इसी प्रकार सोचता रहा। उसने निश्चय किया, कि बम्बई पहुँचते ही थामस कुक एण्ड सन्स के दफ्तर में जाऊँगा। लता के लिये जहाज में स्थान रिजर्व था ही, शायद वह अभी किसी और को न दिया गया हो। यदि वह खाली हुआ, तो मैं लता को तार दे दूंगा। यदि मेरी तार उसे मिल गई, और वह ग्यारह तारीख को भी फ्रन्टियर मेल से चल पड़ी, तो बारह को बम्बई पहुँच जायगी। क्यों न थामस कुक एण्ड सन्स से लता के लिये हवाई जहाज पर सीट रिजर्व करा दूँ। दिल्ली से एक एयर सर्विस रात के समय भी चलती है। यदि दस की रात को उसे हवाई जहाज पर जगह मिल गई, तो वह ग्यारह की सुबह तक बम्बई आ जायगी। उसके पासपोर्ट आदि सब तैयार हैं, सब असबाब भी तैयार रखा है। असबाब की चिन्ता भी क्या? वह तो कहीं से भी खरीदा जा सकता है। मैं बम्बई पहुँचते ही लता को साथ ले जाने का इन्तजाम करूंगा।

बम्बई पहुँच कर विनोद थामस कुक एण्ड सन्स के दफ्तर में गया। यह जानकर उसे घोर निराशा हुई, कि विक्टोरिया जहाज पर एक भी सीट खाली नहीं है। लता की जो सीट कैन्सल करायी गई थी, वह उसी दिन अन्य यात्री ने ले ली थी। विनोद ने चाहा फर्स्ट क्लास में कोई सीट मिल जाए, पर वहाँ भी कोई स्थान रिक्त नहीं था। वह मन मसोस कर रह गया। जहाज चलने तक वह बहुत अधिक कार्यव्यग्र रहा। उसे कई बार खयाल आया, लता को पत्र लिखे, और अपनी निष्ठुरता के लिये उससे क्षमा मांगे। पर पत्र लिखने की उसे फुरसत नहीं मिली। उसने सोचा, जहाज पर फुरसत के साथ पत्र लिखूंगा और अदन पहुँच कर एयर मेल से उसे रवाना कर दूंगा।

जहाज की दुनिया विनोद के लिये बिलकुल नई थी। वह एक ऐसे नगर में पहुँच गया था, जो समुद्र पर तैर रहा था, और जिसमें अत्यन्त समृद्ध नर-नारियों का निवास था। यूरोप, अमेरिका, एशिया और अफ्रीका

के गोरे, पीले, भूरे व काले रंग के सब तरह के मनुष्य वहां विद्यमान थे। खाना पीना, मौज करना और गप्पें मारना ही उनका काम था। विनोद की सीट जिस कैबिन में थी, उसमें केवल दो व्यक्तियों के निवास की जगह थी। क्योंकि लता को भी उसके साथ जाना था, अतः उसके लिये एक फैमिली कैबिन रिजर्व किया गया था। लता की सीट को कैन्सल कर देने का तार पाकर उसकी सीट एक अन्य व्यक्ति को दे दी गई थी, जिसका नाम कैप्टिन गोर्डन था। ये सज्जन रंगून के रहने वाले थे, मोटे ताजे, प्रौढ़ आयु के, बड़े हँसमुख और जिन्दा दिल। युवावस्था में ये ब्रिटेन से आकर रंगून में आबाद हो गये थे, और वहाँ उन्होंने एक्सपोर्ट (माल को विदेश भेजना) और इम्पोर्ट (विदेश से माल मंगाना) का धंधा शुरू कर दिया था। व्यापार में इन्होंने खूब रुपया पैदा किया, और बड़े साहब की तरह से बरमा में रहने लगे। १६३६-४५ के महायुद्ध में इन्हें भी सैनिक सेवा स्वीकार करनी पड़ी, और सेना के लिये जूते खरीदने का महकमा इनके सुपुर्द कर दिया गया। १६४२ में जब जापान ने बरमा पर कब्जा कर लिया, तो कैप्टिन गोर्डन ने भारत में शरण ली। यहाँ भी उनकी सैनिक नौकरी बहाल रही, और वे शाहजहाँपुर के आर्डनान्स डिपो के इन्चार्ज बना दिये गये। महायुद्ध की समाप्ति पर वे रंगून वापस लौट गये, और वहाँ जाकर उन्होंने अपने धन्धे को फिर से शुरू कर दिया। अब वे लण्डन जा रहे थे, अपने 'होम' का फिर से दर्शन करने के लिये, और साथ ही विलायत में माल के कुछ जरूरी सौदे करने के लिये।

विनोद बहुत ही गम्भीर और शान्त प्रकृति का था। गोर्डन की प्रकृति उससे सर्वथा प्रतिकूल थी। गोर्डन ने अपना परिचय देते हुए विनोद से कहा—

'मेरा नाम गोर्डन है, केप्टिन गोर्डन। रंगून में एक्सपोर्ट इम्पोर्ट का काम करता हूँ। और आप?'

'मैं मेरठ में फिलोसफी का प्रोफेसर हूँ। मेरा नाम विनोद है।'

'आप से मिल कर बहुत खुशी हुई। यह मेरा अहोभाग्य है, जो एक

फिलोसफर के साथ यात्रा करने का अवसर मिला है। फिलोसफी से मुझे भी बहुत अनुराग है। कालिज में मैंने भी फिलोसफी पढ़ी थी। प्लेटो और अरिस्टोटल का मैं बहुत आदर करता हूँ। नये जमाने के कान्ट हीगल आदि फिलोसफर उनका क्या मुकाबला करेंगे। भारत में भी फिलोसफी ने बहुत उन्नति की थी। मैंने एनी बीसेन्ट का गीता का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा है। कैसी गजब की पुस्तक है। आप मुझे इण्डियन फिलोसफी के बारे में बताइयेगा।

'मुझे इससे बहुत प्रसन्नता होगी। जहाज में मुझे काम भी क्या है।'

'पर अब तो सांझ का समय है। कैबिन में पड़े-पड़े क्या कीजियेगा? चलिये, डेक पर घूम आएं। डिनर में अभी एक घंटे की देर है।'

'चलिये, मैं तैयार हूँ।'

विनोद और गोर्डन जहाज की डेक पर चले गये। वहाँ कितने ही नर-नारी पहले से ही डेक चेयरों पर पड़े हुए अस्त होते हुए सूर्य का दृश्य देख रहे थे। समुद्र की लहरें उलट-उलट कर गिर रही थीं, और उनसे उत्पन्न होते हुए झाग को देख कर ऐसा मालूम होता था, मानो शेषनाग अपने सहस्र फण फैला कर फुंकार मार रहे हों। अस्त होते हुए सूर्य की किरणें समुद्र की लहरों पर चमक रही थीं। विनोद को ऐसा अनुभव हुआ, मानो विष्णु भगवान् शेषनाग की शैया पर लेटे हुए हों! वह एक टक होकर इस अनुपम दृश्य को देखने लगा। गोर्डन ने उससे कहा—

'क्या देखते हो, प्रोफेसर विनोद, चलो उधर कुर्सी खाली पड़ी है, वहां चल कर बैठें।'

विनोद चुपचाप गोर्डन के साथ चला गया। पास की कुर्सी पर एक युवती अकेली बैठी हुई थी। गोर्डन नये परिचय प्राप्त करने में पारंगत था। उसने क्षण भर में मिस रुस्तमजी से जान पहचान करली, और उससे कहा—

'तो आप आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में सोशियोलोजी (समाज-शास्त्र) का अध्ययन करने जा रही हैं। लीजिये, प्रोफेसर विनोद से भेंट कीजिये

ये वहुत वड़े फिलासफर हैं, कामनवेल्थ यूनिवर्सिटीज़ कान्फरेन्स में शामिल होने के लिये जा रहे हैं।'

मिस रुस्तमजी को विनोद से वातें करने के लिये छोड़ कर ग़ोर्डन आगे वढ़ गया। डेक के दूसरी तरफ तीन चार महिलायें वैठी हुई थीं, जिनमें दो इटली की थीं। गोर्डन उनके पास गया, और उन्हें अपना परिचय देकर वोला—'आप ब्रिज तो खेलती ही होंगी, क्यों न दो चार वाजियाँ हो जाएं। जहाज पर काम ही क्या है, वक्त कटे तो कैसे? आप क्या पीएंगी? आपके लिये शाम्पेन मंगाऊं या वाँ रूज?'

गोर्डन उधर ब्रिज खेलने और मदिरापान में मस्त हो गया, और इधर विनोद ने मिस रुस्तमजी के साथ वातचीत शुरू कर दी।

'तो आप आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी को जायन कर रही हैं?'

'जी हाँ, मैंने वी० ए० में फिलोसफी भी ली थी। पर मुझे सोशियोलोजी का वहुत शौक है। आक्सफोर्ड जाकर उसीमें स्पेशेलाइज करने का विचार है।'

'हाँ, यह विषय भी वहुत अच्छा है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ सामाजिक जीवन का महत्त्व निरन्तर वढ़ रहा है। पर आप फिलोसफी का उच्च अध्ययन क्यों नहीं करतीं? वस्तुतः, दर्शन शास्त्र ही सव शास्त्रों का आधार है। उसमें प्रवीणता प्राप्त कर लेने पर अन्य शास्त्रों का ज्ञान सुगमता से हो जाता है।'

'फिलोसफी मुझे वहुत कठिन मालूम होती है।'

'इसमें कठिनाई कुछ नहीं है। शुरू में यह कुछ कठिन अवश्य प्रतीत होती है, पर एक वार विषय में प्रवेश कर लेने पर उसमें अपूर्व रस आने लगता है।'

'तो मैं आपके पास आकर दर्शन शास्त्र की चर्चा किया करूंगी। आप मुझे समय दे सकेंगे न? आप जैसे विद्वानों का समय वहुत कीमती होता हैं।'

'जहाज पर मुझे काम ही क्या है। आप जव चाहें, आइये। आप से

शास्त्रचर्चा करने मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी ।'

मिस रुस्तमजी रोज विनोद के पास आने लगी । विनोद उससे अद्वैत-वाद की चर्चा करता, वेदान्त का मर्म समझाता,प्राच्य दर्शन के अध्यात्म-वाद की व्याख्या करता और पाश्चात्य दर्शन व भारतीय तत्वज्ञान की तुलना करता । मिस रुस्तमजी को इस चर्चा में बड़ा आनन्द आता । प्रोफेसर विनोद भी मिस रुस्तमजी जैसी सुबोध शिष्या के साथ दर्शनशास्त्र का विवेचन कर अनुपम आल्हाद प्राप्त करता ।

एक दिन विनोद डेक चेयर पर चुपचाप लेटा हुआ समुद्र की लहरों की ओर देख रहा था । मिस रुस्तमजी उसके पास आकर खड़ी हो गई, और बोली—

'आप इस प्रकार शून्य की ओर क्या देख रहे हैं ?'

'देख कुछ नहीं रहा । हां, सुन अवश्य रहा हूँ । लहरों का यह संगीत कैसा मधुर है ! प्रकृति के सौन्दर्य के सम्मुख मनुष्यकृत कृत्रिम सौन्दर्य कितने हीन होते हैं । इसी प्रकार प्रकृति का जो यह नैसर्गिक संगीत है, उसका मुकाबला मानव संगीत कैसे कर सकता है । मुझे इसे सुनना बहुत ही अच्छा लगता है ।'

'पर मुझे तो इसमें कोई रस नहीं आता ।'

'आप थोड़ा यत्न कीजिये, आपको रस आने लगेगा । मनुष्यकृत कला को ही लीजिए । सर्वसाधारण लोग रंगदार सस्ते चित्रों को पसन्द करते हैं, हलके-फुलके फिल्मी गानों में रस लेते हैं । उच्च कोटि की चित्रकला और शास्त्रीय संगीत को समझने व उसका आनन्द उठाने के लिए कुछ अभ्यास की आवश्यकता होती है । आप चुपचाप मेरे पास की कुर्सी पर बैठ जाइये । सब ओर से ध्यान हटाकर लहरों के इस परम मधुर संगीत को सुनिये ।'

मिस रुस्तमजी विनोद के पास कुर्सी पर बैठ गई । वह भी क्षितिज की ओर शून्य दृष्टि से देखती हुई प्रकृति के नैसर्गिक संगीत को सुनने लगी । कुछ देर बाद विनोद ने पूछा—

'कहिये, कैसा प्रतीत होता है ?'

'बहुत सुन्दर, बहुत मधुर !'

'लहरों के इस संगीत की अपेक्षा भी अधिक मधुर एक अन्य संगीत है, जिसे अनहद नाद कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य व प्राणी के भीतर यह गान होता रहता है। पर इसे केवल योगी ही सुन सकते हैं, वे योगी जो इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर लेते हैं। मुझे इसका अनुभव नहीं है। पर मैं यह भली भाँति समझता हूँ, कि यह संगीत अत्यन्त मधुर होता होगा। जब मनुष्य इसमें रस लेने लगता है, तो उसे और कोई भी रस अच्छा नहीं लगता। यह ब्रह्म का संगीत है, जो अत्यन्त सूक्ष्म है। इसका रस बहुत ही उत्कृष्ट है, इसीलिए भारत के प्राचीन शास्त्रों में ब्रह्म को 'रस' भी कहा गया है।'

'मुझे आपके पास बैठना और आपसे बातें करना बहुत ही अच्छा लगता है। मैं आपका समय तो नष्ट नहीं करती ?'

'नहीं, नहीं। मुझे भी आप से बातें करना बहुत अच्छा लगता है।'

जहाज पर विनोद का समय बहुत मजे से कटने लगा। जब वह केबिन में होता, तो कैप्टिन गोर्डन उसे बातों में लगाये रहता। जब वह डेक पर जाता, तो मिस रुस्तमजी उसके पास आ बैठती। अदन चला गया, पोर्ट स्वेज और पोर्ट सईद भी चले गये। पर विनोद को लता को पत्र लिखने का ध्यान ही नहीं आया। भूमध्य सागर में एक दिन जब समुद्र बिलकुल शान्त था, वह जहाज के राइटिंग रूम में गया, और लता को पत्र लिखने का विचार करने लगा। इसी समय मिस रुस्तमजी उसके पास आ गई, और बोली—

'कल आपने मुझे गीता के निष्काम कर्म का सिद्धान्त समझाया था। पर मुझे यह समझ में नहीं आया, कि मनुष्य कर्म करते हुए भी उससे निर्लिप्त कैसे रह सकता है।'

विनोद मिस रुस्तमजी को निष्काम कर्म का सिद्धान्त समझाने में लग गया, और लता को पत्र लिखने की बात फिर स्थगित हो गई।

साँझ के समय जब वह डेक पर अकेला बैठा हुआ था, तो वह सोच
लगा—मैंने भी लता के साथ कितना घोर अन्याय किया है। उसे वीरे
के साथ बातें करना अच्छा लगता था, उसके पास बैठने में उसे आन
आता था। इसमें अनौचित्य की क्या बात थी? मुझे भी तो मिस रुस्तम
का साथ अच्छा लगता है। यदि किसी दिन वह मेरे पास बैठकर शास
चर्चा नहीं करती, तो मुझे सूना-सूना सा लगने लगता है। मैं अपने
धोखा कैसे दूँ? यह सत्य है, कि मिस रुस्तमजी के प्रति मुझे आकर्ष
अनुभव होता है। पर यह आकर्षण केवल मानसिक है, इसमें पाप
कलुष का लवलेश भी नहीं है। पर लता भी तो यही बात कहती थी
मैं मद्रास गया हुआ था, वह घर पर अकेली थी। वीरेन्द्र के साथ आग
चली गई, उसका दिल लग गया। इसमें अनौचित्य क्या हुआ? रही उ
रात की बात। वीरेन्द्र के साथ बातें करते-करते वह मेरे प्रति अप
कर्त्तव्य को भूल गई, उससे कुछ अविवेक हो गया। पर इसे मैंने इत
बुरा क्यों माना? बातचीत में जब ध्यान बँट जाता है, तो मनुष्य से ऐ
भूल हो ही जाती है। इतने दिन हो गये, मैंने लता को एक भी पत्र न
लिखा। मिस रुस्तमजी के साथ बातें करते-करते मैं सब कुछ भूल जा
हूँ। आज ज्यों ही लता को पत्र लिखने बैठा कि मिस रुस्तमजी आ गई
मुझे अपने कर्त्तव्य का ध्यान नहीं रहा। क्या मैं उसे यह नहीं कह सक
था, कि इस समय कुछ जरूरी काम कर रहा हूँ, घण्टे भर बाद बा
करेंगे। सचमुच मैंने लता के प्रति अन्याय किया है। मैं उससे क्षमा प्रार्थ
करूँगा।

दिन बीतते गये। जहाज जिनीवा पहुँच गया। विनोद के पास सी
लण्डन का टिकट था। इटली, स्विटजरलैण्ड और फ्रांस की यात्रा
लौटती बार के लिये स्थगित कर वह जिनीवा से लोजान जाने वाल
गाड़ी पर सवार हो गया, और वहाँ गाड़ी बदल कर पेरिस जा पहुँचा
मिस रुस्तमजी उसके साथ थी। उसे भी लण्डन जाना था। रात की गा
से वे दोनों पेरिस से लण्डन गये। लण्डन पहुँच कर विनोद ने कहा—

'अब आपका क्या प्रोग्राम है ?'

'मैं कुछ दिन लण्डन ठहरूँगी। भारत के हाई कमिश्नर से मिलकर आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में दाखिले के कुछ जाब्ते पूरे करने हैं।'

'लण्डन में आप कहाँ ठहरेंगी ?'

'अभी कहीं ठीक नहीं है। किसी होटल में ठहर जाऊँगी। आप भी तो होटल में ही ठहरेंगे न ?'

'और क्या ? पर मुझे तो लण्डन का जरा भी परिचय नहीं है। अपने मित्रों से यहाँ के होटलों के कुछ पते लिये थे। किसी में ठहर जाऊँगा।'

'यदि आपको एतराज न हो, तो मैं भी आपके साथ ही ठहरूँगी।'

'इसमें एतराज की क्या बात है।'

मिस रुस्तमजी और विनोद ने गावर स्ट्रीट के मेलबोर्न हाउस होटल में दो कमरे ले लिये। वे सुबह शाम साथ बैठकर दर्शन-शास्त्र की चर्चा करते, और दिन के समय अपने-अपने काम पर चले जाते। जुलाई के शुरू में कामनवेल्थ यूनिवर्सिटीज़ कान्फ्रेन्स का अधिवेशन होना था। विनोद ने उसमें 'यूनिवर्सिटी शिक्षा में अध्यात्मवाद का स्थान' विषय पर भाषण देना था। उसकी तैयारी में और कान्फ्रेन्स के अन्य सदस्यों से विचार-विमर्श करने में उसका सब समय व्यतीत हो जाता था। उसने कई बार सोचा, लता को पत्र लिखूँ। पर बात टलती ही गई। कुछ तो समय की कमी, और कुछ संकोच। लता के प्रति उसके मन में जो भाव थे, उनके कारण वह उससे कुछ दूर-सा हट गया था। मिस रुस्तमजी हर समय उसके साथ रहती थी। विनोद को उसका सान्निध्य अच्छा लगता था। कई बार वह सोचने लगता, लता ठीक कहती थी। पुरुषों को अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के भी सम्पर्क में आना चाहिए। इसमें भी एक रस है, जिसकी अनुभूति सचमुच मधुर है। कोई मनुष्य इस सुमधुर अनुभूति से क्यों वंचित रहे ? क्या केवल मर्यादा के विचार से ? पर इसमें मर्यादा अमर्यादा का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। मिस

रुस्तमजी और मेरी रुचि में कितनी समता है। वह एक सुन्दर युवती है, अभी पूरे पच्चीस वर्ष की भी नहीं हुई है। पर उसको दार्शनिक तत्त्व-चिन्तन का कितना शौक है। अन्य युवतियों के समान न वह पाउडर लगाती है, न रूज, न लिपस्टिक। इन बातों की ओर उसका ध्यान ही नहीं है। पर फिर भी उसमें अनुपम सौन्दर्य है, केवल शारीरिक सौन्दर्य ही नहीं, विचारों की उच्चता और सुसंस्कृत मन ने उसके मुखमण्डल पर एक अद्‌भुत आकर्षण ला दिया है। वही मुझे आकृष्ट करता है, उसी के कारण उसके साथ उठना-बैठना मुझे अच्छा लगता है। पर क्या लता के कारण मैं उससे मिलना-जुलना बन्द कर दूँ। लता मेरी पत्नी है, मेरी प्रेयसी, मेरी जीवनसंगिनी। उसके साथ मुझे जीवनयात्रा करनी है। वह मेरी सुख-दुख की साथिन है। पर इसका क्या यह अभिप्राय है, कि मैं किसी अन्य स्त्री से मिलूँ ही नहीं ? मिस रुस्तमजी से मुझे जो रस प्राप्त होता है, उससे मैं अपने को क्यों वंचित रखूँ ? फिर लता तो इसे नापसन्द भी नहीं करती। वह स्वयं चाहती है, कि मैं अन्य स्त्रियों से मैत्री करूँ। वह स्वयं भी अन्य पुरुषों के सान्निध्य में आने की इच्छा रखती है। निःसन्देह, वही ठीक रास्ते पर है। उसके भाव को गलत समझ कर मैंने कितनी भारी भूल की थी।

कामनवेल्थ यूनिवर्सिटीज़ कान्फ्रेन्स का अधिवेशन शुरु हो गया। भारत से इसमें चालीस प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। भारतीय यूनिवर्सिटियों के प्रतिनिधि अनेक प्रकार के थे, अनुभवी शासक, कुशल शिक्षक, और गम्भीर विद्वान्। अन्य देशों के शिक्षाविज्ञ इनकी योग्यता से प्रभावित हुए। विनोद के दर्शनशास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान ने उन पर धाक जमा दी। वह पाश्चात्य और प्राच्य दोनों दर्शनों का प्रकाण्ड पण्डित था। भारत के अध्यात्मवादका वह इतने तर्क-संगत रूप में प्रतिपादन करता था, कि कोई भी श्रोता व पाठक उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। ब्रिटेन की अनेक संस्थाओं ने उसे व्याख्यानों के लिए निमन्त्रित किया। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उसके व्याख्यानों की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। कई

सम्वाददाता उससे इन्टरव्यू के लिए आये। उन्होंने भारत के योगियों और फकीरों के बारे में विनोद से प्रश्न किये, जादू-टोने और तन्त्र-मन्त्र के विषय में उससे बातचीत की। अनेक महिलाएं उससे भेंट करने के लिये आतीं, और गीता व उपनिषदों के बारे में उससे बातें करतीं। मिस रुस्तमजी ऐसे अवसरों पर सदा विनोद के साथ रहती। अभी आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी खुली नहीं थी, गर्मियों की छुट्टियां समाप्त होने में अभी कुछ दिन शेष थे। भारत के हाई कमिश्नर की मदद से मिस रुस्तमजी को आक्सफोर्ड में दाखिला मिल गया था, अतः वह निश्चिन्त थी। विनोद के साथ शास्त्रचर्चा करने में उसे अपूर्व आनन्द मिलता, और ब्रिटेन में सर्वत्र उसका जो आदर हो रहा था, उससे वह गौरव अनुभव करती। वह प्राइवेट सेक्रेटरी के समान विनोद के साथ रहती, और सब प्रकार से उसकी सहायता करती। विनोद बहुत प्रसन्न था। वीरेन्द्र और लता के कारण जो भयानक उद्वेग उसके मन में उत्पन्न हो गया था, उसे अब वह पूरी तरह से भूल गया था। लता की उसे याद अवश्य आती थी, पर उसके वियोग के कारण उसे किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं होता था।

जुलाई का अन्त था। मिस रुस्तमजी आक्सफोर्ड चली गई थी। विनोद भी लण्डन से प्रस्थान करने की तैयारी में था। यूरोप की अनेक संस्थाओं से उसे व्याख्यानों के लिए निमन्त्रण मिले थे। पेरिस यूनिवर्सिटी के 'लैन्स्तित्यू द ला सिविलजासियों एन्दियन्न' (भारतीय सभ्यता की परिषद्) में उसने तीन व्याख्यान देने थे, और फिर मोंपेलिए, म्यूनिख, रोम आदि की प्राच्य विद्या-परिषदों में भी उसका प्रवचन होना था। उसने सोचा, इंगलैण्ड में रहते हुए एक महीने से अधिक समय हो गया, अब तक मैंने लता को एक भी पत्र नहीं लिखा। काम-धाम में इसका ध्यान ही नहीं रहा। पता नहीं, मुझे क्या हो गया है, मैं इतना निष्ठुर क्यों हो गया हूँ। पता नहीं, लता का क्या हाल होगा। मेरठ में अकेले उसका दिल कैसे लगता होगा। पर लता ने भी तो मुझे कोई पत्र नहीं लिखा। पता

नहीं, उसे भी क्या हो गया है। वह अब मेरी उपेक्षा करने लगी है, मेरे प्रति उसका हृदय अत्यन्त ठण्डा हो गया है। मुझे यहाँ बिलकुल भी फुरसत नहीं थी, पर उसे तो काम ही क्या था। वह तो मुझे पत्र लिख सकती थी। पर वह मुझे पत्र लिखती तो कैसे? उसे मेरा पता तो ज्ञात है ही नहीं। यदि मैं उसे पत्र लिखता, तब तो उसे मेरा पता मालूम होता।

विनोद इसी प्रकार के विचारों में मग्न था, कि होटल की मेड डाक उसकी मेज पर रख गई। इस में और सब पत्र तो इंगलैण्ड के थे, केवल एक पत्र भारत से आया था। उसने उत्सुकतापूर्वक इस पत्र को हाथ में लिया। पत्र वीरेन्द्र का था। उसने लिखा था—

'तुम भी बड़े अजीब हो, विनोद! इतने दिन विलायत गये हो गये, मुझे एक भी पत्र नहीं लिखा। हाँ, इंगलैण्ड के अखबारों में तुम्हारे व्याख्यानों व इन्टरव्यूज की चर्चा पढ़ता रहता हूँ। खुशी की बात है, तुम विदेश में अच्छा नाम पैदा कर रहे हो। आशा है, निकट भविष्य में ही अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के दार्शनिकों में तुम्हारी गिनती की जाने लगेगी। इसके लिए मेरी बधाई स्वीकार करो। हाँ, भाभी के पत्र तो तुम्हें मिलते ही रहते होंगे। पर मैं भी कुछ समाचार लिख दूँ। स्कूल में दोनों बच्चे राजी खुशी हैं। भाभी इन दिनों मसूरी आई हुई हैं। मेरठ में अकेली पड़ी-पड़ी क्या करतीं, मसूरी आ गई। यहाँ उनका दिल लगा हुआ है। पहले मलवील होटल में ठहरी थीं, अब सेवाय आ गई हैं। यहाँ की सोसायटी में उनका अच्छा प्रवेश हो गया है। डान्स सीख रही हैं, सप्ताह में तीन चार दिन हैक्मन व सेवाय की नाइट क्लबों में जाती है। गरमी से परेशान होकर मैं भी मसूरी आया हुआ हूँ। हैक्मन के बाल रूप में अचानक उनसे भेंट हो गई। उन्हें मसूरी में देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैं तो समझता था, वे तुम्हारे साथ लण्डन गई हुई होंगी। तुम भी कैसे अजीब आदमी हो। खुद विलायत चले गये, और भाभी को भारत छोड़ गये। खैर, यह तो तुम्हारा और उनका अपना मामला है। पर कभी-कभी पत्र अवश्य लिख दिया करो। तुम्हारे समाचार जानने

की उत्सुकता रहती है। कुछ दिन हुए, भाभी को डिनर के लिए निमन्त्रित किया था। बाद में हम दोनों डान्स में भी शामिल हुए। खूब आनन्द रहा। घण्टों तक गपशप चलती रही। मेरे साथ उन्होंने डान्स भी किया। जब तुम भारत लौट कर आओगे, तो उन्हें नृत्यकला में पारंगत पाओगे। हाँ, तुमने भी अब तक यूरोप के सामाजिक जीवन में प्रवेश कर लिया होगा। हर समय दर्शनशास्त्र के चिन्तन में न लगे रहा करो। कुछ दुनिया को भी देखो। आशा है, यूरोप जाकर तुम्हारे विचारों में परिवर्तन आयेगा, और तुम आधुनिकता के मार्ग पर कुछ अग्रसर होओगे। यह जरूर लिखना, लन्दन में किस होटल में ठहरे हो। वहाँ के होटलों से मैं भली भाँति परिचित हूँ। पुरानी स्मृति ताजी हो जायगी। आशा है, यह पत्र तुम्हें मिल जायगा। भाभी ने बताया था, लन्दन यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार के मार्फत भेजा हुआ पत्र तुम तक अवश्य पहुँच जायगा। पहुँचेगा क्यों नहीं? विद्वानों के संसार में अब तुम्हें कौन नहीं जानता? अच्छा, नमस्ते।'

वीरेन्द्र का पत्र पढ़कर विनोद एक दम गम्भीर हो गया। छः सात सप्ताह से अन्तर्दाह की जो अनुभूति दबी पड़ी थी, वह एक बार फिर अत्यन्त उग्र रूप में उद्बुद्ध हो उठी। उसने सोचना शुरू किया—लता को हो क्या गया है? वह मसूरी चली गई, वीरेन्द्र भी उसके साथ-साथ वहाँ जा पहुँचा। अब वे एक होटल में रहते हैं, रात का समय एक साथ नाइट क्लब में बिताते हैं, साथ मिलकर डान्स करते हैं। वीरेन्द्र के लिये लता कितना आकर्षण रखती है। उसे मेरी भावना का जरा भी ख्याल नहीं है। वह मसूरी गई, बहुत अच्छा किया। इसमें कोई हर्ज की बात नहीं थी। पर क्या वह वीरेन्द्र को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकती थी? यह जानते हुए भी कि मैं वीरेन्द्र के साथ उसके सान्निध्य को अच्छी निगाह से नहीं देखता, उसके कारण मुझे इतने भयंकर उद्वेग को सहना पड़ा है, वह उसके साथ मिलती जुलती है, उसके साथ डान्स करती है। उसने मुझे एक भी पत्र नहीं लिखा। वह मेरा पता भी जानती

थी। पर उसे अब मेरी क्या परवाह है ? वीरेन्द्र के सम्पर्क में आते ही वह अपनी सुध बुध भूल जाती है, सब विवेक खो बैठती है।

विनोद लता को पत्र लिखने लगा था। पर वीरेन्द्र का पत्र पाकर उसने अपना विचार बदल दिया। उसने सोचा, जब हमारे सम्बन्ध का अन्त अवश्यम्भावी है, तो उसे जबर्दस्ती कायम रखने से क्या लाभ ?

(१४)

वीरेन्द्र को कार्यवश दिल्ली जाना था। अगस्त में पार्लियामेंट का अधिवेशन शुरू हो गया था। कोरिया के प्रश्न पर भारत के प्रधानमन्त्री ने हाउस आफ पीपल्स के सम्मुख एक वक्तव्य देना था, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से जिसका बहुत महत्त्व था। वीरेन्द्र की इच्छा थी, इस अवसर पर वह दिल्ली में उपस्थित रहे, और प्रधानमन्त्री के वक्तव्य पर विविध देशों के राजदूतों के जो विचार हों, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र में उनसे जो प्रतिक्रिया हो, उस पर यूरोप और अमेरिका के अखबारों में लेख लिखे। इस कार्य के लिए वह दिल्ली चला गया, और दस दिन वहां रह कर मसूरी लौट आया। गर्मियों के लिए उसने मसूरी को अपना हेड क्वार्टर बना लिया था, और हिमालय की इस रानी का जीवन उसे बहुत पसन्द था। लता के प्रति वह आत्मीयता अनुभव करता था, और उसके पास बैठ कर उसे बहुत आनन्द आता था। उसने विवाह नहीं किया था। दुनिया में उसका अपना था ही कौन ? मां बाप के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था। घर जाकर उसे जरा भी अपनापन नहीं मालूम पड़ता था। लता के प्रति वह आकर्षण अनुभव करता था, क्योंकि उन दोनों के विचारों, रुचि और आदर्शों में समता थी। उनकी आकांक्षाएं एक थीं, उमङ्गें एक थीं। पुरुष स्त्री में अपनी छाया देखना चाहता है, अपनी प्रतिमा, अपना प्रतिबिम्ब। लता को देख कर उसे यही अनुभूति होती थी।

वह दिल्ली से मोटर बस द्वारा मसूरी आया था। जब बस मसूरी पहुँची, तो सांझ के पांच बज गये थे। लता घूमने जाने के लिए तैयार

'इन दिनों आपका समय कैसे बीतता है ?'

'मुझे काम ही क्या है ? सुबह आठ बजे सोकर उठती हूँ, अखबार पढ़ती हूँ, हाजरी से निबट कर कैमल्स बैक रोड का एक चक्कर लगा लेती हूँ। लञ्च के बाद कोई उपन्यास पढ़ लेती हूँ। कभी-कभी ब्रिज व फ्लश में दो-चार घंटे कट जाते हैं। रोज का यही क्रम है। नारी का जीवन भी कितना शून्य होता है। बच्चों को पालना, पति की सेवा करना—यही उसके जीवन का एकमात्र प्रयोजन है। पर जब बच्चे बड़े हो जाएं, और पति विदेश में हो, तो वह करे तो क्या करे ?'

'आप इतनी पढ़ी लिखी हैं, कोई काम क्यों नहीं कर लेतीं ?'

'थोड़े से दिनों के लिये क्या काम करूं ? अक्टूबर में तो वे लौट ही आएंगे। तब उन्हें मेरी आवश्यकता होगी। वे मेरे बिना सुखी नहीं रह सकते।'

'तो क्या स्त्री के जीवन का ध्येय केवल पति को सुखी रखना ही है ? क्या पति से पृथक् उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है ? आर्थिक दृष्टि से पुरुषों के अधीन होकर स्त्री ने अपनी स्वतन्त्रता का पूर्णतया अन्त कर दिया है। सच पूछिये, तो इस बीसवीं सदी में भी स्त्री की स्थिति एक रूपाजीवा की ही है। वह अपने शरीर को संवारती है, अपने रूप को निखारने के लिये अनेक कृत्रिम उपायों का प्रयोग करती है। किस लिये ? ताकि पति उसके प्रति आकृष्ट रहे। जो स्त्रियां पेट के लिये अपने शरीर को बाजार में बेचती हैं, उन्हें हम पतित समझते हैं। पर जो स्त्री अपनी आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये एक पुरुष को अपना शरीर मन व सर्वस्व अर्पण करती है, उसे हम सती साध्वी व सच्चरित्र मानते हैं। प्रेम क्या है, इसे न बाजार की स्त्री जानती है, और न पतिव्रता सती साध्वी। दोनों ही रूपाजीवाएं हैं। पता नहीं, कभी वह युग भी आयेगा या नहीं, जब स्त्री सचमुच स्वतन्त्र होगी, जब वह आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ी होगी, जब वह पेट भरने के लिये किसी का हाथ नहीं पकड़ेगी, अपितु स्वेच्छा-पूर्वक किसी को अपना प्रेम प्रदान करेगी, और सच्चे अर्थों [illegible] अनु-

भूति प्राप्त करेगी। सामने आसमान की ओर देखो, घटा घिर रही है, बादल तेजी से एक दूसरे की ओर बढ़ रहे हैं। दो बादल मिल कर एक हो गये, बिजली चमक उठी। कैसी सुन्दर दृश्य है! जब इसी प्रकार पुरुष और स्त्री—दोनों सबल, दोनों स्वतन्त्र, दोनों रस से परिपूर्ण, उमंग में भर कर स्वेच्छापूर्वक एक दूसरे की ओर बढ़ेंगे, मिलकर एक हो जाएंगे, तब जो प्रेम की बिजली चमकेगी, वह उनके रूप को कितना उज्वल कर देगी।'

'अरे, आप तो कविता करने लग गये। कविता यथार्थ से कितनी दूर होती है।'

'मैं कविता नहीं कर रहा हूँ, यथार्थ बात कह रहा हूँ। प्रेम क्या है? वह दैवी है, पवित्र है, नैसर्गिक है। वह गंगा की धारा के समान आगे बढ़ता है, किनारों को तोड़ता हुआ। उसे नहर के पानी के समान नियन्त्रण में नहीं रखा जा सकता। विवाह का बन्धन बना कर मनुष्य ने उसे जंजीरों में बांधने का प्रयत्न किया है। पर यह प्रयत्न कितना निरर्थक है, कितना हास्यास्पद है। सच्चा प्रेम किसी बन्धन को स्वीकार नहीं कर सकता, वह मर्यादा को लांघ जाता है। मीरा ने प्रेम किया था। कृष्ण के प्रेम में वह लोकलाज को खो बैठी थी। रूपमती ने प्यार किया था, वह धर्म और समाज के बन्धनों को तोड़ कर बाजबहादुर की हो गई थी। सच कहूँ, लता, हमारे देश के नर-नारी प्रेम करना जानते ही नहीं हैं। उन्हें सच्चे प्रेम की अनुभूति कभी होती ही नहीं। विवाह करके स्त्री कामवासना को तृप्त कर सकती है, आर्थिक चिन्ता से मुक्त हो सकती है, बच्चों की मां बन कर मातृत्व का गौरव प्राप्त कर सकती है। पर प्रेम? कितनी विवाहित स्त्रियों को सच्चा प्रेम प्राप्त होता है? जिसे तुम प्रेम समझती हो, वह वस्तुतः साथ रहने का अभ्यास है, सामाजिक विवशता है, आर्थिक पराधीनता है।'

'क्या तुम्हें कभी सच्चे प्रेम की अनुभूति हुई है?'

'हाँ, शायद हुई है।'

आसमान में जो काले-काले बादल क्रीडा कर रहे थे, वे अब परस्पर मिल कर एक हो गये थे। बिजली चमक रही थी। लता ने कहा—

'बहुत देर हो गई। अब वापस चलें, वर्षा होने वाली है।'

'जल्दी क्या है ? अभी तो आठ भी नहीं बजे।'

टप-टप कर वर्षा पड़नी शुरू हो गई। क्षण भर में सारी बेञ्च पानी से तर हो गई। लता और वीरेन्द्र उठ कर खड़े हो गये। जोर से बादल गरजा, और मूसलाधार पानी बरसने लगा। अब आगे चल सकना असम्भव था। वीरेन्द्र ने देखा, पास में कोई रिक्शा भी नहीं है। अचानक उसकी दृष्टि एक छोटी सी गुफा पर पड़ गई, जिसमें तीन-चार आदमी मजे से खड़े हो सकते थे। उसने कहा—'पहाड़ की वर्षा जल्दी ही बरस कर खतम हो जायगी। पाँच मिनट इस गुफा में खड़े होकर इन्तजार कर लें। पानी थम जाए, तो होटल लौट चलें।'

लता और वीरेन्द्र गुफा में जाकर खड़े होगये। वहां एक चट्टान थी, जिस पर दो आदमी सिकुड़ कर बैठ सकते थे। वीरेन्द्र ने कहा—

'इस तरह कब तक खड़े रहेंगे, आइये, बैठ जाएं।'

लता और वीरेन्द्र शिला पर बैठ गये। उनके शरीर एक दूसरे के बहुत समीप आगये थे, बैठने की जगह इतनी कम जो थी। वीरेन्द्र ने कहा—'आराम से बैठ जाओ न ?' उसका हाथ लता की कमर में चला गया। लता ने उसे हटाया नहीं, वह सिकुड़ कर उसके और नजदीक आ गई। लता ने कहा—'यदि हमें कोई इस तरह साथ बैठे देख ले, तो क्या समझेगा।'

'समझेगा क्या ? कुली होगा, तो कहेगा, साहब और मेम साहब हैं। नई रोशनी का कोई आदमी होगा, तो समझेगा, दो मित्र हैं। वर्षा के कारण इस तरह साथ बैठ गये हैं।'

वर्षा बढ़ती ही गई, भादों के मौसम का क्या भरोसा ? लता ने कहा—

'इस तरह कब तक बैठे रहेंगे ? बरसाती और छतरी हमारे

शार्लवील होटल के गेट पर शायद कोई रिक्शा भी मिल जाए।'

'आपको जल्दी किस बात की है ? मेरी इच्छा होती है, यह सारी रात इसी तरह साथ बैठकर बिता दें। एस दिन ताजमहल के उद्यान में आपके साथ सारी रात जागते बिता कर जो रस प्राप्त हुआ था, उसे क्या कभी भुला सकता हूँ। मेरा जीवन कितना नीरस है, कितना शून्य, रेगिस्तान के समान। रेगिस्तान का मुसाफिर जब कभी पानी के सोते को देख लेता है, किसी भरे पेड़ की छाया को पा लेता है, तो उसे जो सुख मिलता है, उसे वे लोग क्या समझें, जो गंगा के किनारे पर निवास करते हैं। इस शुष्क जीवन में मुझे भी उस दिन रस की अनुभूति प्राप्त हुई थी। उसकी याद ही मेरे जीवन का सम्बल है। आज आपके साथ में अकेले बैठ कर फिर उसी रस की अनुभूति हो रही है। इच्छा होती है, आज रात भर इसी तरह पानी बरसता रहे, जल थल सब एक हो जाए। जमीन आसमान सब वर्षा के कारण एकाकार हो जाएं। जल के इस विशाल समुद्र में निमग्न हो जाने से हमारी यह छोटी सी गुफा बची रहे, और उसमें इसी तरह से सिमट कर दो प्राणी बैठे रहें। यह रस भी कितना अद्भुत हैं ! क्या आप मुझे इससे वंचित रखना चाहती हैं। क्या आप इतनी निर्दय हैं, इतनी निष्ठुर हैं ? लोग प्यासे को पानी देना पुण्य की बात समझते हैं। इसीलिये कुंए खुदवाये जाते हैं, प्याऊ बिठाये जाते हैं। रस की एक बूंद के लिये तरसता हुआ मैं आपके पास आया हूँ, क्या आप मुझे ठुकरा देंगी ?'

'वीरेन्द्र, तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते ?'

'विवाह ? किसके साथ विवाह करूँ ? प्रेम क्या कोई सौदा है, जिसे बाजार जाकर पसन्द के अनुसार खरीद लाऊं ? प्रेम के लिये विवाह के बन्धन में बंधने की आवश्यकता है, यह बात मुझे समझ में ही नहीं आती। विवाह किया जाता है, सन्तान की उत्पत्ति के लिये, कामवासना की तृप्ति के लिये, और किसी के साथ जीवन का निर्वाह करने के लिये। मैं विवाह नहीं करना चाहता।'

'तो तुम चाहते क्या हो ?"

'सच्चे प्रेम की अनुभूति लेना। सच्चे प्रेम की क्षणिक अनुभूति भी मुझे तृप्त कर देगी, मुझे निहाल कर देगी। मैं किसी ऐसी प्रेयसी की तलाश में हूं, जो मेरी आकांक्षाओं और उमंगों की प्रतिमा हो, जिसके साथ रहकर मैं सच्चे प्रेम का रस प्राप्त कर सकूं।'

'इस विशाल संसार में क्या आपको कोई ऐसी प्रेयसी अब तक नहीं मिली ?'

'मिली है, अवश्य मिली है। पर पता नहीं, वह मुझसे क्यों दूर भागती है ? मर्यादा और नैतिक विचार की ऊंची दीवारें मेरे और उसके बीच में खड़ी हैं। वे हमें मिलकर एक नहीं होने देतीं, हमें दूर-दूर रखती हैं। पर मैं जानता हूं, प्रेम की शक्ति परमाणुशक्ति से भी बढ़कर है। हमारी ये दीवारें चूर-चूर हो जाएंगी, और किसी दिन मैं उसे अवश्य प्राप्त कर लूंगा।'

वर्षा के साथ-साथ ओले भी पड़ने शुरू हो गये थे। ओलों की बौछार से पर्वत की वह छोटी सी गुफा श्वेत हो गई। ठण्ड बढ़ती जा रही थी, लता वीरेन्द्र के और नजदीक खिसक आई। वीरेन्द्र ने उसे कस कर अपनी छाती से लगा लिया। उसके गरम ओठों पर अपने ओठ रखते हुए उसने कहा—'मेरे प्रेम की वह प्रतिमा तुम्हीं हो, लता।' लता देर तक इसी प्रकार वीरेन्द्र के अंक में पड़ी रही।

अब वर्षा धीमी हो गई थी। लता ने कहा—

'चलो, बहुत देर हो गई है। ऐसे कब तक बैठे रहेंगे ? अब वर्षा थम गई है।'

लता और वीरेन्द्र उठ कर खड़े हो गये। छतरियां खोल कर वे धीरे-धीरे सेवाय होटल की ओर चल पड़े। रास्ते में वीरेन्द्र ने कहा—

'मैंने विनोद को पत्र लिखा था। आश्चर्य है, अब तक उसका कोई उत्तर नहीं आया।'

'शायद उन्हें चिट्ठी न मिली हो।'

'आपको तो उसका पत्र मिलता ही रहता होगा। क्या अभी वह लण्डन में ही है?'

'शायद अब तक वे वहाँ से चल पड़े होंगे। उन्हें फ्रांस, जर्मनी, इटली, स्विट्जरलैण्ड आदि कई देशों में जाना था। शायद अमेरिका भी जाएँ।'

'हाँ, विलायत की कई पत्र-पत्रिकाएँ मेरे पास आती हैं। यूरोप में विनोद ने बहुत नाम पैदा कर लिया है। उसके चित्र कितने ही अखबारों में छप चुके हैं। उसके दार्शनिक ज्ञान की सब जगह धूम मच गई है। इन्टरव्यू और व्याख्यानों से ही उसे फुरसत नहीं मिलती। अच्छा हुआ, जो तुम उसके साथ नहीं गईं। उसके साथ तुम क्या सैर कर सकती? एक अखबार में पढ़ा था, विनोद को आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में भारतीय दर्शन की चेयर आफर करने की बात उठ रही है। यूरोप के लोग उसकी विद्वत्ता से बहुत प्रभावित हुए हैं। हमारे देश में तो विद्वानों की कदर ही नहीं होती। उसे अब तक किसी यूनिवर्सिटी का वाइस चान्सलर बन जाना चाहिए था। पर अभी वह एक मामूली कालेज में ही पड़ा सड़ रहा है। हमारे लोगों को आदमी की पहचान ही नहीं है। जो कोई तिकड़मी हो, खुशामद करना जानता हो, वही इस देश में उन्नति कर सकता है।'

'आपके पास वे पत्र पत्रिकाएं हैं, जिनमें उनके विषय में छपा है?'

'तो क्या उसने तुम्हें कोई पत्र पत्रिका नहीं भेजी?'

'नहीं, वे तो इन बातों पर ध्यान ही नहीं देते। ख्याति और प्रतिष्ठा से दूर भागते हैं। कहा करते हैं, काम करते जाओ, उसके फल की आकांक्षा न करो। भवभूति का एक श्लोक सुना कर कहा करते हैं—यह काल निरवधि है, और यह पृथिवी अत्यन्त विशाल है। शायद कभी कहीं कोई ऐसा आदमी भी मिल जाए, जो मेरे कार्य की कदर करे।'

'पर ऐसे आदमी कभी उन्नति नहीं कर सकते। आजकल विज्ञापन का जमाना है, और मनुष्य को अपना विज्ञापन स्वयं करना पड़ता है।'

सेवाय होटल आ गया था। वीरेन्द्र ने घड़ी देख कर कहा—'ओह, आधी रात का समय हो गया। अब डिनर का समय तो बीत गया। पर

आपको तो भूख लगी होगी। हां, अभी डान्स का प्रोग्राम तो जारी होगा। चलिये, वहां चल कर बैठें। वहां सैन्डविच, केक, बिस्कुट आदि मिल जाएंगे। साथ में कोई ड्रिन्क भी मंगा लेंगे।'

'नहीं, इसकी कोई जरूरत नहीं। मुझे जरा भी भूख नहीं है।'

लता ने वीरेन्द्र के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। वह सीधी अपने कमरे में चली गई। कपड़े बदल कर वह बिस्तर पर लेट गई। पर उसकी आंखों में नींद नहीं थी। तकिये से मुंह को छिपा कर वह फफक-फफक कर रोने लगी। वह सोच रही थी, मैं सचमुच पतित हो गई हूं। वे कितने ऊंचे हैं, हिमालय के शिखर से भी ऊंचे। मेरे मन में आया करता था, वे इतनी तेजी के साथ पर्वत के शिखर पर चढ़ रहे हैं, कि मैं उनका साथ नहीं दे सकूंगी, उनसे बहुत पीछे छूट जाऊंगी। वही बात हुई न? आज वे संसार के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों की श्रेणी में पहुंच गये हैं। और मैं? एक परपुरुष की प्यास को शान्त करने में लगी हूं। क्या नारी जीवन का यही प्रयोजन है?

(१५)

वीरेन्द्र के पत्र ने विनोद के हृदय को उद्विग्न कर दिया था। वह एक बार फिर दारुण अन्तर्दाह से जलना शुरू हो गया था। वह बार-बार अपने मन को समझाने का प्रयत्न करता, पर उसे शान्ति न मिलती। वह सोचता, लता को हो क्या गया है। वह जानती है, कि मैं वीरेन्द्र से उसके मिलने को पसन्द नहीं करता। उसके कारण मुझे कितना कष्ट उठाना पड़ा है। एक बार तो उसके कारण मेरे पागल तक हो जाने की नौबत आ गई थी। क्या वह मेरे लिये इतना भी नहीं कर सकती, कि वीरेन्द्र को अपने जीवन से पूर्णतया बहिष्कृत कर दे। पता नहीं, वीरेन्द्र में ऐसा कौन सा आकर्षण है, कि उसके सम्पर्क में आते ही वह अपनी सुध बुध भूल जाती है, अपना सब विवेक खो बैठती है। क्या वह सचमुच उससे प्रेम करती है? इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि वीरेन्द्र के प्रति उसके मन में अत्यधिक आकर्षण है। पर वह यह क्यों नहीं समझती कि [illegible]

पतन के मार्ग की ओर ले जा रहा है। न उसे मेरी चिन्ता है,और न बच्चों की। मैं मानता हूँ, मेरी और उसकी रुचि में बहुत भिन्नता है। दर्शन-शास्त्र के चिन्तन में व्यस्त मेरे जैसे नीरस आदमी से उसे क्या सुख मिल सकता है। उसे पहनने ओढ़ने का शौक है, खेल तमाशे उसे बहुत पसन्द हैं, वह मौज करना चाहती है, सोसायटी में ऊंचा स्थान प्राप्त करना चाहती है। लोग उसके प्रति आकृष्ट होते हैं,और अन्य पुरुषों को भौंरे के समान अपने ऊपर मंडराते हुए देख कर उसे अपूर्व आनन्द मिलता है। मौज शौक की उसकी जो इच्छाएं है, उनकी पूर्ति में मैं उसका साथी नहीं हो सकता। पर इन सब के लिए मैं उसे पूरी स्वतन्त्रता देता रहा हूँ। इन बातों को मैंने कभी बुरा नहीं माना। अब तक और लोग उसके पीछे पागल हुआ करते थे, पर अब वह स्वयं एक आदमी के पीछे पागल हो गई है। क्या यह उचित है ? क्या इस दशा में हमारा दाम्पत्य जीवन कायम रह सकता है। मैं भी मिस रुस्तमजी के प्रति आकर्षण अनुभव करता था, उसके साथ उठना बैठना और उससे बातें करना मुझे अच्छा लगता था। पर यदि उसके साथ मेरे सान्निध्य के कारण लता को उद्वेग होता, उसे वह बुरा मानती, तो क्या लता की खातिर मैं मिस रुस्तमजी की मित्रता को कुर्बान न कर देता ? सच देखा जाय, तो मिस रुस्तमजी के साथ मेरा जो सान्निध्य था, उसका कारण केवल यह था, कि वह मेरे साथ दर्शन-शास्त्र की चर्चा किया करती थी। जैसे किसी पुरुष के साथ विचार विमर्श करने में मुझे आनन्द मिलता है, वैसे ही मिस रुस्तमजी के साथ भी मिलता था। इस ढंग से लता तो कितने ही लोगों के साथ सम्पर्क रख चुकी हैं। केवल स्त्रियां ही नहीं,कितने ही पुरुष भी उसके जीवन में आये। उनके साथ वह घूमती फिरती रही, बातें करती रही, खेल कूद करती रही। मैंने कभी बुरा नहीं माना। पर वीरेन्द्र? उसके साथ लता का जो सम्बन्ध है, वह असामान्य है। दाम्पत्य जीवन में इस प्रकार के सम्बन्ध को कदापि सहन नहीं किया जा सकता। मैं लता के सम्मुख स्पष्ट रूप से यह बात रख चुका हूँ कि वीरेन्द्र के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध रखने का उसे

पूरा अधिकार हैं। वह मेरी दासी नहीं है, वह पूर्णतया स्वतन्त्र है। पर इसके लिये उसे कीमत अदा करनी होगी। यह कीमत है, हमारे दाम्पत्य जीवन का अन्त। शायद लता यह कीमत देने को तैयार है। तभी वह वीरेन्द्र के साथ अपने सान्निध्य को निरन्तर बढ़ा रही है।

जुलाई का महीना खतम होने से पूर्व ही विनोद पेरिस चला आया। वहाँ उसके अनेक व्याख्यान हुए। अखबारों में उसके व्याख्यानों की रिपोर्ट पढ़ कर अनेक महिलाओं का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ। पेरिस यूरोप भर की समृद्ध महिलाओं की रङ्गस्थली है। इटली, ग्रीस, ब्रिटेन, पोलैण्ड आदि विविध देशों के सम्पन्न व वैभवशाली लोग वहाँ आकर निवास करते हैं, और आमोद-प्रमोद में अपना समय व्यतीत करते हैं। वहाँ ऐसे लोगों की कमी नहीं हैं, जो किसी भी नई बात की ओर सुगमता से आकृष्ट हो जाते हैं। बहुत सी सम्पन्न महिलाएं विनोद के पास भी आने लगीं, और अध्यात्मवाद के सम्बन्ध में विचार विमर्श कर अपनी ज्ञान-पिपासा को शान्त करने लगीं। वे गांधी जी के सत्य व अहिंसा के सिद्धान्त पर बात करतीं, और भारत के साधुओं व योगियों के बारे में तरह तरह के प्रश्न पूछतीं। अनेक महिलाएं ऐसी भी थीं, जो अंग्रेजी और फ्रेञ्च भाषाओं में गीता और योगवासिष्ठ जैसी पुस्तकों को पढ़ चुकी थीं। वे उनके गूढ़ तत्वों पर विनोद के साथ विचार करतीं। विनोद को इस चर्चा में बड़ा आनन्द आता। पेरिस की फैशनेबल महिलाओं को योग और अध्यात्मवाद की चर्चा करते देखकर विनोद असीम तृप्ति अनुभव करता। अनेक स्त्रियां उसे अपने घरपर निमन्त्रित करतीं, और घण्टों तक उसके साथ बैठ कर बातें करती रहतीं।

पेरिस के बाद विनोद ने लियों, मोपेलिये, रोम, नेपल्स, लोजान आदि की यात्रा की। सब जगह उसके व्याख्यान हुए, और विद्वानों में उसका आदर हुआ। अगस्त का महीना इसी प्रकार व्यतीत हो गया। कार्य में व्यग्र रहने के कारण उसका मानसिक उद्वेग बहुत कुछ कम हो गया। रात के समय जब वह बिस्तर पर लेटता, तो उसे बहुधा लता का ध्यान आ जाता

था। कभी-कभी वह सोचने लगता, इस समय लता मसूरी की किसी नाइट क्लब में बैठी हुई होगी, वीरेन्द्र उसके साथ होगा। अब तक वह डान्स में प्रवीणता प्राप्त कर चुकी होगी। वह वीरेन्द्र के साथ नृत्य करती होगी। अब उसे मेरा क्या ध्यान आता होगा। इतने दिन हो गये, उसने मुझे एक भी पत्र नहीं लिखा। वह मुझे पत्र क्यों लिखे ? बारह साल पहले मेरा उसके साथ क्या सम्बन्ध था ? विवाह हो गया, हम दोनों एक बन्धन में बंध गये। मैं उसे प्यार करता था, और वह मुझे। पर हमारा यह बन्धन कितना शिथिल था। एक धक्का लगा, और वह टूट गया। अब मेरी छुट्टी समाप्त होने वाली है। अक्टूबर के शुरू में मुझे मेरठ पहुँच जाना चाहिए। इसके लिए मुझे सितम्बर के मध्य तक यूरोप से चल देना होगा। पर भारत लौट कर मैं क्या करूंगा ? क्या अब मैं लता के साथ रह सकूंगा ? मैं जानता हूं, अब वह अविकल रूप से मेरी ही नहीं है। उसके समीप आते ही मुझे ऐसा अनुभव होता है, वह अकली नहीं है, उसके साथ एक अन्य पुरुष भी है। इस दशा में मैं उसके साथ कैसे रह सकूंगा ? मेरे हृदय में जो आग सुलग रही है, उसके संपर्क से वह एक ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़ेगी। इस दारुण अन्तर्दाह को सह सकना मेरी शक्ति से बाहर है। मैं पागल हो जाऊंगा। क्यों न मैं यूरोप में ही बस जाऊं ? अपने खर्च लायक रुपया मैं यूरोप में भी कमा सकता हूँ। यहाँ की पत्रिकाएं लेखों पर अच्छा पारिश्रमिक देती हैं। मेरे लेखों की बहुत माँग है। व्याख्यानों के लिये भी यहाँ रुपया दिया जाता है। यदि मैं पेरिस जाकर रहने लगूं, तो भारतीय दर्शनों को पढ़ने वाले कितने ही विद्यार्थी मुझे मिल जाएंगे, और वे मुझे अच्छी फीस दे देंगे। मेरा खर्च उससे भली भांति चल जायगा। रही लता की बात। उसकी चिन्ता मुझे क्यों करनी चाहिए ? वह पढ़ी लिखी है, अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है। इसकी आवश्यकता भी क्या है ? मेरी पुस्तकों से रायल्टी की जो आमदनी होती है, वह उसके खर्च के लिए पर्याप्त होगी। तीन सौ रुपया महीना बच्चों का खर्च है, दो सौ रुपये में लता का खर्च चल सकता है। रायल्टी से मेरी आमदनी सात आठ हजार

रुपया वार्षिक से कम नहीं है। यह सब रुपया लता को मिलता रहेगा। भारत में लोग यूरोप को स्वर्ग के समान समझते हैं। जो यहां बसे हुए हों, उन्हें अत्यन्त सौभाग्यशाली माना जाता है। पाश्चात्य लोगों द्वारा यदि किसी को सम्मान मिल जाए, तो उसका महत्त्व भारतीयों की दृष्टि में बहुत बढ़ जाता है। मेरठ के एक कालिज की प्रोफेसरी के मुकाबले में मेरे बन्धु-बान्धवों व मित्रों की निगाह में पेरिस के ट्यूशनों का अधिक महत्त्व होगा। सब लोग मुझे ईर्षा की दृष्टि से देखेंगे। क्यों न मैं यूरोप में ही बस जाऊं?

विनोद ने कालिज के प्रिंसिपल की सेवा में तीन मास के अवैतनिक अवकाश के लिए आवेदन पत्र भेज दिया। आवेदन पत्र में उसने लिखा—'यूरोप में मेरे व्याख्यानों की बहुत मांग है। यहां मैं अन्यन्त उपयोगी कार्य कर रहा हूँ। यदि मैं तीन महीने यूरोप में और रह जाऊं, तो पाश्चात्य लोगों को भारतीय संस्कृति और दर्शन का परिचय देने के लिए बहुत महत्त्व-पूर्ण कार्य कर सकूंगा। राष्ट्रीय दृष्टि से यह कार्य अत्यन्त उपयोगी है।' विनोद की छुट्टी स्वीकृत हो गई। अब उसे शीघ्र भारत लौटने की आवश्यकता नहीं थी, वह दिसम्बर तक यूरोप में रह सकता था। उसने सोचा यदि पेरिस में दिल लग गया, तो मेरठ की नौकरी से त्यागपत्र दे दूंगा। भारत में अब मेरा है ही कौन? लता का अब मुझ से क्या सम्बन्ध? हां, रानी मुझे बहुत मानती है, वह मेरे बिना अवश्य दुखी होगी। पर यदि पेरिस में मेरी अच्छी आमदनी होगई, तो उसे यहां के ही किसी स्कूल में बोर्डर करा दूंगा। पेरिस के ब्रिटिश स्कूल में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। वहां पढ़ते हुए उसे जरा भी दिक्कत नहीं होगी। बच्चों को नई भाषा सीखने में देर भी क्या लगती है। वह शीघ्र ही फ्रेञ्च सीख जायगी। फ्रेञ्च स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर उसका इतना सुन्दर विकास हो जायगा, कि वह जीवन में संघर्ष के लिए बहुत योग्य हो जायगी। रहा मुन्ना, वह लता के बिना नहीं रह सकता। यदि लता चाहेगी, तो वह उसके पास रहता रहेगा; अन्यथा, उसे भी मैं पेरिस बुला लूंगा। भारत में मेरी कौन सी ऐसी जमीन जायदाद है, जिसका मोह मैं न छोड़ सकूं। मजदूरी करके गुजर करता हूँ।

मेरठ में फिलोसफी पढ़ाता हूं, उसीसे खर्च चलता है। यहां भी भारतीय दर्शन पढ़ा कर मजे में अपना गुजर कर लूंगा। धर्म और कानून के अनुसार लता मेरी पत्नी है। उसका भरण पोषण करना मेरा कर्तव्य है। अपनी पुस्तकों के पब्लिशर को पत्र लिख दूंगा, कि रायल्टी की रकम लता को मिलती रहे। उसके निर्वाह के लिए वह पर्याप्त होगी।

विनोद पेरिस आकर रहने लगा। 'पारी स्वा' नाम के पत्र में उसने एक छोटा सा विज्ञापन दे दिया, जिसमें भारतीय इतिहास, दर्शनशास्त्र व हिन्दू धर्म की क्लास खोलने की विज्ञप्ति दी गई थी। अनेक विद्यार्थी उसके पास पढ़ने के लिये आने लगे। कतिपय सम्पन्न व्यक्तियों ने उसे अपने घर पर भी ट्यूशन के लिये बुलाना शुरू कर दिया। भारत में स्वराज्य स्थापित हो जाने के कारण इस समय यूरोप में हिन्दी सीखने की मांग बढ़ गई थी। सोर्बोन यूनिवर्सिटी के 'इण्डियन इन्स्टिट्यूट' में अनेक विद्यार्थी हिन्दी पढ़ने के लिये आने लग गये थे। वहाँ भी विनोद को काम मिल गया। वह सप्ताह में तीन घण्टे इण्डिया इन्स्टिट्यूट में हिन्दी पढ़ाने लगा। इन सब से उसे इतनी आमदनी होने लग गई, कि उसका खर्च आराम के साथ चलने लगा।

उसके विद्यार्थियों में महिलाओं की संख्या अधिक थी। इनसे विनोद का परिचय निरन्तर बढ़ता गया। मदमोआज़ल वारों नाम की एक युवती प्रतिदिन उसके पास आती, और भारतीय अध्यात्मवाद के विषय में चर्चा किया करती। कुमारी वारों एक सम्पन्न महिला थी, जिसके पास धन-सम्पत्ति, रूप और यौवन की कमी नहीं थी। पेरिस में रहते हुए भी उसका मन सांसारिक भोग विलास से दूर था। अध्यात्मवाद की चर्चा से उसे बहुत शान्ति मिलती। वह विनोद से संस्कृत पढ़ती, और उपनिषदों के अंग्रेजी अनुवाद द्वारा भारतीय अध्यात्मवाद की शिक्षा प्राप्त करती। विनोद के साथ बातें करके उसे अपूर्व आनन्द मिलता। एक दिन उसने विनोद से पूछा—

'सुना है, भारत में स्त्रियां परदे में रहती हैं। क्या यह ठीक है?

'परदे की प्रथा भारत में प्रचलित अवश्य है, पर अब यह धीरे-धीरे नष्ट हो रही है।'

'पर यह प्रथा कितनी अमानुषिक है। किसी स्त्री का सदा मुंह ढक कर रहना और अपने घर की चहारदीवारी में बंद रहना कितनी बड़ी क्रूरता है।'

'पता नहीं, यह क्रूरता है या नहीं। मनुष्य की सब प्रथाएं व परम्पराएं अभ्यास का परिणाम हैं। परदे में रहने वाली भारतीय महिलाएं इससे जरा भी दुखी नहीं होतीं।'

'आपने तो शायद विवाह किया नहीं। यदि आप विवाहित होते, तो क्या अपनी पत्नी को परदे में रखना पसन्द करते? सुना था, भारत में तो बचपन में ही विवाह हो जाता है, आप अब तक अविवाहित कैसे रहे?'

'नहीं, मैं अविवाहित नहीं हूं। मेरे दो बच्चे भी हैं।'

'पर आपने अपनी पत्नी की फोटो मुझे कभी नहीं दिखायी। यूरोप में तो सब लोग पत्नी की फोटो अपनी मेज पर रखते हैं। देखूं तो सही, अपकी पत्नी कैसी हैं। पर हां, वह तो शायद परदे में रहती होंगी। उन्होंने अपनी फोटो खिचवायी ही नहीं होगी।'

कुमारी वारों की बात सुनकर विनोद का मन उदास हो गया। अपने को संभाल कर उसने कहा—

'नहीं, यह बात नहीं है। मेरी पत्नी का नाम लता है, वह एक सुशिक्षित और सुसंस्कृत युवती है। मैं भी उसकी फोटो सदा अपने पास रखा करता हूं। पर असबाब बांधते हुए जल्दी में वह घर पर ही छूट गई। मैंने लता को लिखा था, अपनी फोटो मुझे भेज दे। उसने उत्तर दिया, नई फोटो खिंचवा रही हूं, तैयार होते ही भेज दूंगी। शायद अब तक उसने भेज भी दी हो। डाक में देर हो ही जाती है। पिछले दिनों में लगातार भ्रमण करता रहा हूं। मेरी डाक का कोई एक ठिकाना नहीं रहा है।'

'मदाम विनोद को लिख दें, अपनी दो फोटो भेजें। एक फोटो मुझे दे दीजियेगा।'

'बहुत अच्छा ।'

कुमारी वारों चली गई, पर विनोद के हृदय में एक भयंकर तूफान खड़ा कर गई । उसने अपना दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया, और बिस्तर पर पड़ कर एक टक छत की ओर देखने लगा । वह सोचने लगा—यह अन्तर्दाह कितना दारुण है। हर समय मन में आग सी सुलगती रहती है । यदि यह अग्नि पूरी तरह से भड़क उठे, तो कितना अच्छा हो। यह मेरे घर बार को भस्म कर देगी, हमारे दाम्पत्य जीवन का अन्त कर देगी । पर गृह दाह शायद उतना भयंकर नहीं होगा, जितना कि यह अन्तर्दाह है । जो बात सादि है, उसका अन्त होना भी अवश्यम्भावी है । एक न एक दिन तो हमारे दाम्पत्य जीवन का अन्त होना ही है । फिर इसमें देर क्यों हो रही है ? तिल-तिल करके जलने की अपेक्षा तो प्रदीप्त अग्नि में भस्म हो जाना कम दुखदायी होगा । यदि आज मुझे यह समाचार मिल जाए, कि लता वीरेन्द्र की हो गई है, तो क्या मुझे अधिक संताप होगा ? नहीं, मैं समझ लूँगा, जो अवश्यम्भावी था, वह हो गया । जिस बात का एक दिन प्रारम्भ हुआ था, उसका अब अन्त हो गया । मेरे संताप का कारण केवल यह है, कि लता के प्रति मेरी ममता है, उस पर मैं अपना एकाधिकार मानता हूँ । यह ममत्व की भावना ही है, जो मेरे इस अन्तर्दाह का एकमात्र कारण है। जिस क्षण लता के प्रति मेरी ममत्व बुद्धि नष्ट हो जायगी, उस दिन यह संताप भी स्वयमेव नष्ट हो जायगा । लता मुझे क्यों इस प्रकार तिल-तिल करके जला रही है ? उसे कितनी बार समझाया, या तो वह वीरेन्द्र के प्रति अपने आकर्षण की परिणिति कर ले, उसे चरम सीमा तक पहुँचा दें ; और या उसे पूर्णरूप से अपने मन से निकाल दे, क्योंकि उसीके कारण मुझे इतना दारुण दुःख भोगना पड़ रहा है । पर दूसरा विकल्प उसके लिये सम्भव नहीं है, वीरेन्द्र को वह अपने जीवन से पृथक् नहीं कर सकती । फिर वह अपने आकर्षण की परम परिणिति ही क्यों नहीं कर लेती। मैं उसे कितनी बार समझा चुका हूँ, कि संसार में सब चीजों की कीमत होती है । वीरेन्द्र के सान्निध्य की कीमत भी उसे अदा करनी होगी । पर

इस कीमत को सुनकर वह घबरा उठती है। वह न मुझे छोड़ने के लिये तैयार है, और न वीरेन्द्र को। मेरे साथ उसका जो सम्बन्ध है, उसका अन्त भी हो सकता है, यह कल्पना भी उसे उद्विग्न कर देती है। पर मेरे लिये, हमारे दाम्पत्य जीवन को कायम रखने के लिये उसे वीरेन्द्र को कुर्बान करना ही होगा। पर दिक्कत यह है कि वह इसके लिये भी तैयार नहीं है। कहा करती थी, वीरेन्द्र के प्रति मेरे हृदय में कोई भी असामान्य भाव नहीं है, मैं उसके लिये जरा भी आकर्षण अनुभव नहीं करती। मैं कहता था, यदि तुम सच कह रही हो, तो मेरी खातिर उसे अपने जीवन से पूर्णतया पृथक् क्यों नहीं कर देती। वह उत्तर देती थी, यह बात तो जरा भी कठिन नहीं है। भविष्य में मैं उसके साथ कोई भी सम्पर्क नहीं रखूंगी। पर वीरेन्द्र के सम्पर्क में आते ही लता को न जाने क्या हो जाता है। जिस प्रकार कोई शराबी रोज सुबह उठ कर तोबा करता है, और निश्चय करता है, कि अब कभी शराब नहीं पीऊँगा, पर रात होते ही जब वह गिलासों की खनखनाहट सुनाता है, तो बरबस उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है, वही दशा लता की है। मुझे उद्विग्न देखकर वह निश्चय करती है, कि अब वीरेन्द्र के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखूँगी, पर उसे देखते ही वह अपनी सुध-बुध भूल जाती है। यह कैसा अद्भुत आकर्षण है, लता इसके सम्मुख असहाय है। मसूरी में वह फिर वीरेन्द्र के सम्पर्क में आ गई। उसके साथ रहने के आकर्षण का वह संवरण नहीं कर सकी।

विनोद इसी प्रकार के विचारों में डूबा हुआ था, कि दरवाजे की घंटी को सुनकर वह चौंककर उठ बैठा। रूमाल से मुंह पोंछकर वह दरवाजे की ओर बढ़ा। कुमारी वारों उससे मिलने के लिए आई थी। कमरे में प्रवेश करते हुए उसने कहा—

'माफ कीजिए, आपके आराम में मैंने विघ्न डाला। भारतीय दर्शन-सम्बन्धी एक पुस्तक का आपने जिक्र किया था। मैं उनके लेखक का नाम भूल गई। वही पूछने आई हूं।'

'बैठिये, पुस्तक व उसके लेखक का नाम लिख देता हूं।'

'बहुत अच्छा ।'

कुमारी वारों चली गई, पर विनोद के हृदय में एक भयंकर तूफान खड़ा कर गई। उसने अपना दरवाजा अन्दर से वन्द कर लिया, और विस्तर पर पड़ कर एक टक छत की ओर देखने लगा। वह सोचने लगा—यह अन्तर्दाह कितना दारुण है। हर समय मन में आग सी सुलगती रहती है। यदि यह अग्नि पूरी तरह से भड़क उठे, तो कितना अच्छा हो। यह मेरे घर वार को भस्म कर देगी, हमारे दाम्पत्य जीवन का अन्त कर देगी। पर गृह दाह शायद उतना भयंकर नहीं होगा, जितना कि यह अन्तर्दाह है। जो वात सादि है, उसका अन्त होना भी अवश्यम्भावी है। एक न एक दिन तो हमारे दाम्पत्य जीवन का अन्त होना ही है। फिर इसमें देर क्यों हो रही है ? तिल-तिल करके जलने की अपेक्षा तो प्रदीप्त अग्नि में भस्म हो जाना कम दुखदायी होगा। यदि आज मुझे यह समाचार मिल जाए, कि लता वीरेन्द्र की हो गई है, तो क्या मुझे अधिक संताप होगा ? नहीं, मैं समझ लूँगा, जो अवश्यम्भावी था, वह हो गया। जिस वात का एक दिन प्रारम्भ हुआ था, उसका अव अन्त हो गया। मेरे संताप का कारण केवल यह है, कि लता के प्रति मेरी ममता है, उस पर मैं अपना एकाधिकार मानता हूँ। यह ममत्व की भावना ही है, जो मेरे इस अन्तर्दाह का एकमात्र कारण है। जिस क्षण लता के प्रति मेरी ममत्व वुद्धि नष्ट हो जायगी, उस दिन यह संताप भी स्वयमेव नष्ट हो जायगा। लता मुझे क्यों इस प्रकार तिल-तिल करके जला रही है ? उसे कितनी वार समझाया, या तो वह वीरेन्द्र के प्रति अपने आकर्षण की परिणति कर ले, उसे चरम सीमा तक पहुँचा दें; और या उसे पूर्णरूप से अपने मन से निकाल दे, क्योंकि उसीके कारण मुझे इतना दारुण दुःख भोगना पड़ रहा है। पर दूसरा विकल्प उसके लिये सम्भव नहीं है, वीरेन्द्र को वह अपने जीवन से पृथक् नहीं कर सकती। फिर वह अपने आकर्षण की परम परिणति ही क्यों नहीं कर लेती। मैं उसे कितनी वार समझा चुका है, कि संसार में सव चीजों की कीमत होती है। वीरेन्द्र के सान्निध्य की कीमत भी उसे अदा करनी होगी। पर

नहीं। डाक्टर दिन में दो बार उसे इन्जेक्शन देता था, तीन बार उसे दवाई दी जाती थी। परिचर्या में कोई कसर नहीं थी, पर विनोद का स्वास्थ्य ठीक नहीं हो रहा था। अस्पताल में उसे कोई काम तो था नहीं। वह रात-दिन बिस्तर पर पड़ा शून्य की ओर एकटक देखता रहता। पहले काम में लगे रहने के कारण उसका ध्यान बंटा रहता था। कभी वह पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख लिखता, कभी विद्यार्थियों को पढ़ाता। इन कार्यों में व्यस्त रहने के कारण उसे लता का अधिक ध्यान नहीं आता था। पर अब अस्पताल में? वहाँ हर समय उसे लता का ही ध्यान आता रहता था। शून्य की ओर देखते हुए उसे ऐसा प्रतीत होता था, वह मसूरी पहुँच गया है। किसी छोटे से होटल में जा ठहरा है। सांझ के समय वह घूमने जा रहा है, दूर पर उसे हँसी की आवाज सुनाई देती है। वह हँसी उसकी परिचित है। वह लता चली जा रही है, वीरेन्द्र उसके साथ है। दोनों हँस-हँसकर बातें कर रहे हैं। लो, वे एक रेस्तोरां में जाकर बैठ गये। विनोद हटकर एक ओर खड़ा हो गया। वीरेन्द्र ने पूछा—लता, क्या पीओगी? चाय, काफी या शाम्पेन? लता ने उत्तर दिया, जो तुम्हारी मर्जी। वीरेन्द्र ने शाम्पेन का आर्डर दे दिया। सुरापान करते हुए लता ने पूछा—कहो, आज का क्या प्रोग्राम है? वीरेन्द्र ने उत्तर दिया—प्रोग्राम पूछती हो, रोज ही तो कहता हूँ। इस तरह कब तक मुझे तरसाती रहोगी? क्या तुम मुझे प्यार नहीं करती? सच-सच कहना, कब तक इस तरह मुझसे दूर-दूर भागती रहोगी? विनोद को एक दम बेहोशी आ गई, उसकी आँखें पथरा गईं। नर्स उसकी यह दशा देखकर घबरा गई, और दौड़ी-दौड़ी डाक्टर के पास गई। डाक्टर ने आकर इन्जेक्शन लगाया। उसके कारण विनोद होश में आ गया। इस बीच में कुमारी तारा भी उसे देखने के लिए आ गई थी। वह रोज इसी समय अस्पताल आया करती थीं। नर्स ने तारा से कहा—

'इन्हें हर रोज दौरा उठ आता है। कोई दवा असर नहीं करती। डाक्टर परेशान हैं।'

'डाक्टर कहता क्या है ?'

'कहता है, कोई मानसिक बीमारी है, जिसका इलाज दवाई से नहीं किया जा सकता। बढ़िया-से-बढ़िया दवा दी जा चुकी है। कहता है, अब मेरी बुद्धि काम नहीं करती। यह भी कहता था, अब इन्हें इस अस्पताल में रखना निरर्थक है।'

वारों ने विनोद से पूछा—'अब कैसी तबियत है ?'

'ठीक है। यूं ही कभी-कभी दौरा पड़ जाता है। चिन्ता की कोई बात नहीं।'

'आपके घर का क्या पता है ? मदाम विनोद को बीमारी की सूचना अवश्य दे देनी चाहिये। आपने उन्हें चिठ्ठी तो लिख ही दी होगी ?'

अपनी पत्नी का जिक्र आने पर विनोद को फिर दौरा पड़ गया। उसकी हालत देख कर कुमारी वारों घबरा गई। दवा से उसे जब होश हुआ, तो वारों ने फिर उसके घर का पता पूछा। पर विनोद ने उसके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। वह एक टक छत्र की ओर देखता रहा। वारों ने समझा, बार-बार दौरे पड़ने के कारण विनोद बहुत थक गया है। उसने और अधिक बात नहीं की। फिर आने के लिए कह कर वह उस होटल में गई, जहां विनोद ने कमरा लिया हुआ था। होटल के मालिक से चाबी लेकर उसने विनोद का कमरा खोल लिया, और उसके असबाब को देखने लगी। उसे विश्वास था, कि विनोद के पास भारत से अनेक पत्र आते होंगे, और उनमें मदाम विनोद के पत्र भी अवश्य होंगे। उन्हें देख कर विनोद के घर का पता मालूम हो जायगा, और वह तुरन्त एयरमेल द्वारा मदाम को विनोद की बीमारी की सूचना दे देगी। पर उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ, कि विनोद के बक्स में एक भी ऐसा पत्र नहीं है, जिसे वह उसकी पत्नी का समझ सके। वारों जानती थी, कि भारतीय लोग अंग्रेजी में पत्र व्यवहार करते हैं। अंग्रेजी भाषा का उसे अच्छा ज्ञान था। हिन्दी के अक्षर भी वह पढ़ लेती थी। सोर्बोन यूनिवर्सिटी के 'इण्डिया इन्स्टिट्यूट' में उसने हिन्दी भाषा का अभ्यास किया था, और वह हिन्दी की पुस्तकों को

अटक-अटक कर पढ़ने भी लग गई थी। विनोद के बक्स में जो पत्र सुरक्षित थे, उनमें एक भी मदाम विनोद का नहीं था। उसने सोचा, शायद विनोद अपनी पत्नी के पत्रों को सदा अपने पास रखता हो, और वह उन्हें अपने साथ अस्पताल ले गया हो। पर जो पत्र उसे विनोद के बक्स में मिले, उनसे वह इतना जान गई, कि उसका घर मेरठ में है, और वहाँ के डिग्री कालेज के प्रिंसिपल की मार्फत लिखा हुआ पत्र मदाम विनोद को मिल जायगा।

मेरठ कालिज के पते पर मदाम विनोद के नाम पत्र भेजकर अगले दिन वह फिर अस्पताल गई। उस दिन विनोद की तबियत कुछ ठीक थी। उसने पूछा—

'आज क्या तारीख है ?'

'२६ सितम्बर।'

'मेरा एक काम करोगी ?'

'क्यों नहीं ?'

'सात अक्टूबर को रानी का जन्म दिन है।'

'रानी कौन है ?'

'मेरी कन्या। इस समय उसकी आयु दस साल की है। वह मसूरी में पढ़ती है। मसूरी बड़ी सुन्दर नगरी है, हिमालय के शिखर पर बसी हुई। वहाँ के एक अच्छे स्कूल में मैंने उसे दाखिल करा दिया है। रानी का जन्मदिन हम बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया करते हैं। वह उत्सुकता-पूर्वक इस दिन की प्रतीक्षा किया करती है। उसे खिलौनों का बड़ा शौक है। जन्मदिन के अवसर पर मैं उसे बहुत से खिलौने दिया करता हूँ। पिछले जन्मदिन पर वह घर पर ही थी। अब वह स्कूल में है। इस बार उसे कौन खिलौने खरीद कर देगा ? कौन उसके लिए बर्थ डे केक खरीदवा कर देगा ? आप एक काम करें। पाँच-सात बढ़िया खिलौने खरीद लें, साथ में एक टिन्ड बर्थ डे केक भी, दस मोमबत्तियों के साथ। इ बढ़िया सा पार्सल बनवालें, और उसे मसूरी भेज दें।'

'उसका पता क्या है ?'

'रानी, वेवरली कन्वेन्ट, मसूरी (इण्डिया)। यह काम जरूर कर दें, आज ही। इसमें आपको कष्ट तो वहुत होगा।'

'नहीं, कष्ट की क्या वात है ? पर अव दिन वहुत कम रह गये हैं। पार्सल एयरमेल से भेजना होगा।'

'आप खर्च की परवाह न करें। साठ-सत्तर रुपये खर्च कर दें। रानी मुझे वहुत प्यार करती है, अपने डेडी से पार्सल पाकर खुश हो जायगी। विलायत आते हुए मैंने उसे कहा भी था, कि जन्मदिन के अवसर पर वढ़िया खिलौने भेजूंगा।'

'उसके लिए कौन-कौन से खिलौने खरीद लूं।'

'आप उनका चुनाव स्वयं कर लें। पर हाँ, उसे गुड़िया वहुत पसन्द है। एक वड़ी सी गुड़िया अवश्य खरीद लीजिएगा। ऐसी गुड़िया, जो लिटाने पर आँखें वन्द कर ले, और उठाने पर आँखें खोलकर चूं-चूं करने लगे। एक वात और, उसे लाल रंग वहुत अच्छा लगता है। ऐसी गुड़िया लीजियेगा, जिसका फ्राक लाल रंग का हो। वाकी खिलौने आप अपनी पसन्द से ले लें।'

'साथ में उसे क्या लिख दूं'।

'अच्छा तो यह होगा, कि मैं उसे अपने ही हाथ से पत्र लिखूं। पर मुझे डाक्टर ने मना कर रखा है। नर्स नाराज होगी, और वह डाक्टर से रिपोर्ट कर देगी। लिख देना, तुम्हारे डेडी काम में लगे हुए हैं, उन्हें फुरसत नहीं है। कार्य की अधिकता के कारण वे स्वयं पत्र नहीं लिख सके। मेरी वीमारी का पत्र में जिक्र न करना। यह जरूर लिख देना, कि तुम्हारे डेडी स्वस्थ व प्रसन्न हैं। मेरी वीमारी की वात सुनकर रानी उदास हो जायगी। वह अभी छोटी-सी वच्ची है, पर मेरा ऐसा खयाल करती है, मानो मेरी माँ हो। उसे देखकर मुझे अपनी माँ याद आ जाती है। हाँ, उसे अपने वारे में भी लिख देना। लिख देना, तुम्हारी एक वुआ है, जो पेरिस में रहती है। वुआ से खिलौने पाकर रानी वहुत खुश

होगी। उन्हें वह सबको दिखाती फिरेगी। हाँ, एक काम और करना। खिलौनों पर कीमत का जो लेबल लगा हो, उसे फाड़ न देना। रानी को कीमतें जानने का बड़ा शौक है। वह 'फ्रांक' में लिखी कीमतें पढ़ पढ़ कर बहुत खुश होगी। बस, अब इस काम में देर न कीजिए। हो सके, तो आज ही पार्सल भेज दीजिये।'

'आप चिन्ता न करें। पार्सल आज की डाक से ही चला जायगा। पेरिस जैसे शहर में इस तरह के काम में देरी का प्रश्न ही क्या है ?'

(१६)

अगस्त के अन्त में वीरेन्द्र मसूरी से चला गया था। चलने से पूर्व वह लता के पास आया, और बोला—

'मैं सीलोन जा रहा हूं। लङ्का द्वीप में बसे हुए भारतीयों की समस्या बहुत गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। समझौते के जो भी प्रयत्न अब तक किये गये, सफल नहीं हो सके। धीरे-धीरे यह प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का होता जा रहा है। चाहता हूँ, कि कोलम्बो जाकर वहाँ के राजनीतिक नेताओं से मिलूं, और इस समस्या का अनुशीलन करूँ। अमेरिका और यूरोप के कतिपय पत्रों में इस समस्या पर लेख लिखने का विचार है।'

'आप वहाँ कब जा रहे हैं ?'

'आज ही।'

'आपने पहले इसका कभी जिक्र नहीं किया। यदि पहले कहते, तो मैं भी आपके साथ चली चलती। मसूरी में रहते हुए मन उकता गया है। वर्षा ने अलग नाक में दम कर रखा है। कितने दिन बीत गये, आसमान साफ ही नहीं हुआ। सैर करने जा सकना तो सम्भव ही नहीं रहा। कमरे में पड़े-पड़े तबियत नहीं लगती।'

'तो आप भी सीलोन चले चलिये न! असबाब बांधने में कितना समय लगेगा।'

'नहीं, रहने दीजिए। मसूरी छोड़ने से पहले बच्चों से

जरूरी है। उन्हें केवल इतवार के रोज छुट्टी मिलती है। फिर मेरठ भी जाना है। अक्टूबर के शुरू में वे भारत लौट रहे हैं। घर जाकर सफाई भी करानी है। वरसात के मौसम में वन्द कमरों में सील हो जाती है। अच्छा, आप सीलोन से कव तक लौटेंगे ?'

'वहाँ मुझे अधिक दिन नहीं लगेंगे। हवाई जहाज से जाऊंगा, और हवाई जहाज से ही लौटूंगा।'

'आगे का क्या प्रोग्राम है ?'

'कोई निश्चित नहीं। पर एक वार मसूरी अवश्य आऊंगा। वर्षा के वाद मसूरी का सीजन वहुत अच्छा हो जाता है। पहाड़ पर रहने के असली दिन तो वही होते हैं। आप भी अभी मेरठ न जाएं। सितम्वर के अन्त तक मैं मसूरी आजाऊंगा। फिर साथ ही वम्वई चले चलेंगे। स्वागत के लिए हमें जहाज पर आया देखकर विनोद को वहुत प्रसन्नता होगी।'

'तो यह वात पक्की रही। उसी समय दक्षिण भारत की भी सैर कर लूंगी। आप भूलियेगा नहीं। सितम्वर के अन्तिम सप्ताह तक मसूरी अवश्य आजाइयेगा। अक्टूवर शुरू होते ही हम वम्वई चले चलेंगे। रास्ते में एक दिन मेरठ रुक कर मकान की सफाई करा लूंगी।'

वीरेन्द्र चला गया। अव लता अकेली रहने लगी। सितम्वर में वर्षा कम हो गई थी। अतः लता अव फिर नियमपूर्वक सुवह शाम घूमने जाने लगी। उसका मन प्रसन्न था, क्योंकि विनोद शीघ्र ही भारत लौटने वाला था। वीरेन्द्रसे उसने वे पत्र पत्रिकायें ले ली थीं, जिनमें विनोद के व्याख्यानों की चर्चा छपी थी। खाली समय वह उन्हें पढ़ने लगती। उन्हें वह कितनी ही वार पढ़ चुकी थी, पर वार वार पढ़ कर भी उसे तृप्ति नहीं होती थी। वह सोचने लगती, वे कितने महान् हैं, उनका पाण्डित्य कितना अगाध है। वे कितनी दूर चले गये हैं, कितने ऊंचे उठ गये हैं। सारा संसार उनका आदर करता है, यूरोप में उनकी विद्वत्ता की धूम मची हुई है। और एक मैं हूं, जो उनके मन की जरा भी परवाह नहीं करती। उन्होंने मुझे कोई पत्र नहीं लिखा। लिखते भी कैसे ? मुझ से नाराज

जो थे। पर मैं तो उनसे नाराज नहीं थी। मैंने उन्हें क्यों पत्र नहीं लिखा ?

वह इसी तरह के विचारों में मग्न थी, कि होटल का बेयरा आया और एक चिट्ठी दे गया। चिट्ठी मेरठ से आई थी, रामू ने भेजी थी। रामू ने लिखा था, कालेज में एक नये प्रोफेसर आये हैं, मकान की तलाश में हैं। आपसे मिलने के लिये आए थे। कहते थे, हमारे प्रोफेसर साहब ने तीन महीने की छुट्टी ले ली है, अब जनवरी से पहले भारत नहीं लौटेंगे। अगर हमारे मकान में दो कमरे उन्हें किराये पर दे दिये जाएँ, तो उनका काम चल जायगा। प्रोफेसर साहब के लौटते ही वे कमरे खाली कर देंगे। चालीस रुपया मासिक किराया देने की बात कहते थे। मैंने कह दिया, मेम साहब को चिट्ठी लिखवा देता हूं। जैसा उनका हुकुम होगा, वैसा ही होगा। सो आप मेहरबानी करके जल्दी लिखें। उन्हे क्या जवाब दूं। ये साहब भले आदमी मालूम देते हैं। अभी व्याह नहीं हुआ है, अकेले रहेंगे।

रामू का पत्र पाकर लता सोच में पड़ गई। तो प्रोफेसर साहब ने तीन महीने की छुट्टी और लेली है। मुझे पता भी नहीं दिया। रामू ने यदि न लिखा होता, तो मुझे कैसे मालूम पड़ता। उन्होंने मुझे त्याग दिया है, मुझे पतित जो समझते हैं। अब वे मुझ से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते। अभी तीन महीने की छुट्टी ली है। रामू को क्या पता, वे जनवरी में भी नहीं लौटेंगे। अब शायद भारत वापस ही नहीं आएँगे। यहाँ मैं जो हूँ, वे तो मेरी परछाईं से भी घबराते हैं। कालिज की सर्विस की उन्हें क्या परवाह है ? जहाँ रहेंगे, अपने लायक रुपया पैदा कर लेंगे। मैं बेकार उन पर भार बनी हुई हूँ। सोचते होंगे, रुपये की मुझे क्या कमी है। पिछले महीने बम्बई से सात सौ रुपये का चैक आया था। किसी पब्लिशर ने भेजा था। शायद उन्होंने अपने पब्लिशर को लिख दिया है, कि रायल्टी की रकम मुझे भेजता रहे। पर स्त्री रुपये के लिये विवाह नहीं करती। वह पति से प्रेम चाहती है, उस पर अपना

एकाधिकार मानती है, उसके साथ मिलकर एक हो जाना चाहती है। जब उनका प्रेम ही मुझे प्राप्त नहीं है, जब वे मुझे परायी समझते हैं, तो मुझे उनकी कमाई खाने का क्या अधिकार है। वे अपना रुपया अपने पास रखें, मैं उसमें से एक पाई भी नहीं लूंगी। भगवान् ने मुझे भी हाथ पैर दिये हैं। अपने लायक कमा ही लूंगी। बच्चे यदि मसूरी नहीं पढ़ सकेंगे, तो क्या हुआ? कितने लोग हैं, जिनके बच्चे इन अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ते हैं। जहाँ मैं रहूँगी, बच्चे भी वहीं मेरे साथ रहेंगे। जो रूखा सूखा मैं खाऊंगी, वे भी उसे ही खा लेंगे। वे खुश रहें। वे जहाँ रहें, आराम से रहें, मेरे लिये यही पर्याप्त है।

इस प्रकार सोचते सोचते लता की आँखों में आँसू भर आये। उसने उठ कर अपने कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया। वह पलंग पर गिर पड़ी, और फफक-फफक कर रोने लगी। कुछ देर बाद जब उसका मन शान्त हुआ, तो उसने फिर सोचना शुरू किया—क्या वे मेरे बिना प्रसन्न रह सकते हैं? मेरे बिना तो उन्हें चाय तक पीने में आनन्द नहीं आता। मुझे छोड़ कर अकेले यूरोप जाने से उन्हें कितना कष्ट हुआ होगा। कौन उनके भोजन की चिन्ता करता होगा, कौन उनके कपड़े संभालता होगा। पता नहीं, उनके दिन कैसे कष्ट से बीत रहे होंगे। मुझ से कहा करते थे—लता, मुझे तुम्हारे सम्बल की आवश्यकता है, तुम्हारे बिना मेरी हालत एक कबन्ध की सी हो जायगी। चार महीने बीत गये, इतने दिन मेरे बिना उन्होंने कैसे गुजर किया होगा। मैं भी कितनी निष्ठुर हूँ, मान करके चुपचाप बैठी रही। उन्हें एक पत्र तक भी नहीं लिखा। वे भी क्या सोचते होंगे। मेरे विषय में कैसी कैसी कल्पनाएं कर रहे होंगे। उनका मन कितना कल्पनाशील है। बात का बतङ्गड़ बना देना तो उनके लिए बांए हाथ का खेल है। पर यदि वे ऐसे न होते, तो दर्शनशास्त्र की गहराई में कैसे प्रवेश कर सकते। उन्होंने मेरी छोटी सी बात से बुरा मान लिया, तिल का ताड़ बना दिया, पर यह तो उनकी आदत ही है। इसके लिये मैं उन्हें दोष क्यों दूं। कई बार उन्होंने मुझे कहा है, जो मशीन

जितनी सूक्ष्म होती है, उसे उतनी ही सावधानी से वरतना पड़ता है ! वात विलकुल ठीक है। तिनका पैर से छू जाए, तो जरा भी तकलीफ नहीं होती। पर यदि वही तिनका आँख की पुतली से छू जाए, तो कितना कष्ट अनुभव होता है। वे एक भावुक मनुष्य ह, जरा सी वात भी उन पर असर कर जाती है। जब इतने वड़े दार्शनिक और विचारशील विद्वान् की सहधर्मिणी वनने का सौभाग्य मुझे मिला है, तो उनके साथ मुझे अत्यन्त सावधानी के साथ वरतना होगा। कोई भी काम ऐसा नहीं करना होगा, जिससे उन्हें कष्ट हो। मैं उन्हें आज ही पत्र लिखूंगी। पर उनका पता तो मुझे मालूम नहीं। अव तक वे लण्डन से चले भी गये होंगे। पता नहीं, फ्रांस में हों, या जर्मनी में। शायद अमेरिका चले गये हों। कालिज में उनका पता अवश्य होगा। पर वहाँ से कैसे मालूम करूँ। लोग क्या कहेंगें, पत्नी अपने पति का पता तक नहीं जानती। सव कोई सन्देह करने लगेंगे।

दिन वीतते गये। लता का चित्त अव वहुत उद्विग्न रहने लगा। मसूरी रहते हुए जो अनेक स्त्रियाँ उसकी सहेलियाँ वन गई थीं, वे अव अपने अपने घर लौट गई थीं। लता का किसी भी काम में मन नहीं लगता था। उसे काम भी क्या था ? सुवह शाम टहलने जाती, समय पर होटल के डाइनिंग रूम में जाकर भोजन कर लेती, और खाली समय में विस्तर पर लेट कर कोई उपन्यास या पत्रिका पढ़ने लग जाती। खाली पड़े पड़े उसके मन में कई प्रकार के विचार उठते रहते थे। कई वार वह सोचने लगती, क्या मैं सचमुच पतित हो गई हूँ। वीरेन्द्र के साथ मेरा जो सान्निध्य है, वह क्या वस्तुतः अनुचित है। उस दिन आवेश में भर कर उसने मेरा आलिङ्गन कर लिया था, अपने ओठ मेरे ओठों पर रख दिये थे। मैंने उसका विरोध नहीं किया। देर तक उसके अंक में पड़ी रही। क्या यह उचित था? पता नहीं क्यों, वीरेन्द्र के पास उठना वैठना मुझे अच्छा लगता है, उसकी वातों में मुझे रस मिलता है। उसके शरीर का स्पर्श भी मुझे वुरा नहीं लगा। इससे मेरे तन में एक गुदगुदी सी पैदा हो गई। क्षण भर के लिये मैं अपनी सुध वुध भूल गई। क्या एक पर-पुरुष के साथ इस-

प्रकार का सान्निध्य अनुचित नहीं हैं ? मैं किस ओर चली जा रही हूँ ? वे ठीक कहते थे, मानसिक सान्निध्य और शारीरिक सान्निध्य एक ही मार्ग की दो मंजिलें हैं। भविष्य में मैं सावधान रहूँगी। अभी बिगड़ा ही क्या है ? मैं वीरेन्द्र को और आगे नहीं बढ़ने दूंगी।

अनेक बार उसके मन में दूसरी लहर उठने लगती। वह सोचती, शरीर के स्पर्श में दोष ही क्या है ? पुराने ढंग की स्त्रियाँ तो किसी पर-पुरुष के हाथ को भी नहीं छूतीं। सुना है, मुसलमानों के शासन काल में इतना अधिक परदा था, कि यदि कोई स्त्री बीमार पड़ती, तो हकीम उसकी नब्ज तक को नहीं छू सकता था। स्त्री की कलाई में एक डोरा बांध दिया जाता था, और हकीम उसी को छूकर रोगिणी की नाड़ी परीक्षा किया करता था। अब वह जमाना बीत गया। बीसवीं सदी की नारी अपरिचितों के साथ हाथ मिलाती है, परपुरुषों के साथ डान्स करती है। उसका साथी उसकी कमर में हाथ डालता है, और वह उसके हाथ और कन्धे के सहारा लेकर रंगस्थली में थिरकती फिरती है। इसमें दोष क्या है ? वीरेन्द्र मेरा मित्र है। यदि एक बार उसने मुझे छू लिया, तो इससे मैं पतित कैसे हो गई ? इससे मैं पराई कैसे हो गई ? मेरा सर्वस्व उनके अर्पण है। मेरा तन मन आत्मा सब पर उनका एकाधिकार है। वे मेरे हैं, और मैं उनकी हूँ। पर क्या मुझे यह भी अधिकार नहीं है, कि मैं किसी अन्य पुरुष के साथ मैत्री कर सकूं, किसी अन्य के प्रति आकर्षण अनुभव कर सकूं ? यह तो बहुत ज्यादती है। इससे अच्छा तो यह होता, कि स्त्रियाँ परदे में बन्द रहतीं। न उन्हें शिक्षा दी जाती, और न उनके मन का विकास होने दिया जाता। इसी लिये शायद पुराने विचारकों ने यह व्यवस्था की थी, कि स्त्रियों और शूद्रों को पढ़ाना नहीं चाहिये। पर आज तो शूद्र और स्त्रियां-दोनों ही शिक्षा पा रहे हैं। इस शिक्षा का ही यह परिणाम है, कि शूद्र अपनी स्थिति से असंतुष्ट हैं, और स्त्री अपनी स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्नशील हैं। पर स्त्री-स्वातन्त्र्य का अर्थ क्या है ? शिक्षा और स्वतन्त्रता प्राप्त कर यदि वह अन्य पुरुषों से मिले जुले ही नहीं, तो उसकी

स्वतन्त्रता का क्या लाभ ? और यदि वह किसी पुरुष के प्रति कुछ आकर्षण अनुभव करने लगे, किसी के साथ उसकी मैत्री हो जाए, तो क्या समाज उसे सह सकता है? वीरेन्द्र मेरा मित्र है, इससे अधिक कुछ नहीं। पर उन जैसा गम्भीर और विवेकशील व्यक्ति भी उसके साथ मेरी मैत्री को नहीं सह सका। हाँ, उस दिन वीरेन्द्र ने मर्यादा का अतिक्रमण कर दिया था। शायद उसका यह कार्य अनुचित था। पर मनुष्य एक निर्बल प्राणी है। कभी कभी उससे गल्ती हो ही जाती है। उसका जीवन कितना एकाकी है, किनना नीरस। वह प्रेम का प्यासा है। अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिये इधर-उधर भटकता फिरता है। यदि उसने एक टुकड़ा मुझसे पा लिया, तो इससे कौन सा भयंकर पाप हो गया। पर हाँ, भविष्य में मैं अधिक सावधान रहूँगी। जब मैं किसी दूसरे की हूँ, मेरे तन मन व सर्वस्व पर किसी और का एकाधिकार है, तो उसकी सहमति के बिना मैं अपने घर से एक टुकड़ा तक भी किसी को कैसे दे सकती हूँ।

सितम्बर का अन्त होने में पहले ही वीरेन्द्र मसूरी वापस लौट आया। वह लता के पास आया, और बोला—

'देखो, लता, मुझे अपनी प्रतिज्ञा याद रही। मैं मसूरी आ गया। बोलो, तुम्हारा क्या हाल है? विनोद कब आ रहा है? बम्बई कब चलोगी?'

'उन्होंने तीन महीने की छुट्टी ले ली है। यूरोप के लोग उन्हें आने ही नहीं देते। अब जनवरी से पहले भारत नहीं लौट सकेंगे।'

'अच्छा, अब तुम्हारा क्या प्रोग्राम है?"

'मेरा क्या प्रोग्राम? मेरठ जाकर क्या करूँगी, यहीं रहने का विचार है। दिसम्बर में जब बच्चों के स्कूल बन्द होंगे, उन्हें साथ लेकर घर लौट जाऊंगी।'

'अब तो मसूरी का सीजन भी खतम हो रहा है। सड़कें सूनी नजर आती हैं। अब यहाँ तुम्हारा मन कैसे लगेगा?'

'मेरे लिए जैसा मेरठ, वैसा मसूरी। वहाँ भी मेरा कौन है? यहाँ घू-

फिर तो आती हूँ । सैर में कुछ समय कट जाता है । मेरठ में तो मकान की चहारदीवारी से बाहर आ जा सकना भी कठिन हो जायगा । कई बार अकेले रहते-रहते जी घबराने लगता हैं। पर अन्य उपाय भी क्या हैं ?'

यह कहते-कहते लता की आँखों में आँसू झलक आये। सचमुच जीवन का मार्ग भी कितना सूना और विकट है। किसी के साथ रहने पर मंजिल जरा आसानी से कट जाती है। मनुष्य ने जीवन-पथ पर तो चलना ही है, खड़े रहकर तो काम चल नहीं सकता। कोई साथ रहे, तो रास्ता चलने में सुविधा रहती है। पर अकेले चलना ? कितना नीरस और भयंकर है। इसीलिए मनुष्य अपना साथी चुनता है, जीवन का साथी। पर यदि वह साथी बिछुड़ जाए, सदा के लिए या कुछ समय के लिए, तो मनुष्य को कैसा सूना-सूना-सा लगने लगता है। वह चाहता है, राह चलता हुआ कोई अन्य यात्री मिल जाए, कुछ देर के लिए उसका साथ हो जाए। पर समाज, निष्ठुर समाज, इसे सहन नहीं कर सकता। इसे वह पाप समझता है, घोर कलुष, घृणित अनैतिकता और मर्यादा का अतिक्रमण। पर राह पर अकेला चलता हुआ मनुष्य करे क्या ? थोड़ी देर के लिए किसी अन्य राही का साथ पकड़ लेना क्या सचमुच ही इतना बुरा वा अनुचित है ?

जीवन-यात्रा के लिए लता ने विनोद को अपना साथी बनाया था। एक साथ मंजिल को तय करते हुए वे दोनों कितने खुश थे। बारह साल तक वे साथ-साथ रहे। बारह साल की लम्बी अवधि ऐसे बीत गई, मानो एक क्षण हो। उन दोनों का जीवन कैसा एकरस था। इस बीच में एक अन्य राही उन्हें मिल गया। लता उससे बातें करने लगी। वह करती भी क्या ? उस समय विनोद पता नहीं किस ध्यान में मग्न था। शायद कविता कर रहा था, या किसी गूढ़ विषय पर विचार में लीन था। लता ने सोचा, इनके काम में क्यों विघ्न डालूं। वह उस राही से बातें करने लगी। इसी बीच में विनोद उसे छोड़कर आगे बढ़ गया। कहीं चला गया, लता अकेली खड़ी शून्य की ओर देखती रह गई। अब वह कहाँ जाए, किसके साथ जीवन मार्ग पर आगे बढ़े। उसने उस नये राही से कहा, भाई, इस सुन-

सान रास्ते पर मुझे अकेले न छोड़ देना, मेरे साथ-साथ रहना, अकेले मेरा जी घबराता है। शीघ्र ही मेरा साथी मुझे मिल जायगा। तब जहाँ जाहे, चले जाना। तुम्हारे साथ रहने से जरा भरोसा रहेगा, सूनापन अधिक अनुभव नहीं होगा। वीरेन्द्र के सान्निध्य में आकर लता ने क्या बुरा किया ? आखिर, वह भी एक निर्बल प्राणी ही तो है न ? वीरेन्द्र का सहारा पाकर उसका अकेलापन कुछ-कुछ दूर हो गया। इसे पाप कहें या क्या ? क्या समाज की मर्यादा की दृष्टि से यह कोई अक्षम्य अपराध था ?

लता बाथ रूम में चली गई, और मुँह धोकर वीरेन्द्र के पास लौट आई। उसने कहा—'अब क्या प्रोग्राम है ?'

'जो तुम कहो। मैं तैयार हूँ, चाय आदि से निबट आया हूँ।'

'चलो, आज कहीं दूर तक घूम आएं। रोज अकेले-अकेले सैर को जाते हुए दिल घबराने-सा लगा है। तुम साथ रहोगे, तो तबियत लगी रहेगी।'

लता और वीरेन्द्र घूमने चल पड़े। केमटी फॉल के रास्ते से होकर वे रेस कोर्स पहुँच गये। साँझ का समय था, दूर क्षितिज पर सूरज डूब रहा था। बरसात खतम हो चुकी थी, पर सफेद रंग के जलविहीन बादल अब भी आसमान में उड़ते रहते थे। डूबते हुए सूर्य की किरणों से बादलों का रंग लाल हो रहा था। लता और वीरेन्द्र रेस कोर्स में एक चट्टान पर बैठ गये। डूबते हुए सूर्य की ओर वे देर तक एकटक देखते रहे। कुछ समय बाद मौन को भंग करते हुए वीरेन्द्र ने कहा—

'तुम क्या जानो, लता, मेरा जीवन कितना सूना है। कई बार मैं अकेलेपन से घबरा उठता हूँ। मुझे अपने से ही भय लगने लगता है। इस पृथ्वी पर करोड़ों मनुष्य निवास करते है,पर उनमें एक भी तो ऐसा नहीं है, जिसे मैं अपना कह सकूं।'

'सच पूछो, तो मेरा भी यही हाल है। चार महीने हुए, जब कि वे यूरोप गये थे। उनके चले जाने के बाद एक-एक दिन एक-एक

बराबर मालूम देता है। तुम्हारी दशा को मैं समझ सकती हूँ, वीरेन्द्र ! आजकल मैं भी तुम्हारे ही समान सूनी और अकेली हूँ।'

'मेरे सूनेपन को तुम कैसे अनुभव करोगी, लता ! तुम अकेली अवश्य हो, पर विनोद की स्मृति और भविष्य की आशा तुम्हारे साथ हैं। पर मैं ? मेरे साथ कौन है ? कोई नहीं।'

लता और वीरेन्द्र देर तक रेस कोर्स में बैठे रहे। जब अंधेरा हो गया, तो वे वापस लौट आये। उन्होंने एक साथ बैठ कर भोजन किया। भोजन के बाद वीरेन्द्र ने पूछा—

'अब क्या विचार है ? डान्स तो आजकल होते नहीं। सिनेमा अभी अवश्य खुले हैं, पर कोई अच्छा शो इन दिनों नहीं चल रहा है। तुम्हारा समय आजकल कैसे कटता होगा ?'

'किसी तरह से कट ही जाता है। अब अकेले रहने की आदत सी पड़ती जा रही है।'

'तो चलो, आज साथ मिल कर बैठेंगे। कोई ड्रिन्क मँगा लेता हूँ। मसूरी आजकल ठण्डा भी बहुत है। नीचे से चला आ रहा हूँ, कुछ ठण्ड मालूम पड़ती है।'

'तो चलो, मेरे कमरे में चलो। वहाँ आराम से बैठेंगे, देर तक बातें करते रहेंगे। रोज नौ बजे बिस्तर पर लेट जाती हूँ। मुझे और काम भी क्या है ? छत की कड़ियाँ गिनती रहती हूँ। बारह बजे से पहले नींद नहीं आती। आज तुम साथ होगे, तो अकेले पड़े हुए छत की कड़ियाँ गिनने की जरूरत नहीं रहेगी।'

वीरेन्द्र लता के साथ उसके कमरे में चला आया। बेयरा को बुलाकर उसने ह्विस्की और सोडा रख जाने का आदेश दे दिया। बेयरा ने पूछा—'कुछ खाने के लिए भी ले आऊँ, हजूर !'

'पोटेटो चिप्स की दो प्लेटें भी साथ ले आना।'

बेयरा सब सामान रख कर चला गया। वीरेन्द्र ने कहा—

'कुछ ठण्ड मालूम पड़ती है, हवा अच्छी नहीं लगती। कहो तो दर-

वाजा वन्द कर दूँ ।'

'कर दो, पर खिड़की खुली रखना । नहीं तो घुट हो जायगा ।'

ह्विस्की की चुस्कियाँ लेते हुए वीरेन्द्र ने कहा—

'मेरा जीवन एक रेगिस्तान के समान है, एक दम नीरस, एक दम शुष्क । जव कभी तुम मिल जाती हो, तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी शीतल झरने के किनारे आ वैठा हूँ ।'

'मुझे भी ऐसा ही मालूम होता है, वीरेन्द्र ! तुम सीलोन गये थे, मेरी इच्छा थी, कि तुम्हारे साथ चलूं । पर तुमने तो मेरे मन की जरा भी परवाह नहीं की । मुझे अकेला छोड़ कर स्वयं चले गये । एक वार तुमने कहा था, मैं कोई काम क्यों नहीं कर लेती । जर्नलिज्म मुझे वहुत अच्छा लगता है । यदि सीलोन की यात्रा में तुम्हारे साथ रहती, तो इस काम का कुछ अनुभव ही मिल जाता ।'

'तो तुमने मुझे कहा क्यों नहीं ?'

'कहा तो था, पर तुमने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया ।'

'मुझ से वहुत भूल हुई, लता ! पर अभी क्या विगड़ा है । यूरोप और अमेरिका के अखवारों के लिए लेख लिखने और उनमें संवाद भेजने के लिये मुझे तो आना-जाना पड़ता ही है । अव शीघ्र ही सिंगापुर जाने का विचार है । मलाया की समस्या वहुत उग्र होती जा रही है । कम्यु-निस्टों ने वहाँ वहुत उपद्रव मचा रखा है । अक्टूवर में मैं वहाँ जाऊँगा, तव तुम भी मेरे साथ चली चलना ।'

'सुना है, सिंगापुर वहुत समृद्ध नगर है । सव देशों के लोग वहाँ वसते हैं । पूर्व और पश्चिम का वहाँ वड़ा सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है ।'

'यह वात विलकुल सत्य है । कलकत्ता और वम्वई के मुकावले में भी सिंगापुर अधिक महत्त्व का नगर है । उसका एक अपना ही आकर्षण है ।'

वीरेन्द्र ह्विस्की के दो पेग खतम कर चुका था । लता भी एक पेग खतम करके दूसरा शुरू कर चुकी थी । दोनों पर रंग चढ़ने लग गया था । जो वात महीनों से वीरेन्द्र के हृदय को मथ रही थी, कि

वह प्रयत्नपूर्वक अब तक दबाता रह था, आज उसने उसे साफ-साफ कह देने का निश्चय किया। यदि पुरुष में पौरुष हो, तो वह अपने मन की भावना को देर तक दबा कर नहीं रख सकता। वह पहल करता है, आगे बढ़ता है। स्त्री पर बलपूर्वक अधिकार करने का यत्न करता है। सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए वीरेन्द्र ने कहा—

'तुम्हें याद है, लता, एक बार मैंने तुम्हें क्या कहा था ?'

'कौन सी बात ?'

'मैं सारी दुनिया में एक चीज को ढूंढता फिरता हूँ। यूरोप घूम आया, अमेरिका का चक्कर काट आया, चीन और जापान भी हो आया। पर वह चीज अब तक मुझे नहीं मिली। पर मैं भी कितना मूर्ख था ? वह चीज तो मेरे पास ही थी, अपने ही देश में, बिलकुल अपने पास।'

'कौन सी चीज ?'

'मेरे प्रेम की प्रतिमा, मेरी उमंगों का मूर्तरूप, मेरी आकांक्षाओं की प्रतिमूर्ति।'

'कौन है, वह तुम्हारी प्रतिमा ?'

'मेरे मुख से क्यों कहलाती हो ? क्या तुम उसे नहीं जानती ? तुम ही तो हो वह। सच कहता हूँ, लता, जब कभी तुम्हें देखता हूँ, ऐसा मालूम होता है, तुम्हीं हो वह, तुम्हीं हो वह।'

'पर मैं तो दूसरे की हूँ, तुम्हारी कैसे हो सकती हूँ ?'

'क्यों नहीं हो सकती ? क्या केवल इसलिये, कि एक अन्य पुरुष के साथ तुम विवाह बन्धन में बँधी हुई हो ? क्या अग्निकुण्ड के चारों ओर किसी के साथ सात बार फेरे फेर लेने से ही कोई व्यक्ति सदा के लिए उसका हो जाता है, केवल उसका। क्या सच्चा प्रेम इन मनुष्यकृत बाधाओं को तोड़ कर नहीं फेंक सकता। मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ, लता।'

'ऐसी बात न कहो, वीरेन्द्र ! ऐसा कहना पाप है।'

'पाप ? पाप पुण्य की कल्पना मनुष्यकृत है। पाप है, अपने हृदय की उमंगों को जबरदस्ती दबाने में, अपनी आकांक्षाओं को कुचल डालने में,

अपने प्रेम की बलि दे देने में। और यह सब किस लिये ? क्योंकि मनुष्य द्वारा निर्धारित मर्यादा का इनसे उल्लंघन होता है। मेरी आंखों की तरफ देखो, लता ! इनमें कितनी प्यास है, कैसी अमिट प्यास। अपने हृदय के अंदर देखने का प्रयत्न करो, लता ! सच बताओ, क्या सचमुच तुम मुझे प्रेम नहीं करती ? एक बार कह दो, तुम मुझ से घृणा करती हो। मैं सदा के लिये तुम्हें छोड़ कर चला जाऊँगा। फिर कभी तुम्हें अपना मुंह नहीं दिखाऊँगा।'

'ऐसा न कहो, वीरेन्द्र ! मैं तुम से घृणा नहीं करती।'

'फिर साफ-साफ क्यों नहीं कहती, कि तुम भी मुझे प्यार करती हो। मैं तुमसे कुछ भी नहीं छिपाऊँगा। मैं तुम्हें प्यार करता हूं। यूरोप से लौटकर जब मेरठ में तुमसे मिला था, तभी मैंने जान लिया था, कि जिसकी तलाश में दर दर भटकता रहा, वह तुम्हीं हो, केवल तुम्हीं। उस दिन प्रेम के उस पवित्र मन्दिर 'ताजमहल' में घूमते हुए तुमने मुझे प्रेम-मन्त्र की दीक्षा दी थी। उस दिन से तुम्हारे बताये हुए प्रेम मन्त्र की साधना कर रहा हूं। किस लिये ? तुम्हें पाने के लिये। अब वह मन्त्र सिद्ध हो गया है, आज उसके पारायण का समय आ गया है। आज की यह रात ! आज पूर्णिमा है, पृथिवी और आकाश—सब चांदनी से नहाये हुए हैं। प्रेम मंत्र के पारायण का इससे अच्छा मुहूर्त्त और कौन सा हो सकता है।'

'तो तुम चाहते क्या हो ?'

'क्या यह भी मुझे बताना होगा ? क्या तुम स्वयं नहीं जानतीं ? आज मैं तुम से मिल कर एक हो जाना चाहता हूं। मैं तुम्हारा प्रेमी हूं, तुम मेरी प्रेयसी हो। तुम कब तक मुझे इस प्रकार तरसाती रहोगी ? मेरी आंखों को देखो, उनकी प्यास को अनुभव करो। इस प्यास को शान्त करना तुम्हारे हाथों में है, केवल तुम्हारे हाथों में।'

'तुम्हें क्या हो गया है, वीरेन्द्र ! तुम कैसी बातें कर रहे हो ?'

'तुम्हें मुझ से प्यार करना ही होगा, लता ! प्यार पवित्र होता है, दैवी होता है। उसकी उपेक्षा न करो। मैं जानता हूं, तुम भी मुझे प्या-

करती हो। विवाह वन्धन, सामाजिक मर्यादा और लोक लाज जैसे तुच्छ विचारों को अपने प्रेम के मार्ग में वाधा न वनने दो। इन कृत्रिम वाधाओं को तोड़ कर फेंक दो।'

वीरेन्द्र ह्विस्की के चार पेग पी चुका था, लता भी तीसरे पेग पर आ गई थी। वीरेन्द्र अपने पुरुषत्त्व को प्रयोग ले आने के लिये उतारू हो गया था। उसने निश्चय कर लिया था कि जिस स्त्री को वह प्यार करता है, उस पर अपना अधिकार करके ही रहेगा, उसके मन पर, उसके हृदय पर, उसकी आत्मा पर, उसके शरीर पर। पौरुष के सम्मुख स्त्री झुक जाती है, उसका दर्प नष्ट हो जाता है। मर्यादा, समाज, नैतिकता आदि के जो विचार मनुष्यों को जकड़े रहते हैं, उद्दण्ड प्रेम के सम्मुख वे टिक नहीं पाते। वीरेन्द्र उठा और सोफे पर लताके साथ बैठ गया। उसने लता के गले में अपनी वांह डाल दी, और उसके ओठों का चुम्बन लेते हुए कहा—

'क्या कहती हो लता, क्या तुम मुझे प्यार नहीं करती ?'

लता ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। वह वीरेन्द्र के और समीप खिसक आई। उसको अपनी वाहों में भरकर आलिंगन करते हुए वीरेन्द्र ने कहा—

'आज मंजिल के वहुत नजदीक पहुँच गया हूँ। जिस उत्तुङ्ग पर्वत-शिखर पर चढ़ने के लिये इतने दिनों से यत्न कर रहा था, आज वह कितने समीप आ गया है। आज उस पर चढ़ कर ही दम लूँगा।'

'कैसी वातें कर रहे हो, वीरेन्द्र ! तुम ऐसे मार्ग पर चलना चाहते हो, जो पतन की ओर ले जाता है।'

'यदि प्रेम के पारायण को तुम पतन नाम देना चाहती हो, तो मुझे उसमें कोई एतराज नहीं है। पर सच्चे प्रेम की परम पराकाष्ठा की अनुभूति के लिये मैं पतित समझा जाने के लिये भी तैयार हूँ।'

लता उठ कर खड़ी हो गई। वीरेन्द्र का वाहुपाश उसे वद्ध नहीं रख सका। उसने आवेश में आकर कहा—'और आगे न वढ़ो, वीरेन्द्र !

इससे आगे एक ऐसा गर्त है, जिसमें गिर कर कोई आदमी बचा नहीं रह सकता।'

'तुम जाती कहाँ हो, लता ! बैठो, क्या तुम्हें मेरे साथ बैठना बुरा लगता है ? यदि बुरा लगता हो, तो साफ-साफ कह दो। मैं तुरन्त तुम्हारे पास से चला जाऊँगा।'

लता फिर वीरेन्द्र के पास सोफा पर बैठ गई। उसने कहा—

'तुम तो बिलकुल पागल हो गये हो, वीरेन्द्र !'

'हाँ, मैं सचमुच पागल हो गया हूँ। प्रेम मनुष्य को पागल बना देता है। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, केवल तुमको। क्या तुम्हें यह बुरा लगता है।'

वीरेन्द्र ने लता को अपनी ओर खींच कर उसे अपनी छाती से लगा लिया। वे दोनों देर तक इसी प्रकार पड़े रहे। लता के मस्तक गर्दन और गालों को बार-बार चूमते हुए वीरेन्द्र ने कहा—

'तुम कितनी अच्छी हो, लता ! सारी दुनिया घूम चुका हूँ, पर तुम्हारे जैसी सुन्दरी आज तक कहीं नहीं देखी। तुमने मुझ पर कैसा जादू कर दिया है। आसाम और बंगाल के जादू की कहानियाँ सुना करता था। सुनता था, आसाम में ऐसी जादूगरनियाँ रहती हैं, जो पुरुष को मेमना बना देती हैं। तुम सचमुच ऐसी ही जादूगरनी हो। तुम्हारी केशराशि में अपने मुँह को छिपा कर मुझे अपूर्व सुख मिलता है। तुम्हारी नंगी गरदन का चुम्बन करके मैं अपनी सुध-बुध भूल जाता हूँ। तुम्हारे साँसों में एक ऐसी सुगन्ध है, जो मुझे मस्त कर देती है। इच्छा होती है, तुम्हारी छातियों से खेलूँ। कभी बचपन में गेंद से खेला करता था। तुम्हारी छातियों को देखकर गेंद खेलने की इच्छा फिर से जागृत हो उठती है।'

वीरेन्द्र ने लता को अपनी बाहों में कस लिया। वह उसके कुचों के साथ खेलने लगा। लता ने कोई विरोध नहीं किया। वीरेन्द्र के सबल आलिंकन में उसे भी अनुपम सुख की अनुभूति हो रही थी। कुछ देर बाद वीरेन्द्र ने कहा—

'इच्छा होती है, आज की सारी रात इसी तरह साथ रहकर बिता

दें। पर तुम तो बहुत थक गई हो, लता। क्या सोच रही हो ? यही न, कि वीरेन्द्र कितना नीच है, कितना पापी। सच सच कहना।'

'नहीं, यह बात नहीं है।'

'तो फिर इस तरह बैठी कब तक रहोगी ? मालूम होता है, बहुत थक गई हो, चलो, लेट जाओ।'

खिड़की बन्द करके लता बिस्तर पर लेट गई, वीरेन्द्र उसके पास पलंग पर जा बैठा। लता की छातियों का उभार उसे पागल बना रहा था। वह पलंग पर आधा लेट गया, और लता की कमर का सहारा लेकर उसकी छातियों के साथ क्रीड़ा करने लगा। बीच-बीच में वह उसे चूम लेता, और उसके बालों को अपनी उंगुलियों से सुलझाने लगता। लता ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। वह आविष्ट-सी हो गई थी, कुछ सुरा के प्रभाव से और कुछ वीरेन्द्र के प्रेम से। न उसे मर्यादा का विचार रहा, और न नैतिक विचारों का। वीरेन्द्र के पुरुपत्व ने उसे अभिभूत सा कर लिया था। आत्म समर्पण कर देने के अतिरिक्त न अब उसके सम्मुख कोई मार्ग था, और न इच्छा ही। धीरे-धीरे वीरेन्द्र लता के साथ पलंग पर लेट गया। दोनों प्रेमी मिल कर एक हो गये, मन से, आत्मा से, और शरीर से। इस तरह साथ पड़े-पड़े उन्हें नींद आ गई। सुबह जब उनकी आँखें खुलीं, तो नौ बज गये थे। कमरा सूर्य की रोशनी से भर गया था, यद्यपि बिजली की बत्ती अभी तक जल रही थी। नींद खुलने पर लता अकचका कर उठ बैठी, और अपने कपड़े सँभालते हुए बोली—

'अरे, सुबह हो गई। बेयरा चाय लेकर आया होगा, पर कमरा बन्द देख कर लौट गया होगा।'

'आज मैं तृप्त हूँ, लता। मेरे जीवन की साध पूरी हो गई। आज मुझे ऐसी तृप्ति अनुभव हो रही है, जैसी जीवन में पहले कभी नहीं हुई थी।'

लता चुप रही। उसने वीरेन्द्र की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वीरेन्द्र कहता गया—

'इसे कामवासना न समझना, लता। यह प्रेम का पारायण है, सच्चे

प्रेम की स्वाभाविक संतृप्ति। अपनी कामवासना मैं पहले भी तृप्त करता रहा हूँ। पर शरीर की तृप्ति से क्या होता है ? उसमें यह रस कहां है ! जब आत्मा मन और शरीर तीनों की तृप्ति हो, तभी सच्चे प्रेम का रस प्राप्त होता है। आज मेरे जीवन में भी वह क्षण उपस्थित हो गया। अब मेरी साध पूरी हो गई।'

लता अब भी चुप थी। उसकी आँखों में आंसू झलक आये थे। वीरेन्द्र कहता गया—

'तुम चुप क्यों हो, लता। यह मत भूलना, कि मेरा प्रेम सच्चा है, पवित्र है। मैं जानता हूँ, तुम दूसरे की हो, मेरी कभी नहीं हो सकती। तुम विनोद को हृदय से प्रेम करती हो। पर तुम्हारे कारण यदि मुझे भी सच्चे प्रेम का रस प्राप्त हो सका, यदि मेरे हृदय की प्यास भी शान्त हो सकी, तो इसमें अनौचित्य की क्या बात है ? तुम व्याकुल क्यों हो, लता। हमने कोई अनुचित कार्य नहीं किया। तुम मुझे प्यार करती हो, और मैं तुम्हें। मानसिक प्रेम का पारायण शारीरिक सान्निध्य से ही होता है, लता। अच्छा, अब मैं चलता हूँ। नहा धोकर कुछ जरूरी काम करना है।'

'तो फिर अब तुम कब मिलोगे ?'

'जब तुम चाहो।'

'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, वीरेन्द्र ! मेरी इच्छा के बिना कोई मेरे अंग का स्पर्श तक भी नहीं कर सकता। हम दोनों मिलकर एक हो सके, क्योंकि मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ। अच्छा, तीसरे पहर चार बजे आ जाना। हम एक साथ चाय पीएंगे, और फिर एक साथ घूमने जाएंगे।'

(१७)

उस दिन लता का मन कुछ उद्विग्न रहा। किसी भी काम में उसका जी नहीं लगा। वह देर तक बिस्तर पर पड़ी रही। बेयरा ने आकर कहा, हजूर, हाजरी तैयार है। पर उसे भूख नहीं थी। जमादार कमरा साफ करने के लिए आया, पर लता ने उसे अन्दर आने से मना कर दिया। रूम बेयरा बिस्तरा लगाने और कमरा झाड़ने के लिए आया, पर लता

को पलंग पर पड़ा देखकर स्वयं वापस चला गया। लता ने न स्नान किया, और न बालों में कंघी की। लंच का समय हो गया, पर वह अपने कमरे से बाहर नहीं निकली। बेयरा ने बाहर से पूछा—'कैसी तबियत है, मेम साहब !'

'ठीक है, सिर में कुछ भारीपन है, लंच यहीं ले आओ।'

बेयरा लंच ले आया। सूप पीकर लता ने पुडिंग खा लिया। गोश्त सब्जी और रोटी को उसने छुआ भी नहीं। काफी पीकर उसने सिगरेट जलाई, और फिर मुंह धोकर कंघी करने बैठ गई। उसका चित्त अशान्त था। उसे अपने ऊपर ग्लानि हो रही थी। सीता और सावित्री के जो आदर्श बचपन में उसके सामने रखे गये थे, वे उसके मन में उद्वेग पैदा कर रहे थे। वह सोचने लगी, रात मुझे क्या हो गया था। मैं सचमुच अपना विवेक खो बैठी थी। मैंने अपने को एक पर-पुरुष के अर्पित कर दिया। क्या यह उचित हुआ ? वे ठीक कहते थे, मैं एक ऐसे मार्ग पर चल रही हूँ, जो विनाश की ओर ले जाता है। मैं कहती थी, नहीं, वीरेन्द्र को मैं प्रेम नहीं करती। मुझे उसके साथ उठना-बैठना, उससे बातें करना अच्छा लगता है, इससे अधिक कुछ नहीं। वे कहते थे—तुम अपने को धोखे में न रखो, लता। तुम जिस प्रकार उसके प्रति आकृष्ट हो रही हो, उसी का दूसरा नाम प्रेम है। निःसन्देह, मैं वीरेन्द्र को प्रेम करती थी। मैं दूसरों को तो धोखा दे सकती हूँ, पर अपने को कैसे धोखे में रखूं। वीरेन्द्र के प्रति आकर्षण का जो अंकुर मेरे हृदय में उत्पन्न हो गया था, एक न एक दिन उसे प्रेम के विशाल वृक्ष के रूप में विकसित होना ही था। आखिर, वह दिन आ ही गया। क्या मैं सचमुच वीरेन्द्र को प्रेम करती हूँ ? यदि न करती होती, तो यह दिन क्यों आता ? वीरेन्द्र ठीक कहता है, मैं उसे प्रेम करती हूँ, और वह मुझे। सच्चा प्रेम एक ऐसी नदी के समान होता है, जो न किनारों की परवाह करता है, और न रास्ते के झाड़-झंकाड़ की। मैं सचमुच वीरेन्द्र को प्रेम करती हूँ। तभी तो वह मेरे शरीर को प्राप्त कर सका। बिना प्रेम के कोई पुरुष मेरे अंग को छू तक नहीं सकता।

मैं जानती हूँ, मैंने मर्यादा का अतिक्रमण किया है। पर ये सब मर्यादायें मनुष्य की ही बनाई हुई तो हैं। सच्चे प्रेम के सामने ये कब तक टिक सकती हैं ?

लता दिन भर कमरे से बाहर नहीं निकली। तीसरे पहर वह बिस्तर से उठी, और शृंगार करने बैठ गई। उसने तबियत के साथ शरीर का प्रसाधन किया, बढ़िया साड़ी पहनी। तैयार होकर वह वीरेन्द्र का इन्तजार करने बैठ गई। अब उसका मन स्वस्थ था, ग्लानि की जो भावना उसके मन में उत्पन्न हुई थी, वह नष्ट हो गई थी। उसने अपना मार्ग निश्चित कर लिया था। वह सोचती थी, मैं वीरेन्द्र को प्यार करती हूँ। वह मेरा है, केवल मेरा। इस प्रेम को मैं क्यों ठुकराऊँ ? क्या केवल सामाजिक मर्यादा के कारण ? नहीं, मैं इतनी निर्बल नहीं हूँ।

ठीक चार बजे वीरेन्द्र लता के कमरे में आया। बेयरा को वह कह आया था, उसकी चाय भी लता के कमरे में ले आये। दोनों ने साथ बैठ कर चाय पी, और फिर वे एक साथ घूमने के लिए चल पड़े। वीरेन्द्र ने पूछा—

'किस ओर चलें ?'

'मुझे रेस कोर्स में टहलना बहुत अच्छा लगता है। उसका मार्ग कितना सुन्दर है, कैसा एकान्त। रेस कोर्स की उस विशाल चट्टान पर बैठकर डूबते हुए सूर्य का दृश्य देखना मुझे बहुत अच्छा लगता है।'

वे रेस कोर्स के निर्जन मार्ग पर अकेले बढ़ते गये। रास्ते में वीरेन्द्र ने लता की बगल में हाथ डालते हुए कहा—

'अब मैं तृप्त हूँ, लता। सच्चे प्रेम की अनुभूति कितनी मधुर होती है।'

लता ने उसकी बांह को अपनी कमर से हटाया नहीं। वह खिसक कर उसके और समीप आ गई। वीरेन्द्र ने उसे दबाते हुए कहा—'बर्साय के पार्क का वह दृश्य आज मेरी आंखों के सामने घूम रहा है, जब मैंने दो प्रेमियों को इसी प्रकार साथ घूमते हुए देखा था। जानती हो, लता उस दिन जब हम दोनों ताज के उद्यान में साथ-साथ टहल रहे थे, तो

मेरी क्या इच्छा हो रही थी ? मैं तुम्हारी कमर में अपनी बाँह डाल दूं, और तुम मेरी। और हम दोनों एक-दूसरे के साथ चिमट कर साथ-साथ चलते जाएं।'

'तो तुमने यह किया क्यों नहीं ?'

'सोचता था, कहीं तुम नाराज न हो जाओ।'

'क्या तुम्हें मेरे प्रेम का विश्वास नहीं था ? तुमने इतने दिन मुझे तरसाया क्यों ? बोलो।'

'क्या बताऊं, मुझमें साहस की बहुत कमी है। इतने दिन तक तुम्हारे प्रेम में तड़पता रहा। शीतल जल से भरी हुई धारा मेरे सामने थी, मैं प्यास के मारे तड़प रहा था, पर नदी के पास पहुँच कर मैं कुछ भय-सा अनुभव करने लगता था। प्यास के मारे बेचैन था, पर एक घूंट पानी पीने की हिम्मत ही नहीं होती थी।'

'यही हालत मेरी भी थी। तुम इतने कायर क्यों हो, वीरेन्द्र ! स्त्री चुपचाप तड़पती रहती है, अपने प्रेमी के प्रेम को प्राप्त करने के लिए। वह अपने मुंह से कुछ नहीं कहती।'

इसी प्रकार की बातें करते हुए वे रेस कोर्स पहुँच गये। इस समय सूर्य अस्ताचल को चला गया था। सूर्य की कान्ति क्षीण हो गई थी, और वह दूर क्षितिज पर लाल रंग के एक बड़े-से थाल के समान दिखाई पड़ रहा रहा था। लता एकटक होकर उस दृश्य को देख रही थी। उसके मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। वह सोच रही थी, तेरह साल के लग-भग हुए, जब कि वह इसी प्रकार विनोद के साथ बैठी हुई थी। गंगा का किनारा था। बरसात के जल से गंगा में बाढ़ आई हुई थी। नदी के परले पार वृक्षों के झुरमुट के पीछे सूर्य डूब रहा था। ठीक यही दृश्य था। विनोद ने मुझसे पूछा था—क्यों लता, क्या कभी हमारा प्रेम सूर्य भी इसी प्रकार निस्तेज हो जायगा, और फिर न जाने किस अंधेरे गर्त में जाकर अस्त हो जायगा। मैंने कातर वाणी से उत्तर दिया था—कैसी बात कहते हो, विनोद। अपशकुन की ऐसी बात कभी मन में भी नहीं लानी चाहिये।

इस पर विनोद ने हँसते हुए कहा था—सूर्य कभी अस्त नहीं होता, लता। वह अनादि है, अनन्त है। साँझ को वह कहीं छिप जाता है, सुवह को नई आभा लेकर फिर से उदय होने के लिए।

वीरेन्द्र की बात से उसका ध्यान भंग हुआ। वीरेन्द्र कह रहा था—

'इस प्रकार क्या देख रही हो, लता ?'

'डूबते हुए सूर्य को। कैसा करुण दृश्य है।'

'सूर्य अस्त होता है, नये लोक को प्रकाशित करने के लिए।'

लता की आँखों में आँसू आ गये। वीरेन्द्र ने कहा—

'तुम उदास क्यों हो, लता ?'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।'

'क्या हम सदा के लिए एक नहीं हो सकते, लता।'

'क्यों नहीं, हम एक ही तो हैं। तुम और क्या चाहते हो ?'

'हम एक हैं, अपनी दृष्टि में। पर समाज की दृष्टि में नहीं। इस तरह छिप-छिपकर हम कब तक एक साथ रह सकते हैं ?'

'तो फिर तुम चाहते क्या हो ?'

'क्यों न हम विवाह कर लें। समाज की दृष्टि में भी हम एक हो जाएँ।'

'ऐसी बात न कहो, वीरेन्द्र ! तुम जानते हो, मैं विवाहित हूँ। मेरे बच्चे भी हैं। उन्हें मैं कैसे छोड़ सकती हूँ।'

'उन्हें छोड़ने की क्या आवश्यकता है। वे तुम्हारे साथ रहेंगे, हम दोनों के साथ। रहा विनोद, वह तुम्हें छोड़ चुका है। अब वह भारत कभी वापस नहीं आयगा। अभी उसने तीन महीने की छुट्टी ली है। फिर कालिज से त्यागपत्र दे देगा। मैं उसे भलीभाँति जानता हूँ। वह जहां रहेगा, अपने लिए साधन जुटा लेगा।'

'विवाह की बात न कहो, वीरेन्द्र ! क्या मेरा प्रेम तुम्हारे लिए पर्याप्त नहीं है। विवाह के बन्धन में क्यों बंधना चाहते हो ? इसकी क्या जरूरत है ? जो स्त्री एक पुरुष से निवाह नहीं कर सकी, एक की होकर नहीं रह सकी, कौन जाने दूसरे के साथ वह कब तक निवाह कर सकेगी ?

विवाह एक बन्धन है, पर प्रेम कभी बन्धन में बंधकर नहीं रहता। वह पक्षी के समान उन्मुक्त गगन में विचरण करना चाहता है, उसके लिए पिंजरे की तलाश न करो, वीरेन्द्र !'

'तो क्या हम जीवन भर इसी प्रकार एक दूसरे के लिये तरसते रहेंगे ?'

'क्या तुम्हें अब भी तृप्ति नहीं हुई। मेरी आत्मा, मेरा मन, मेरा शरीर—सब तुम्हारा हो चुका है। इससे अधिक तुम और क्या चाहते हो ? समाज से तुम क्यों डरते हो ? तुम तो पुरुष हो। मैं स्त्री होकर भी समाज से नहीं डरती। मैं तुम्हें प्यार करती हूं, वीरेन्द्र ! तुम्हारे लिए यही पर्याप्त होना चाहिये।'

'मैं भी एक मनुष्य हूँ, लता। चाहता हूँ, किसी को अपना बना कर रखूं। कोई मेरी हो, केवल मेरी। दुनिया भर में अपने प्रेम की प्रतिमा ढूंढता फिरा। आखिर, तुम में मैंने उस प्रतिमा को प्राप्त किया। अब तुम मुझ से दूर क्यों हटती हो, लता।'

'मैं दूर नहीं हटती। मैं तुम्हारी हूँ, तुम्हें प्रेम करती हूँ। पर मैं पिंजरे में बन्द होकर नहीं रहना चाहती। विवाह एक बन्धन है, एक पिंजरा है।'

रात हो गई। गुलाबी ठण्ड पड़ने लगी। लता और वीरेन्द्र होटल वापस लौट आये। उन्होंने साथ बैठ कर भोजन किया। डिनर से निबट कर वे लाञ्ज में जा बैठे, और बातें करने लगे। लता ने कहा—

'सात अक्टूबर को रानी का जन्म दिन है। उसमें केवल एक सप्ताह रह गया है। रानी अपने जन्म दिन की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा किया करती है। हम उसका जन्म दिन बड़ी धूमधाम के साथ मनाया करते हैं। उसके लिये तैयारी करनी है। तुम इस काम में मेरी मदद करोगे न ?'

'क्यों नहीं।'

'उसके लिये एक बढ़िया सी ड्रेस सिलवानी है। वह चोली और लहँगा पहनने के लिए जिद किया करती है। मैंने कितनी बार समझाया, बेटी आजकल लहंगे का चलन नहीं है। पर उसे समझ में आये, तब न ? किसी लड़की को चोली लहँगा पहने देख लिया था। कहती है, अम्मा

भव हो रही है।'

'मुझे तो अभी नींद नहीं आ रही है। चलो, मेरे कमरे में चलो। कुछ देर साथ बैठ कर बातें करेंगे। एक गिलास शाम्पेन का पी लो, सब थकान दूर हो जायगी।'

'तो फिर यही सही। मैं अपने कमरे में चलती हूँ। तुम भी वहीं आ जाना।'

लता उठ कर अपने कमरे में चली गई। वीरेन्द्र ने बेयरा को बुला कर शाम्पेन की एक बोतल का आर्डर दिया, और कपड़े बदल कर व नाइट गाउन पहन कर लता के पास चला आया। लता भी तैयार थी, उसने साड़ी उतार कर स्लीपिंग सूट पहन लिया था। बेयरा शाम्पेन की बोतल और दो गिलास लाकर मेज पर रख गया। दोनों प्रेमी सोफा पर एक साथ बैठ कर बातें करने लगे। शाम्पेन का आस्वाद लेते हुए वीरेन्द्र ने कहा—

तुम्हें विवाह से भय लगता है, लता। तुम उसे सचमुच बन्धन समझती हो ?'

'विवाह एक बन्धन ही तो है। प्रेम के लिए किसी पिंजरे में बन्द होने की क्या ज़रूरत है ?'

'इसे पिंजरा न कहो, लता। यह एक घोंसला है। दिन भर का थका माँदा पक्षी सांझ होने पर अपने घोंसले में लौट आता है। वहाँ आकर उसे कितना सुख मिलता है। उसकी सब थकान क्षण भर में मिट जाती है।

'ठीक कहते हो, वीरेन्द्र। मैंने भी कभी अपना घोंसला बनाया था। पर एक दिन एक बन्दर आया, बड़ा ही नटखट। वह उस घोंसले को तोड़ गया। अब दूसरा घोंसला बनाते हुए भय मालूम पड़ता है। घोंसले से एक ममता जो हो जाती है।'

'क्या वह बन्दर मैं हूं ?'

'नहीं, वीरेन्द्र। वह मेरा अपना मन है। मैंने स्वयं ही अपने सोने के महल को खण्ड खण्ड करके फेंक दिया। अब उसके खण्डहरों के पास जाने

पास ले गये। रानी का माप लता के पास था। दर्जी को सब बात समझा कर वे घूमने निकल पड़े। लता ने कहा—

'सात अक्टूबर को रविवार नहीं है। उस दिन के लिये स्कूल से विशेष छुट्टी लेनी होगी। चलो, वेवरली कन्वेन्ट होते चलें। रानी और मुन्ना की छुट्टी के लिये अभी से आवेदनपत्र दे दें। अंग्रेजी स्कूलों में जाप्ते को बहुत महत्त्व दिया जाता है। अभी से अर्जी न देने पर कहीं उस दिन छुट्टी मिलने में दिक्कत न हो। हाँ, जन्मदिन की पार्टी में कुछ बच्चों का रहना भी जरूरी है। मेरठ में तो रानी की कई सहेलियाँ थीं। पार्टी में बच्चों की खूब रौनक रहती थी। यहाँ मसूरी में किन-किन बच्चों को बुलाया जाए? होटल तो अब प्रायः खाली पड़ा है। यदि वहाँ बच्चे होते भी, तो उनसे क्या काम चलता? जन्मदिन की पार्टी में ऐसे ही बच्चे होने चाहियें, जिनकी रानी से मित्रता हो। हाँ, स्कूल में उसकी कई सहेलियाँ बन गई होंगी। चलो पहले कन्वेन्ट चले चलें। रानी से पूछूंगी, उसकी सबसे पक्की सहेलियाँ कौन-कौन सी हैं। उन्हें पार्टी के लिये बुला लूँगी।'

'पर प्रिन्सिपल अन्य बच्चों को छुट्टी कैसे देगी?'

'हाँ, यह बात दिक्कत की है। पर यदि रानी की टीचर को भी पार्टी में शामिल होने के लिये निमन्त्रित कर लिया जाए, तो शायद प्रिंसिपल कुछ बच्चों को भी छुट्टी दे दे। सेवाय होटल स्कूल से अधिक दूर भी नहीं है। यदि प्रिन्सिपल ने दो घण्टे के लिये भी बच्चों को छुट्टी दे दी, तो काम चल जायगा।'

लता और वीरेन्द्र कैमल्स बैक रोड का चक्कर काटकर वेवरली कन्वेन्ट गये। वहाँ वे स्कूल के प्रिंसिपल से मिले। रानी और मुन्ना की सात अक्टूबर के लिए छुट्टी मंजूर करा ली गई। रानी ने बताया, कमला दम्मी और अनिता उसकी पक्की सहेलियाँ हैं। मुन्ना ने कहा, प्रमोद उसका मित्र है। इन बच्चों को छुट्टी दिलाने में लता को कठिनाई हुई। पर जब उसने कहा, कि मिस विलियम्स भी रानी के जन्मदिन की

पार्टी में शामिल हो रही हैं, और बच्चे उसके साथ ही वापस आजाएंगे, तो प्रिंसिपल ने उन्हें भी छुट्टी देना स्वीकार कर लिया। स्कूल से लौट कर लता और विनोद ने भोजन किया। भोजन से निवट कर लता ने कहा—

'रानी के जन्मदिन की पार्टी के लिये कुछ इन्तजाम और करना है। वर्थ डे केक के लिये आर्डर देना है। कम से कम चार पौंड वजन की केक चाहिये। अभी से आर्डर देंगे, तो ही समय पर मिल सकेगी। तुम जानते हो, मसूरी की सबसे अच्छी बेकरी कौन सी है?'

'इसके लिये हमें चिन्ता करने की क्या जरूरत है? होटल के मैने-जर से कह देंगे, वह सब प्रवन्ध कर देगा। सेवाय की शायद अपनी बेकरी भी हो।'

'हां, एक काम और है। रानी के लिये कुछ खिलौने भी खरीदने हैं। मसूरी में खिलौनों की दूकानें तो बहुत हैं। पर यहाँ सब चीजें मंहगी हैं। यदि कोई दिल्ली जाने वाला होता, तो उसके हाथ चार पाँच वढ़िया खिलौने मंगवा लेती। पर इसकी क्या जरूरत है? यहीं से खरीद लेंगे। पांच सात रुपये अधिक तो लग जायेंगे, पर चीज अपनी पसन्द की मिल जायगी। चलो, थोड़ी देर आराम करके बाजार हो आएँ।'

'जल्दी क्या है? खिलौने कल खरीद लेंगे। आज किधर घूमने चलोगी? इन दिनों मसूरी में और काम ही क्या है। न डान्स होते हैं, और न सिनेमा। एक दो सिनेमा हॉल खुले हैं, पर उनमें पुराने पिक्चर चल रहे हैं।'

आखिर, सात अक्टूबर का दिन भी आ ही पहुँचा। लता सुबह उठ कर स्कूल गई। बच्चे वहाँ उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। लता को देख कर रानी भागी भागी आई, और उससे चिमट कर बोली—'अम्मा, पेरिस से एक बहुत बड़ा पार्सल आया है, इतना बड़ा। बुआ जी ने भेजा है। क्या बताऊँ, अम्मा, कितने बढ़िया खिलौने हैं। बड़ी सी गुड़िया है,

सोने और जागने वाली। लेटती है, तो आँखें बन्द कर लेती है। उठती है, तो आँखें खोलकर चूं चूं करने लगती है। लाल रँग का फ्राक पहने हुए है। और अम्मा, बूआ जी ने एक भालू भेजा है। खूब बड़ा सा, काला काला। मुन्ना तो उसे देख कर डर गया। उठाओ तो खों खों करता है। एक रेल गाड़ी भी आई है। तीन डब्बे हैं, और एक इंजन। पटरी पर चलती है। चाबी लगा दो, तो दस मिनट तक चलती रहती है। इंजन में ड्राइवर भी बैठा है। हाँ, अम्मा एक हवाई जहाज भी है, खूब बड़ा सा। चाबी लगाकर उड़ा दो, तो दूर तक उड़ता चला जाता है। कल खड्ड में गिर गया था। बड़ी मुश्किल से निकाला।'

लता ने रानी को छाती से लगा लिया, और पूछा—'कहाँ है, वे खिलौने ?'

रानी भागी भागी गई, और खिलौनों का डब्बा उठा लाई। साथ में एक पत्र भी था, जिसे मदमोआजल वारों ने लिखा था। रानी ने पत्र को लता के हाथों में देते हुए कहा—'लो, अम्मा, यह बुआ जी की चिट्ठी है।' लता हैरान थी, उनकी कौन सी बहन है, जो पेरिस में रहती है। चिट्ठी पढ़ कर सब बातें उसकी समझ में आ गईं। खिलौने एक फ्रेन्च महिला ने भेजे हैं, पर उनकी तरफ से। उसने लिखा है, प्रोफेसर विनोद कार्य-व्यग्र हैं, स्वयं पत्र लिखने की उन्हें फुरसत नहीं है। पर क्या वे सचमुच इतने कार्यव्यग्र हैं, कि रानी के जन्मदिन के अवसर पर अपने हाथ से चार पंक्तियाँ लिखने की भी उन्हें फुरसत नहीं है। रानी को वे बहुत प्यार करते हैं। दस काम छोड़ कर भी वे उसे स्वयं पत्र लिखते। तो क्या. उनकी तबियत ठीक नहीं है ? क्या उनका वह उन्माद फिर उठ खड़ा हुआ है ? क्या वे इतने अधिक बीमार हैं, कि अपने हाथ से रानी को एक छोटा सा पत्र तक भी नहीं लिख सके? लता चिन्ता में पड़ गई। उसका मन अशान्त हो गया। उसने दिल ही दिल में भगवान से प्रार्थना की, वे स्वस्थ हों, सकुशल हों। मां को चुपचाप देख कर रानी ने कहा—

'अम्मा, सोच क्या रही हो ? बुआजी ने एक दूसरा पार्सल भी भेजा

उनकी हूँ। यदि वे मुझे प्यार नहीं भी करते, तो क्या हुआ ? मैं हूं तो उन्हीं की।

बच्चों को स्कूल में छोड़ कर वीरेन्द्र प्रिंसिपल को धन्यवाद देने के लिये गया। प्रिंसिपल ने पूछा—

'मिसेज विनोद नहीं आईं ?'

'उनकी तबियत कुछ खराब है। वे स्वयं नहीं आ सकीं। बच्चों के साथ मुझे भेज दिया।'

'उनकी एक चिट्ठी है,आज की डाक से आई है। चिट्ठी पर अर्जेन्ट लिखा है। सोचती थी, चपरासी के हाथ उनके पास भेज दूं। फिर सोचा, वे आती ही होंगी। क्या आप यह चिट्ठी उन्हें दे देंगे ?'

'क्यों नहीं ? मैं अभी वापस जा रहा हूँ।'

प्रिंसिपल ने चिट्ठी वीरेन्द्र को दे दी। वीरेन्द्र ने देखा, चिट्ठी पेरिस से आई है। मेरठ कालिज के पते पर भेजी गई थी, कालिज वालों ने उसे मसूरी रीडायरेक्ट किया है। उसने सोचा, क्यों न लिफाफा खोल कर चिट्ठी पढ़ लूँ। शायद विनोद की कोई खबर हो। इतने दिन हो गये, उसने एक भी पत्र नहीं भेजा। एक बार उसके मन में यह भी आया, कि यह पत्र लता को नहीं देना चाहिये। न जाने, विनोद के बारे में कोई नया समाचार पढ़ कर उसके मन पर क्या प्रभाव पड़े। पर उसने न चिट्ठी को पढ़ा, और न उसे फाड़ कर ही फेंका। वह सीधा लता के कमरे में गया, और बोला—

'तुम्हारे नाम पेरिस से एक चिट्ठी आई है, स्कूल की प्रिंसिपल ने दी है।'

कांपते हुए हाथों से लता ने पत्र को खोला। मदमोआजल बारों का पत्र था—

'मदाम,

आपका पता मुझे ज्ञात नहीं है, इसलिये उस कालिज के प्रिंसिपल की मार्फत यह पत्र भेज रही हूँ, जिसमें प्रोफेसर विनोद कार्य करते थे।

सकना मेरी शक्ति के वाहर है। वे कितने ऊँचे हैं, कितने महान् हैं। अब तक जिन पुरुषों के सम्पर्क में मैं आई थी, उनमें से कोई तो मुझे अपना खिलौना बनाना चाहता था, और कोई मेरे प्रति उदासीनता की वृत्ति रखता था। प्रोफेसर विनोद मुझसे प्रेम रखते हैं, पर उनके प्रेम में वासना का लवलेश भी नहीं हैं। प्रेम का यह पवित्र रूप मैंने अन्यत्र कहीं नहीं पाया। मेरे पास उठना-बैठना, मुझ से बातें करना और दर्शनों की चर्चा करना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। जब कभी मैं उनके पास आ जाती हूँ, उनका हृदय कमल खिल-सा उठता है। पर मैं एक युवती हूँ, इस ओर उनका कभी ध्यान ही नहीं जाता। मेरे रूप के प्रति उनके मन में जरा भी आकर्षण नहीं है। मैं उनके समीप रहती हूँ, उनके निकट सान्निध्य में आती हूँ, पर फिर भी मेरे और उनके बीच में एक गहरी खाई है। प्रेम और सान्निध्य का यह रूप कितना उदात्त, पवित्र और अद्भुत है। उन्हें क्या मालूम, कि मैं अपना सर्वस्व उनके अर्पण कर सकती हूँ, क्योंकि उनके प्रति मेरे हृदय में अगाध श्रद्धा है। मेरा मन आत्मा और शरीर यदि उनके किसी भी काम आ सके, तो मैं अपने को धन्य समझूंगी। पर वे तो केवल देना ही जानते हैं। मुझ से कुछ भी ग्रहण करने की उन्हें इच्छा ही नहीं होती। कोई पुरुष इतना ऊँचा भी हो सकता है, यह वात मेरी कल्पना से भी परे थी।

यदि बुरा न मानो, तो एक बात पूछूं, मदाम। क्या आपके पति सचमुच इस बात के अयोग्य हैं, कि वे किसी अन्य स्त्री की सराहना को समझ सकें, या स्वयं किसी स्त्री के प्रति आकृष्ट हो सकें। कैसे अद्भुत हैं, वे? ऐसा प्रतीत होता है, एक विशाल चट्टान है, जिस पर हजारों लहरें टकराती रहती हैं, पर उस चट्टान पर कोई असर होता ही नहीं। शायद हृदय-तत्त्व नाम की कोई वस्तु उनमें है ही नहीं। वे धीर हैं, गम्भीर हैं, उदात्त हैं। दूसरों के दुख-दर्द को भी वे अनुभव करते हैं। पर स्त्रियों के प्रति आकर्षण व उनकी सराहना को समझ सकने की क्षमता ही उनमें नहीं है। यह सब होते हुए भी उनके साथ रह कर जो अपूर्व

जब उसका मन कुछ शान्त हुआ, तो उसने सोचना शुरू किया—क्या था, और क्या हो गया। बारह वर्ष पहले जिसका हाथ पकड़ कर अग्निदेव के सम्मुख जीवन भर साथ रहने की प्रतिज्ञा की थी, वह आज पेरिस के एक अस्पताल में अकेला पड़ा है। उसकी बीमारी के कारण को दुनिया भर में मेरे अतिरिक्त और कौन जानता है? उसके रोग का कारण मैं हूँ, और उसका इलाज भी मेरे ही हाथों में है। क्या मैं उसका इस प्रकार तिल-तिल कर के जलना देख सकती हूँ? कभी नहीं। कौन कहता है, मैं उनको प्रेम नहीं करती? क्या मैं उनके अतिरिक्त किसी अन्य को प्रेम कर सकती हूँ? नहीं, कभी नहीं। वीरेन्द्र को मैं प्रेम नहीं करती। नहीं, मैं उसे भी प्रेम करती हूँ। पर वे ठीक कहते थे, तुम्हें अन्य पुरुषों को भी प्रेम करने का अधिकार है, प्रेम के मामले में तुम स्वतन्त्र हो, पर इसके लिए तुम्हें कीमत देनी होगी। किसी भी चीज की प्राप्ति के लिये कीमत अदा करनी पड़ती है। वीरेन्द्र को प्राप्त करने के लिये भी मुझे कीमत देनी होगी। क्या कीमत? अपने पति की, अपने दाम्पत्य जीवन की। क्या मैं यह कीमत देने के लिए तैयार हूँ? नहीं, कभी नहीं। तो क्या मैं वीरेन्द्र का त्याग कर दूँ? हाँ, मुझे यह करना ही होगा, यद्यपि यह मेरे लिए सुगम नहीं होगा। मैंने उसे प्रेम किया है, मैं उसे प्रेम करती हूँ। यह तथ्य है, पर इस प्रेम की कीमत बहुत अधिक है, उसे अदा करने की शक्ति मुझ में नहीं है।

लता देर तक इसी प्रकार संकल्प-विकल्प करती रही। रात डिनर के समय वीरेन्द्र आया, और लता के कमरे को बन्द देख कर बाहर खड़ा रहा। कुछ देर बाद दरवाजे को धीरे से खटखटा कर उसने कहा—

'तुम क्या कर रही हो, लता। क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ?'

'हाँ, आ जाओ।'

लता उठी, और उसने दरवाजा खोल दिया। लता फिर पलंग पर लेट गई, और वीरेन्द्र उसके पास बैठ गया।

'वह चिट्ठी किस की थी। विनोद का क्या हाल है?'

'तो मैं भी तुम्हारे साथ पेरिस जाऊँगा। मैं तुम्हारे विना नहीं रह सकता, लता।'

'नहीं, यह असम्भव है।'

डिनर का समय हो गया था। वीरेन्द्र ने कहा—

'चलो, भोजन का समय हो गया है।'

'मुझे आज बिलकुल भी भूख नहीं है।'

'इस प्रकार कैसे काम चलेगा, लता। तुम्हें सुदूर देश की यात्रा करनी है। इस प्रकार शरीर की उपेक्षा न करो। थोड़ा बहुत खा लो।'

लता वीरेन्द्र के साथ डाइनिंग हाल में गई, और भोजन किया। अब उसका मन शान्त था। कर्तव्य के ज्ञान ने उसके हृदय के उद्वेग को कम कर दिया था। डिनर के बाद वह वीरेन्द्र के साथ अपने कमरे में लौट आई। वीरेन्द्र सोफा पर बैठ गया, और वह पलंग पर। देर तक वे दोनों चुपचाप बैठे रहे। वीरेन्द्र ने इस मौन को भंग करते हुए कहा—

'क्या तुम अब मुझे प्रेम नहीं करती, लता ?'

लता चुप रही। उसकी आँखों में आंसू आ गये। वीरेन्द्र ने फिर कहा—

'तुम चुप क्यों हो, लता ? क्या तुम्हें मेरा यहाँ बैठना अच्छा नहीं लगता ? तुम्हारी उदासी मुझसे नहीं देखी जाती, लता। तुम कहो, तो मैं चला जाऊँ।

'नहीं, तुम यहीं बैठो। मुझे तुम्हारा पास बैठना अच्छा लगता है।

'तो तुम इस तरह दूर क्यों बैठी हो। आओ, सोफा पर आ जाओ।'

लता उठी, और चुपचाप उसके पास आ कर बैठ गई। वीरेन्द्र ने अपनी बाँह उसके गले में डाल कर कहा—'क्या तुम अब मुझे प्यार नहीं करती, लता।'

'करती हूँ, अवश्य करती हूँ।'

'तो फिर ? इस प्रकार मुझ से दूर क्यों हट रही हो।'

लता अपने मन के भाव को नहीं छिपा सकी। वह फूट-फूट कर रोने

लगी। रोते-रोते उसका गला भर आया। अपने को संभाल कर उसने कहा—

'तुम्हारे प्रेम को मुझे कुर्बान करना होगा, वीरेन्द्र ! यह समाज वलिदान पर ही कायम है। मनुष्य सब कुछ नहीं पा सकता। इस दुनिया में कितनी ही अच्छी चीजें है, पर कोई एक मनुष्य उन सब को तो प्राप्त नहीं कर सकता। यह दुनिया किसी एक व्यक्ति के लिये नहीं है, यह सब के लिये है। हमें अपने भाग से सन्तुष्ट रहना होगा, वीरेन्द्र।'

'क्या तुम हम दोनों को प्यार नहीं कर सकती ? विनोद तुम्हारा पति है, और मैं हूँ तुम्हारा प्रेमी। मैं जानता हूँ, तुम विनोद को नहीं छोड़ सकती। पर क्या तुम मेरा त्याग कर सकती हो ? सच कहना लता।'

'हाँ, सच ही कहूँगी। उनके लिए मुझे तुम्हें त्यागना ही होगा।'

'पर यह क्यों ?'

'क्यों कि उनका अन्तर्दाह मैं नहीं सह सकती। उन्हें सुखी करने के लिए मुझे तुम्हारे प्रेम की वलि देनी ही होगी।'

'पर मनुष्य इतना स्वार्थी क्यों होता है ? विनोद जैसा विद्वान् और तत्त्वज्ञानी इतनी मोटी सी वात क्यों नहीं समझ सकता, कि तुम उसकी पत्नी हो, और पत्नी के रूप में तुम्हारे जो कर्तव्य हैं, उनका पालन करने के लिए तुम सदा उद्यत रहती हो। पर क्या तुम्हें यह भी अधिकार नहीं है, कि तुम किसी अन्य व्यक्ति को भी प्यार कर सको ?'

'नहीं है, सचमुच नहीं है। वे ठीक कहते थे, प्रेम का यह मार्ग इतना संकरा है, कि इस पर दो आदमी एक साथ नहीं चल सकते। वे कहते थे, मुझे यह अधिकार है, कि मैं किसी अन्य पुरुष से प्रेम कर सकूं। पर इसके लिए मुझे कीमत देनी होगी। वे इसकी कीमत चाहते हैं।'

'वह कीमत क्या है, जता ?'

'वह कीमत है, उनके प्रेम की, हमारे दाम्पत्य जीवन की। वे कहा करते हैं, दुनिया की किसी भी वस्तु को प्राप्त करने के लिए तुम्हें कीमत देनी पड़ती है। विना मूल्य के क्या तुम कुछ भी प्राप्त कर सकते हो।

भोजन, वस्त्र, निवास—सबके लिए तुम्हें मूल्य देना पड़ता है। तो यह आशा कैसे कर सकते हो, कि प्रेम जैसी बहुमूल्य वस्तु तुम बिना कीमत प्राप्त कर लो। पति पत्नी से प्रेम करता है, पत्नी पति से। पिता पुत्र से प्रेम करता है, पुत्र पिता से। दोनों इस प्रेम के लिए कितनी कीमत देते हैं। फिर यदि तुम्हें किसी अन्य पुरुष का प्रेम प्राप्त करना है, तो उसके लिए भी कीमत देने को तैयार रहो।'

'तो क्या मेरे प्रेम के तुम लिए यह कीमत नहीं दे सकती।'

'नहीं वीरेन्द्र, यह मेरे लिए असम्भव है। मैंने खूब सोच समझ लिया है, यह असम्भव है।'

'तो फिर अब मेरा क्या होगा, लता ?'

'तुम भी अपने लिए एक घोंसला बनाओ वीरेन्द्र !'

'पर मैं तो तुम्हारे साथ मिलकर ही अपना घोंसला बनाना चाहता हूं, लता।'

'मेरे सुनहरे महल को नष्ट न करो, वीरेन्द्र ! एक बार इतने यत्न से जो घोंसला अपने लिए बना चुकी हूँ, वह मुझ से छोड़ा नहीं जायगा।'

वीरेन्द्र की आँखों में आँसू आ गये। लता को छाती से लगाते हुए उसने कहा—

'तो फिर हमारे प्रेम का यही अन्त है, लता !'

'हाँ, शायद।'

'जब दीपक बुझने लगता है, तो अन्तिम बार जोर से टिमटिमाता है। मेरा प्रेम दीपक भी अब बुझ रहा है। उसे एक बार जोर से टिम-टिमा लेने दो।'

वीरेन्द्र ने चाहा, कि लता को पूरी तरह अंक में भर ले, और उसके साथ पलंग पर लेट जाए। पर लता छिटक कर अलग खड़ी हो गई। उसने कहा—

'जो चीज अब नहीं रही है, उसके लिए यत्न न करो, वीरेन्द्र। तुम जाओ, और अपने कमरे में जाकर सोओ। मुझे कल बहुत काम

करना है। कल तक शायद दिल्ली से तार आ जाए। मुझे यूरोप यात्रा की तैयारी करनी है।'

लता की भावभंगी को देख कर वीरेन्द्र को और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। वह चुपचाप उठ कर चला गया, और लता दरवाजे को अन्दर से बन्द कर अपने विस्तर पर लेट गई।

(१९)

अगले दिन थामस कुक एण्ड सन्स का तार आ गया। १४ अक्टूबर को 'एयर इण्डिया इन्टरनेशनल' के हवाई जहाज पर मिसेज विनोद के के लिए सीट रिजर्व कर दी गई है, और उसे तेरह तारीख को सुबह तक दिल्ली पहुँच जाना चाहिए। लता को मसूरी में काम ही क्या था? उसने जल्दी-जल्दी सामान बाँध लिया। चलने से पूर्व एक बार स्कूल जाकर बच्चों से मिल आई। इन दिनों वीरेन्द्र हर समय उसके साथ रहता था। उसका मन अशान्त था, वह अपने को लुटा-लुटा-सा अनुभव करता था। पर लता की सहायता करने में उसे आनन्द आता था। उसने लता से कहा—

'कहो तो दिल्ली तक तुम्हें छोड़ आऊं?'

'इसकी क्या जरूरत है। तुमने मेरे लिए जो कुछ किया, उसके लिए हृदय से कृतज्ञ हूँ। पर दिल्ली में अकेली ही जाऊँगी।'

'तुम इतनी निष्ठुर नहीं हो, लता। क्या तुम मुझे इस योग्य भी नहीं समझती, कि मैं तुम्हारे साथ दिल्ली जाकर तुम्हें विदा कर आऊं?'

'जो आग जलकर राख हो चुकी है, उसमें फूंकें मारने से क्या लाभ?'

'तो फिर क्या तुम अब मेरी शकल से भी नफरत करती हो, लता?'

'जिसे एक वार प्रेम किया, उसे मैं नफरत नहीं कर सकूंगी, वीरेन्द्र! पर तुम मुझे भूल जाओ, सदा के लिए। समझ लेना, राह चलते-चलते कोई यात्री मार्ग में साथ हो लिया था। जिनकी मंजिलें अलग-अलग हैं, ऐसे दो राही भी क्या कभी सदा एक साथ रह सकते हैं।'

'मैं तुम्हें कभी नहीं भुला सकूंगा, लता। दिल्ली तक मुझे अपने साथ जाने दो।'

लता और वीरेन्द्र साथ-साथ दिल्ली आये। हवाई जहाज पर सवार होते हुए लता ने कहा—

'अच्छा, वीरेन्द्र, अब विदा, सदा के लिए विदा।'

'यह मत भूलना, लता, कभी वीरेन्द्र ने भी तुम्हें प्यार किया था।'

'मुझे इसे भुलाना ही होगा, वीरेन्द्र! हाँ, एक बात याद आ गई। दिसम्बर में बच्चों का स्कूल बन्द हो जायगा। मैं कोशिश करूँगी, कि तब तक भारत लौट आऊं। पर यदि किसी कारण से देर हो जाए, तो उसका खयाल कर लेना। उन्हें कुछ दिनों के लिए अपने पास रख लेना। यदि हमारे लौटने में देर हुई, तो मैं तुम्हें सूचना दे दूंगी। उनकी यूरोप यात्रा का प्रबन्ध कर देना। अच्छा अब जाती हूँ, नमस्ते।'

हवाई जहाज आसमान में उड़ चला। वीरेन्द्र तब तक उसकी ओर देखता रहा, जब तक वह उसकी आँखों से ओझल नहीं हो गया। लता पहले दिल्ली से बम्बई गई। दोपहर के समय दूसरा हवाई जहाज बम्बई से यूरोप के लिए चला। रास्ते में कैरो और जिनीवा रुकता हुआ लता का हवाई जहाज जर्मनी पहुंच गया। वहाँ नया जहाज तैयार था। १६ तारीख को सायंकाल तक लता पेरिस पहुँच गई। बम्बई से चलते हुए उसने मदमोआजल वारों को तार दे दी थी। वह लता के स्वागत के लिए पेरिस के हवाई अड्डे पर उपस्थित थी। वह उसे रू द ला सपीद के उस होटल में ले गई, जहाँ विनोद ने कमरा लिया हुआ था। अपने असबाब को विनोद के कमरे में रख कर उसने हाथ मुँह धोया, और तुरन्त सीधी अस्पताल चली गई। अभी विनोद अस्पताल में ही था। उसकी दशा में कोई परिवर्तन नहीं आया था। वैसे वह स्वस्थ था, पर रात में तीन-चार बार उसे दौड़ा पड़ जाता था। उसका रंग सफेद पड़ गया था, और माथे की नसें उभर आई थीं। उसकी आँखें चौड़ी हो गई थीं, और उनमें उन्माद के चिन्ह साफ-साफ नजर आते थे। वारों के साथ जब लता ने विनोद के

पत्र क्यों नहीं लिखा ?'

'यही प्रश्न मैं तुमसे भी पूछता हूँ ।'

'जाने दो, इन बातों को । यह बताओ, अब तो तुम बिलकुल स्वस्थ हो न ? अब फिर कभी तो तुम्हें उन्माद नहीं होगा ।'

'नहीं, कभी नहीं । तुम्हारे अन्दर न जाने क्या जादू है । महीने भर से बीमार पड़ा था, सब डाक्टर परेशान थे । कोई भी दवाई असर नहीं कर सकी । तुम आईं, और तुम्हारी एक नजर से ही मेरी सब बीमारी न जाने कहाँ भाग गई ।'

यह कहते हुए विनोद की आँखों में भी आँसू भर आए । उन्हें पोंछते हुए लता ने कहा—

'तुम क्या जानो, मैं पतित हूँ, कुलटा हूँ, क्या तुम मुझे माफ कर सकोगे ? क्या तुम मुझे फिर एक बार पहले के समान प्यार कर सकोगे ?'

'कैसी बातें करती हो, लता ? तुम पवित्र हो । तुम कभी पतित नहीं हो सकती ।'

'तुम्हें क्या मालूम ? मैं सचमुच पतित हो चुकी हूं ।'

'मुझे सब मालूम है । कोई भी बात मुझ मे छिपी हुई नहीं है, मनस्तत्त्व सर्वव्यापक होता है, लता ।'

'क्या फिर भी तुम मुझे ग्रहण कर सकते हो ?'

'क्यों नहीं ? अब तुम मेरी हो, केवल मेरी । तुम्हारे हृदय रूपी आकाश में जो काली घटाएँ फिर आई थीं, वे अब छिन्न-भिन्न हो चुकी हैं । सदियों का अन्धकार दीपक के प्रकाश से क्षण भर में नष्ट हो जाता है । तुम्हारा मन भी कुछ समय के लिए अंधकार से व्यापृत हो गया था, पर अब तुम्हें ज्ञान हो गया है । अब तुम्हारा मन आलोकित है, लता । मैं जानता हूं, अब तुम पूर्णतया मेरी हो । तुम्हारे साथ अन्य किसी भी पुरुष की छाया मुझे दिखाई नहीं देती ।'

'तुम कितने महान् हो, मेरे प्रीतम । भगवान् रामचन्द्र ने सीता के

डाक्टर ने रोगी की परीक्षा की। विनोद के स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया था। डाक्टर समझ गया। विनोद की बीमारी मानसिक थी, शारीरिक नहीं। लता के आ जाने से अब वह ठीक हो गया था। डाक्टर ने हंस कर कहा—

'मदाम, सुना था, भारत में स्त्रियां जादू जानती हैं। जादूगरनियों के कितने ही किस्से पुस्तकों में पढ़े थे। मैं उन पर विश्वास नहीं करता था। पर इस केस को देख कर भारत के जादू को सच्चा मानना पड़ेगा। अच्छा, प्रोफेसर विनोद, यदि कल सुबह तक आपको दौरा न पड़े, तो आप अस्पताल से जा सकते हैं।'

अगले दिन सुबह विनोद अपने होटल वापस चला आया। लताने उससे कहा—

'तुम तो यूरोप की खूब सैर कर चुके होगे। अब मुझे भी यहां की कुछ सैर करा दो न ?'

'सच पूछो, तो अब तक मैंने यूरोप में कुछ भी नहीं देखा। अकेले सैर में जरा भी मजा नहीं आता। सोचता था, तुम आ ही जाओगी। तब साथ ही सैर करेंगे।'

'भला तुम्हें यहां सोसायटी की क्या कमी थी? वारों जैसी सुन्दरियां तुम पर अपना तन मन और सर्वस्व तक निछावर करने को तैयार थीं। उनके सामने मेरी क्या गिनती ? तुम कहते भी थे, यूरोप में रह कर अन्य स्त्रियों के संग से भी रस लेने का प्रयत्न करूंगा, तुम मुझसे दस कदम आगे जो रहना चाहते थे।'

'अब भी तुम शरारत से बाज नहीं आती, लता ? तुम्हारे बिना मुझे जीवन में जरा भी रस नहीं मिलता। तुम साथ रहो, तो मैं हिमालय की चोटियों को लांघ जाता हूं। और तुम्हारे बिना ? समतल भूमि पर भी मेरे पैर लड़खड़ाने लगते हैं।'

'मेरी जैसी तुच्छ स्त्री पर इस तरह निर्भर न रहो। यह सम्बल बहुत कमजोर है। कभी भी धोखा दे सकता है।'

है, और न नाइट क्लबों में जाता है। लता के प्रेम से निराश होकर उसने भी अपना ध्यान तत्त्वचिन्तन में लगा लिया है। वह कुछ समय योगीराज अरविन्द के आश्रम में रहा, पर वहाँ उसे सन्तोष नहीं हुआ। अध्यात्म की अपेक्षा समाज और मानव जीवन की समस्याएँ उसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती हैं। उसने अपना एक पृथक् आश्रम खोल लिया है, जहां वह समाज संगठन, राज्य का स्वरूप, पारिवारिक-जीवन सदृश प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार-विमर्श किया करता है। उसके लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। लोग उसके विचारों को आदर के साथ पढ़ते हैं, और बहुत से नर-नारी उसके दर्शनों के लिए भी आते हैं। समाज के विरुद्ध उसके हृदय में प्रचण्ड विद्रोह है। वह एक नये समाज का स्वप्न लिया करता है, जिसमें मनुष्य सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सके। वीरेन्द्र का मत है कि इस बीसवीं सदी में भी मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है, वह राज्य के अधीन है, समाज का गुलाम है, और ऐसी जंजीरों में जकड़ा हुआ है, जिन्हें उसने स्वयं बनाया है। लता भी वीरेन्द्र के विचारों को पढ़ती रहती है, और उनके प्रति जबर्दस्त आकर्षण अनुभव करती है। यह आकर्षण केवल वीरेन्द्र के विचारों के प्रति ही नहीं है, अपितु उसके व्यक्तित्व के प्रति भी है। उसने बहुत यत्न किया, अपने को वीरेन्द्र से दूर रखे। पर वह सफल न हो सकी। एक दिन वह वीरेन्द्र को पत्र लिखने के लिये बैठ ही गई। पत्र यह था—

प्रिय वीरेन्द्र,

आज के समाचार-पत्रों में तुम्हारा चित्र देखा। कितनी पुरानी स्मृतियां फिर से ताजी हो गईं। तुम कितने बदल गये हो। तुमसे मिले आठ साल भी तो हो गये। शायद तुम्हें मेरी याद भी न रही हो। मेरे जैसी अगण्य स्त्री को याद करके करोगे भी क्या? तुम तो अब एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये हो। लोग तुम्हारे दर्शनों को जाते हैं, तुम्हारे पैर छूते हैं। तुम्हारा चित्र देखकर विश्वास नहीं हुआ, तुम वही वीरेन्द्र हो, जो कभी ठाठ-बाठ से रहा रहा करता था, पेरिस और न्यूयार्क के रंगमहलों में थिरकता फिरता था,

नवयुवतियाँ जिसके चारों ओर मँडराती रहती थीं, और जो शाम्पेन के गिलास के गिलास बात-की-बात में खाली कर दिया करता था। धोती और कुरते में तुम अब कैसे लगते होगे। इच्छा होती है, एक बार फिर तुमसे मिलूँ। सन्त-महात्माओं के दर्शन के लिए तो स्त्रियाँ आती ही हैं। और अब मैं युवती भी तो नहीं रही हूँ। बाल खिचड़ी हो चले हैं, मुँह पर भी झुर्रियाँ झलकने लग गई हैं। अब यदि मैं तुमसे मिलने आई, तो समाज को भी क्या एतराज होगा? तुम्हारे तप में बाधा नहीं डालूँगी, और न तुम्हें योगभ्रष्ट करूँगी। यदि अनुमति हो, तो एक बार फिर तुम्हारे पास आ जाऊँ। बहुत-सी बातें पूछना चाहती हूँ। हृदय अशान्त रहता है। शायद तुमसे मिलकर कुछ शान्ति मिले।

हाँ, कुछ अपनी बात भी लिख दूँ। तुम्हारे साथ मेरा जा सम्बन्ध था, प्रोफेसर साहब उसे कभी भुला नहीं सके। उसकी स्मृति उनके मन को सदा व्यथित करती रही। वे विद्वान् हैं, गम्भीर हैं, तत्त्ववेत्ता हैं। यत्न करते हैं कि उन सब बातों को भूल जाएँ। पर यह अन्तर्दाह भी कैसा अद्भुत है। यह एक ऐसी अग्नि है, जो यदि एक बार जल उठे, तो बुझ नहीं पाती। राख के नीचे दबी हुई आग के समान वह धीरे-धीरे सुलगती ही रहती है। उनकी दशा को देखकर मैं अनुभव करती थी, मेरे साथ रहने से उन्हें क्लेश होता है। मैंने सोचा, साथ रह कर क्यों उनके क्लेश का कारण बनूं। इसलिए मैं न जाने कहाँ-कहाँ भटकती फिरी। सन्त-महात्माओं के मठों में रही, देश सेवकों के आश्रमों में रही, तीर्थयात्रा के लिए गई, हरिजन सेवा संघ में काम करती रही। पर मेरा मन अब भी अशान्त है। सोचती हूँ, एक बार फिर तुम्हारे पास आऊँ, तुम्हारी शिष्य बनकर रहूँ। यदि एतराज न हो, तो उत्तर में दो पंक्ति लिख देना। यदि समाज की मर्यादाओं ने युवावस्था में हमें साथ नहीं रहने दिया, तो इस बुढ़ापे में शायद हम साथ रह सकें।

तुम्हारी, लता

वीरेन्द्र ने पत्र का यह उत्तर दिया—

प्रिय लता,

तुम्हारा पत्र मिला। इतने दिनों बाद तुम्हारा पत्र पाकर कुछ आश्चर्य हुआ, और कुछ दुःख। तुम्हारा मन अशान्त है, यह मेरे लिए दुख की बात है। जिससे जीवन में दो क्षण के लिए भी आत्मीयता और प्रेम प्राप्त किये हों, उसे भुला सकना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं होता, लता। मैं भी मनुष्य हूँ, और तुम्हारी याद सदा मुझे उद्विग्न करती रही है। जब चाहो, आ जाओ। यहाँ सदा तुम्हारा स्वागत है।

तुम्हारा, वीरेन्द्र

लता अब वीरेन्द्र के आश्रम में निवास करती है। समाज का संगठन, पारिवारिक जीवन, प्रेम का स्वरूप, राज्य का आदर्श आदि विषयों पर वह वीरेन्द्र के साथ विचार विमर्श में तत्पर रहती है। आश्रम का सब प्रबन्ध अब लता ने अपने हाथों में ले लिया है। आश्रम के सब निवासी उसे 'बहिन जी' कह कर पुकारते हैं। लता और वीरेन्द्र सदा साथ-साथ रहते हैं। वे दोनों संतुष्ट हैं, सुखी हैं, तृप्त हैं। उनके सम्बन्ध को प्रेम कहन अनुचित होगा, क्योंकि प्रेम लौकिक होता है। पर प्रेम का एक ऐसा रूप भी है, जो अशरीरी है, जो अलौकिक है। लता और वीरेन्द्र के प्रेम ने यही रूप प्राप्त कर लिया है।